Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मार्च 2007
20 रुपये

नया ज्ञानोदय

उर्दू कहानी विशेषांक

भारतीय ज्ञानपीठ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नं० 1

अन्वेषण एवं उत्पादन

कम्पनी

ओएनजीसी
ONGC

ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड

platts
GLOBAL ENERGY COMPANY
TOP 250

टॉप 250 ग्लोबल कम्पनियों की सूची प्लेट्स 2006 में ओएनजीसी को विश्व की नं. 1 अन्वेषण एवं उत्पादन कम्पनी के रूप में स्थान प्राप्त।

भारत की ऊर्जा सुरक्षा को सुदृढ़ करने की प्रतिबद्धता के साथ – 34,000 से भी अधिक ओएनजीसी के लोग – इस सम्मान में – इसके वास्तविक हकदारों 1 अरब से अधिक भारतीयों को सम्मिलित करते हैं।

Subsidiaries | Overseas Joint Ventures | Domestic Joint Ventures | Recognitions

FORTUNE 500 | The Forbes Global 2000 | Superbrand

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

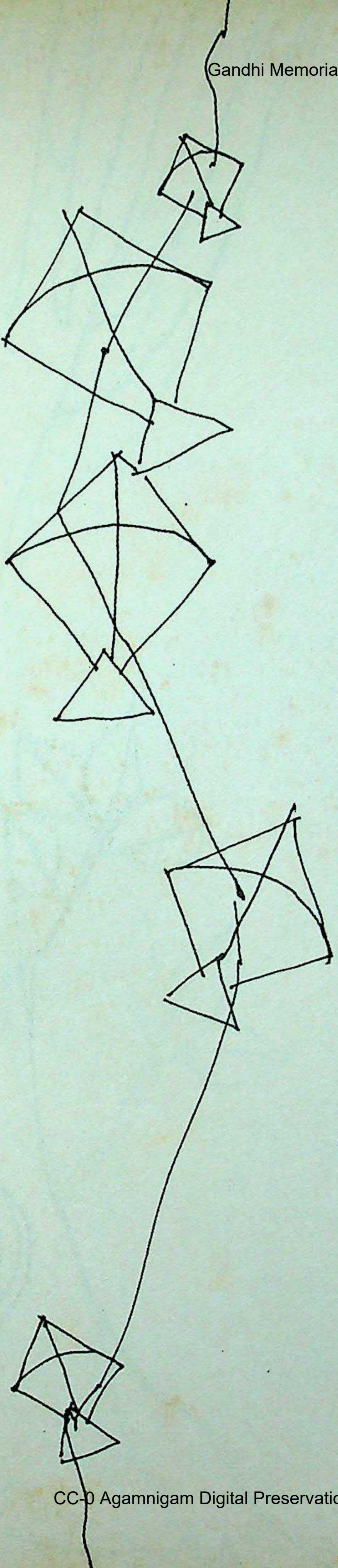

भारतीय ज्ञानपीठ

संस्थापक
श्रीमती रमा जैन
श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

सम्पादक
रवीन्द्र कालिया

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu. 4681
Acc No.........
Dated.

नया ज्ञानोदय

भारतीय ज्ञानपीठ की मासिक साहित्यिक पत्रिका

अंक 49, मार्च 2007

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नया ज्ञानोदय

अंक 49 , मार्च 2007

प्रबन्ध संपादक
साहू अखिलेश जैन
प्रबन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113
नई दिल्ली-110 003
फोन : 2462 6467, 2465 4196, 2469 8417, 2465 6201
फैक्स : 011-2465 4197; ई-मेल : jnanpith@satyam.net.in
वेबसाइट : www.jnanpith.net.in

सहायक सम्पादक
कुणाल सिंह

मूल्य :
एक अंक 20 रुपये
व्यक्तियों के लिए :
वार्षिक : 200 रुपये / त्रैवार्षिक : 550 रुपये /
पंचवार्षिक : 850 रुपये / आजीवन : 3000 रुपये
संस्थाओं के लिए :
वार्षिक : 240 रुपये / त्रैवार्षिक : 700 रुपये /
पंचवार्षिक : 1100 रुपये / आजीवन : 3000 रुपये
विदेशों के लिए :
हवाई डाक : एक अंक 5 डॉलर / वार्षिक 50 डॉलर
जल मार्ग : एक अंक 3 डॉलर / वार्षिक 25 डॉलर
शुल्क 'नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ' के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें :
(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)
(दिल्ली से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से भारतीय ज्ञानपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

Nayā Gyānodaya
A Literary Monthly Magazine
Language : Hindi
Published by Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

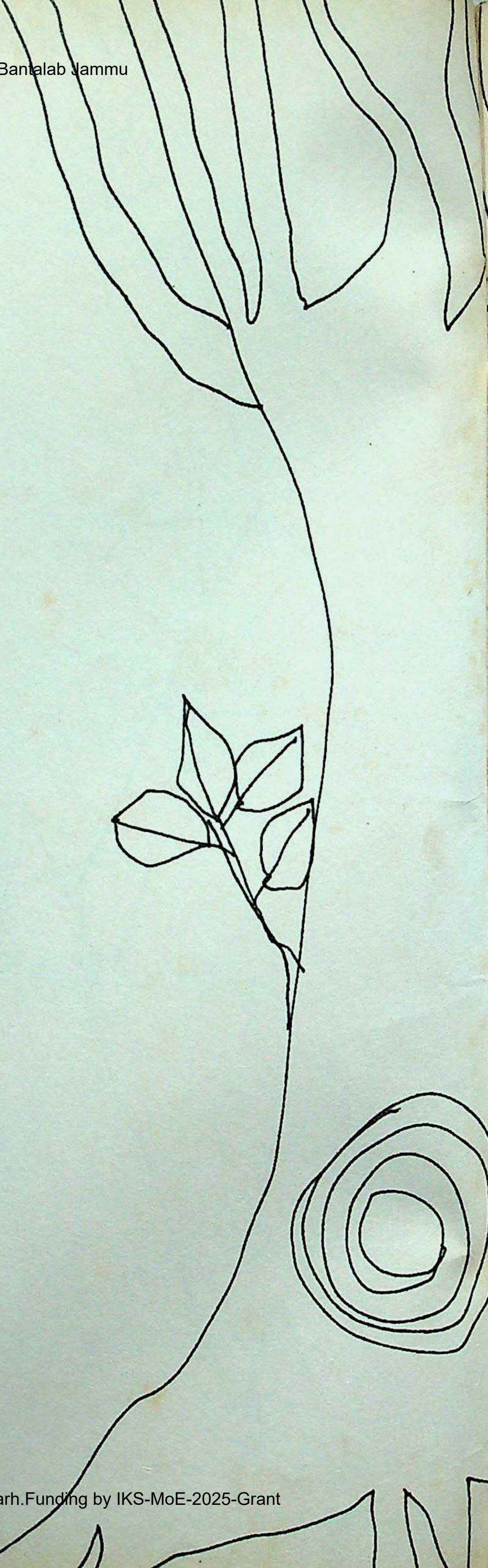

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

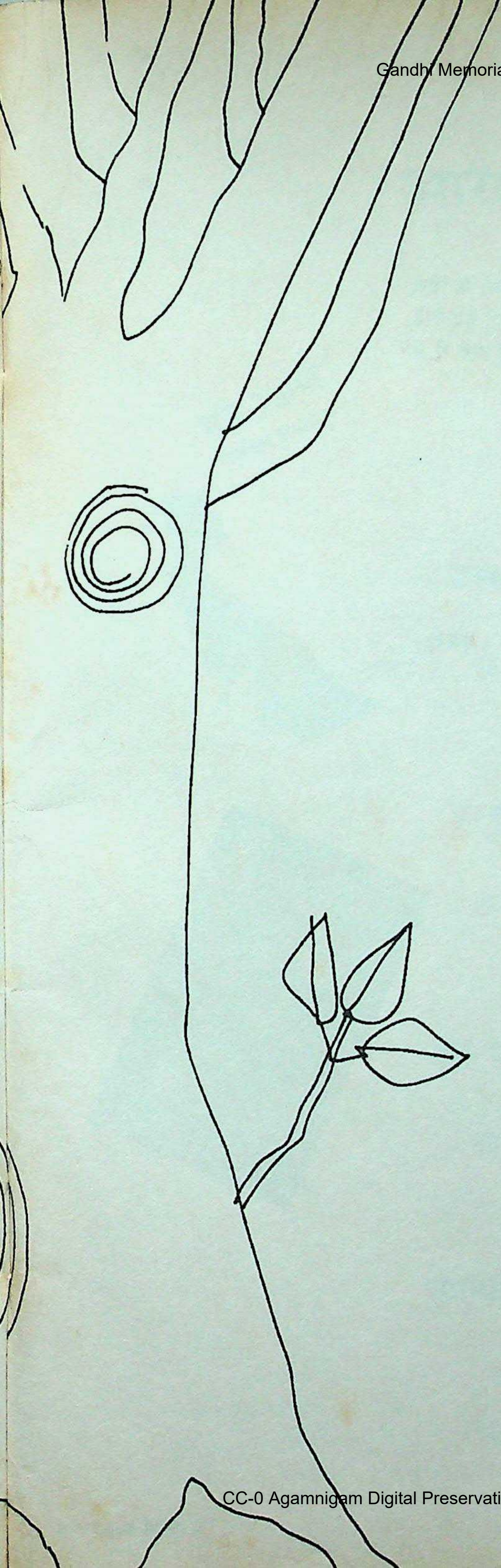

नया ज्ञानोदय

आधुनिक भावबोध, कला संचेतना और
नवीनता की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका
अंक 49, मार्च 2007

तरतीब

स्मृति वर्ष

8 फाँसी के तख़्ते से : भाइयों के नाम भगत सिंह के पत्र
10 चमन लाल : साहित्य में भगत सिंह
एन.एल.ए. बमलट : लाहौर की फाँसी
11 मेलाराम तायर : घोड़ी भगत सिंह शहीद
12 यशपाल : साग

मील का पत्थर : इन्तज़ार हुसैन

14 अशोक वाजपेयी : स्मृति के पुनर्वास का एक गुपचुप अभियान
16 गोपीचन्द नारंग : इन्तज़ार हुसैन की कथा-यात्रा
23 इकबाल रिज़वी : योजना बनाकर लेखन नहीं करता (बातचीत)
25 इन्तज़ार हुसैन : मैं क्यों लिखता हूँ (बकलमख़ुद)

कहानी

18 इन्तज़ार हुसैन : मोरनामा
28 अहमद नदीम क़ासमी : विलाप
32 मुहम्मद मंशा याद : सीप और समन्दर
36 गुलज़ार : झड़ी
38 मसऊद मुफ़्ती : दो दोस्त
42 असद मुहम्मद ख़ाँ : ज़मानत
50 सुलतान जमील नसीम : मेरे लिए
64 सलाम बिन रज़ाक : सौदा
70 अब्दुस्समद : आसमान ही आसमान
74 शाहिद अख़्तर : कटखनी
80 शमोएल अहमद : पाप
84 असरार गाँधी : ब्लैक आउट
104 ख़ुर्शीद अकरम : ब्लैंक कॉल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुनर्पाठ : टोबा टेक सिंह

47 कृष्णमोहन : पूछो राष्ट्र निर्माताओं से क्या लाहौर फिर बस पाया

विमर्श

54 अली अहमद फ़ातमी : नयी कहानी की नयी औरत

त्रिवेणी

58 गुलज़ार : मैं जानता हूँ कि सेंध लगती है मेरी नज़्मों में..., मेरे दरवाज़े के नीचे,
नाव में बहते बहते..., मुझे बस यूँ नहीं मरना कि सब मरते हुए देखें,
ये कैसी उम्र में आकर मिली हो तुम!, स्कूल से आते हुए बस्ते में मैंने

60 शहरयार : छह ग़ज़लें

62 निदा फाज़ली : छह ग़ज़लें और दो नज़्में

देशकाल

90 शशांक दुबे : दस्तक : बाज़ार में दम्पती (मैटिनी शो)

93 लईक़ रिज़वी : अपना जीवन हो गया उर्दू का अख़बार (मीडिया)

95 मनीषा कुलश्रेष्ठ : ज़माना ई-बज़्म का (इन्टरनेट)

97 विभूति नारायण राय : आने वाली नस्लें तुम पर रश्क़ करेंगी (फ़िराक़)

98 पंकज पराशर : ग़ालिब और ग़दर (ग़ालिब)

101 रहमान मुसव्विर : पाकिस्तानी उर्दू कथा साहित्य में भारतीय मिथक (सृजन)

डाकघर

112 ललितमोहन बहुगुणा : मैक्समूलर धर्म प्रचारक नहीं थे
तथा अन्य पत्र

भारत की मेज़ से

118 भारत भारद्वाज : गया तो आसमान साथ ले गया

प्रत्यंचा

119 ज्ञान चतुर्वेदी : बस, ख़ुद के साथ

अनन्तिम

120 विजयमोहन सिंह : हिन्दी में संस्मरण लेखन

आवरण चित्र : राजेश जेटली
आवरण सज्जा : चन्द्रकान्त शर्मा
भीतरी साज-सज्जा : महेश्वर
रेखाचित्र : पूनम किशोर, पंकज दीक्षित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित

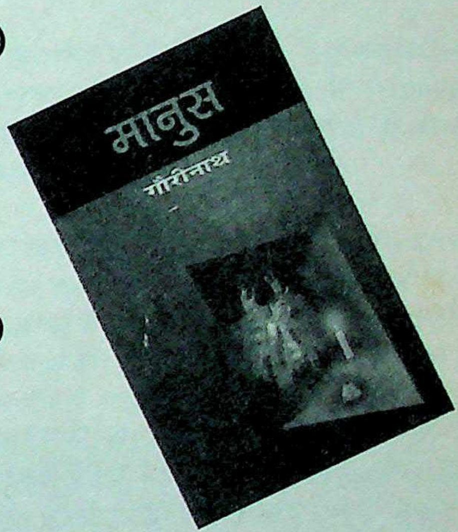

राऊ स्वामी (उपन्यास)

नागनाथ इनामदार

पृष्ठ : 424, मूल्य : 320 रुपये

●

मानुष (कहानी-संग्रह)

गौरीनाथ

पृष्ठ : 144, मूल्य : 100 रुपये

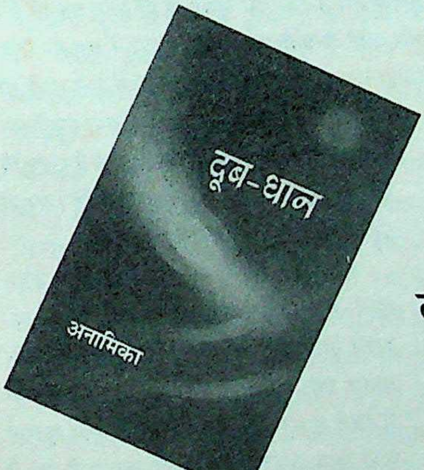

●

दूब-धान (कविता-संग्रह)

अनामिका

पृष्ठ : 184, मूल्य : 140 रुपये

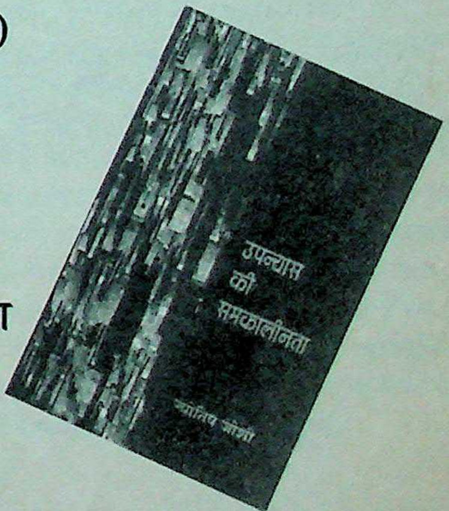

●

उपन्यास की समकालीनता (आलोचना)

ज्योतिष जोशी

पृष्ठ : 240, मूल्य : 200 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दस्तख़त

नयी कहानी की बहुचर्चित त्रयी राकेश, कमलेश्वर और यादव की पहली कड़ी मोहन राकेश का निधन 3 जनवरी, 1972 में हो गया था और इसे संयोग ही कहा जाएगा कि 25 जनवरी, 2007 को काल ने त्रयी के उसी क्रम में ही अगला निशाना कमलेश्वर को बनाया। यह भी एक संयोग ही था कि 'नया ज्ञानोदय' का पिछला अंक कमलेश्वर पर केन्द्रित था और बीच में यह योजना भी बनी थी कि कमलेश्वर के 75वें जन्मदिवस पर एक आयोजन किया जाए और उसी में अंक का लोकार्पण हो, मगर यह सोचकर स्थगित कर दिया गया था कि इससे कमलेश्वर जी के स्वास्थ्य पर अतिरिक्त दबाव पड़ेगा। जिस रोज़ अंक प्रकाश में आया, कमलेश्वर जी के पास पाठकों के फ़ोन आने लगे। इन पंक्तियों का लेखक उस समय इलाहाबाद में था जब कमलेश्वर जी ने अत्यन्त आह्लदित स्वर में बताया कि उनके पास सुबह से ही फ़ोन आ रहे हैं। कोई उनकी इंटरव्यू की प्रशंसा कर रहा है और कोई कहानी की। किस-किस ने मधुकर सिंह का संस्मरण पसन्द किया है और किसने कामतानाथ का। पाठकों ने उन्हें यह भी सूचना दी थी कि उनकी गायत्री जी के साथ अत्यन्त प्रफुल्लित मुद्रा में छपी तस्वीर बहुत आकर्षक है। उन्होंने बताया कि सूरजकुंड में डाक एक दिन देर से पहुँचती है।

उपेन्द्रनाथ अश्क कोई ज्योतिषी नहीं थे, परन्तु कमलेश्वर के हाथ की रेखाओं को देखकर अक्सर कहा करते थे कि यह शख़्स बहुत ऊपर जाएगा। जिस क्षेत्र में काम करेगा, वहीं चमकेगा। कमलेश्वर की भाग्य रेखा उन्हें बहुत आकर्षित करती थी और कमलेश्वर से मिलते ही उनकी हथेली पढ़ने लगते थे। अश्कजी की भविष्यवाणी सच ही साबित हुई। कमलेश्वर ने जिस क्षेत्र में भी क़दम रखा, उसमें आशातीत सफलता अर्जित की।

कमलेश्वर जी ने अपना स्थायी नीड़ बहुत सोच-समझकर सूरजकुंड में बनवाया होगा। इससे पूर्व दिल्ली की पहली पारी में वह और मोहन राकेश करोल बाग जैसी घनी आबादी में रहते थे। मुम्बई के भीड़ भरे इलाक़ों का भी उन्हें ख़ूब अनुभव था, मगर लगता है कि वे अपने जीवन का शेष समय एकान्त में बिताना चाहते थे। इस एकान्त वास का उन्होंने भरपूर लाभ भी उठाया और रचनात्मक लेखन के अलावा जमकर स्तम्भ लेखन भी किया। कथा संस्कृति पर अनूठी शोधपरक कृति तैयार की। उनका शरीर अवश्य जर्जर हो चुका था, मगर उनके इरादे बुलन्द थे। उनके ज़ेहन में लेखन को लेकर बहुत-सी योजनाएँ थीं। ख़ासतौर पर वह हिन्दी-उर्दू की साझा संस्कृति पर काम करना चाहते थे। उनके निकट हिन्दी उर्दू के बीच कोई बुनियादी अन्तर नहीं था। लिपि के दुराग्रह को भी वह स्वीकार नहीं करते थे। वस्तुतः 'नया ज्ञानोदय' का प्रस्तुत अंक कमलेश्वर जी की उर्दू के प्रति सदाशयता को ही प्रकट करने का हमारा विनम्र प्रयास है और यह अंक उन्हीं की स्मृति को समर्पित है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपेन्द्रनाथ अश्क कोई ज्योतिषी नहीं थे, परन्तु कमलेश्वर के हाथ की रेखाओं को देखकर अक्सर कहा करते थे कि यह शख़्स बहुत ऊपर जाएगा। जिस क्षेत्र में काम करेगा, वहीं चमकेगा। कमलेश्वर की भाग्य रेखा उन्हें बहुत आकर्षित करती थी और कमलेश्वर से मिलते ही उनकी हथेली पढ़ने लगते थे। अश्कजी की भविष्यवाणी सच ही साबित हुई। कमलेश्वर ने जिस क्षेत्र में भी क़दम रखा, उसमें आशातीत सफलता अर्जित की। रेडियो का कार्यक्रम हासिल करने के लिए जवानी में चप्पल चटखाने वाले कमलेश्वर दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक के पद तक पहुँचे। साहित्यिक पत्रकारिता में क़दम रखा तो वहाँ भी अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। फ़िल्मों में गये तो अपने समय के सबसे चर्चित पटकथा लेखक साबित हुए। 'आँधी', 'मौसम', 'अमानुष', 'पति, पत्नी और वह' जैसी फिल्मों ने धूम मचा दी। धारावाहिकों का लेखन प्रारम्भ किया तो 'चन्द्रकान्ता' जैसे कई महासीरियल लिख डाले। वे टीवी, सिनेमा के मोहक संसार में इतना रच-बस गये थे कि लगता ही नहीं था, वे साहित्य की दुनिया में कभी वापिस लौटेंगे। कमलेश्वर ही नहीं, मनोहरश्याम जोशी के बारे में भी लोग ऐसा ही सोच रहे थे। साहित्य की दुनिया कुछ इतनी कठोर और दुर्निवार होती है कि एक बार इस संसार से बहिर्गमन करने के बाद दुबारा प्रवेश मिलना बहुत मुश्किल होता है। लेकिन इसके उलट सिने संसार में अपनी रचनात्मकता का सही उपयोग न देखकर कमलेश्वर ने साहित्य की दुनिया में लौटने का निर्णय लिया तो दुगुने वेग के साथ इस संसार में प्रवेश किया। न सिर्फ़ 'कितने पाकिस्तान' लिखकर बहुतों को चौंका दिया, उस पर अकादेमी पुरस्कार लेकर साहित्य जगत में हलचल पैदा कर दी। वे साहित्य संसार के स्थायी बाशिन्दे हो गये।

कमलेश्वर के निधन के बाद हमारे कार्यालय में पाठकों के पत्रों का अम्बार लग गया है। उन्हें पढ़कर पता चलता है कि कमलेश्वर ने कितने लोगों की मदद की, कितनों को रोज़गार दिलवाया, कितने लेखकों को प्रोत्साहित किया। कोई भी शख़्स अगर कमलेश्वर के यहाँ सहायता के लिए पहुँचा, वह ख़ाली हाथ नहीं लौटा। उनके बहुत से साथी रचनाकार अपनी कलम से कमलेश्वर पर कटाक्ष करते थे, परन्तु कमलेश्वर ने लिखकर कभी पलटवार नहीं किया। लोग उनके प्रति जितना आक्रामक होते थे, वे उसी मात्रा में विनम्र हो जाते थे। ज्ञानपीठ परिवार की ओर से कमलेश्वर को हमारी श्रद्धांजलि।

'नया ज्ञानोदय' का यह अंक उर्दू कहानी विशेषांक के रूप में आपके सामने है। 'मील का पत्थर' स्तम्भ के अन्तर्गत पाकिस्तानी कथाकार इन्तज़ार हुसैन पर सामग्री दी जा रही है। इन्तज़ार हुसैन एशिया महाद्वीप में अपनी तरह के अनूठे और दुर्लभ रचनाकार हैं। अशोक वाजपेयी ने इन्तज़ार साहब पर बड़ा ही आत्मीय संस्मरण लिखा है। गोपीचन्द नारंग उनकी कथा यात्रा से परिचित करा रहे हैं और इकबाल रिज़वी ने नया ज्ञानोदय के लिए उनसे छोटी-सी बातचीत की है। ख़ुद इन्तज़ार साहब ने अपनी रचना प्रक्रिया पर अपनी ख़ास शैली में एक पर्चा लिखा है।

अलावे इन्तज़ार हुसैन की कहानी के, अंक में अहमद नदीम क़ासमी, मुहम्मद मंशा याद, गुलज़ार, मसऊद मुफ्ती, असद मुहम्मद खाँ, सुलतान जमील नसीम, सलाम बिन रज़ाक, अब्दुस्समद, शमोएल अहमद, शाहिद अख़्तर, असरार गाँधी और खुर्शीद अकरम की कहानियाँ हैं। हमें खेद है कि चाव से मँगाने के बावजूद साजिद रशीद और ग़ज़ाल ज़ैगम की कहानियाँ स्थानाभाव के कारण नहीं जा सकीं। हम अगले किसी अंक में इन कहानियों को स्थान देंगे। स्थानाभाव के ही कारण इस अंक में भारत की मेज़ से, प्रत्यंचा और अनन्तिम के अलावा बाक़ी सारे स्तम्भ स्थगित करने पड़े। देशकाल में भी उर्दू से सम्बन्धित चीज़ें ही प्रवेश पा सकीं।

पाठकों के लिए यह सूचना है कि 'नया ज्ञानोदय' के मूल्य में हमें 5 रुपये बढ़ाने पड़ रहे हैं। अगले अंक से पत्रिका का मूल्य 25 रुपये होगा। अगले अंक में पत्रिका की वार्षिक, त्रैवार्षिक, पंचवार्षिक व आजीवन सदस्यता शुल्क की संशोधित सूचि प्रकाशित की जाएगी।

(हस्ताक्षर) कालिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सन् 2007 देश घटी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति में होने वाले आयोजनों का वर्ष है। भारत सरकार ने ही पाँच जयन्तियाँ मनाने की गज़ट अधिसूचना जारी की है और सभी के लिए एक राष्ट्रीय समिति भी प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में बनाई है। ये जयन्तियाँ हैं— 1857 की 150वीं जयन्ती, वन्दे मातरम के गायन की सौवीं जयन्ती, स्वतन्त्रता प्राप्ति की साठवीं जयन्ती और भगत सिंह की जन्मशती के साथ-साथ उनकी शहादत के 75 वर्ष पूरे होने की स्मृति-हालाँकि उसका वर्ष 2006 बीत चुका है। इनके अलावा चन्द्रशेखर आज़ाद की जन्मशती भी 2006 में थी, तिलक के जन्म की 150वीं जयन्ती भी इसी वर्ष पड़ती है। इनका गज़ट अधिसूचना में उल्लेख नहीं है। इन जयन्तियों को लेकर सरकारी आयोजन कैसे होंगे, इसका अन्दाज़ा तो 'वन्दे मातरम' जयन्ती पर हुए कार्यक्रमों से लगाया जा सकता है, लेकिन देश के सामान्य नागरिकों को भी देश की आजादी से जुड़ी घटनाओं से वास्ता रखना चाहिए और जो राजनीतिक संगठन देश में सामाजिक परिवर्तन की धारा से जुड़े हुए हैं, उन पर तो ये ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है कि देश के इतिहास को बदलने वाली घटनाओं को वे इस ढंग से याद करें कि आम नागरिक में राष्ट्रीय स्वाभिमान की चेतना बढ़े और ब्रिटिश उपनिवेशवाद से भी ज़्यादा ख़तरनाक जो नव-साम्राज्यवाद, नव-उपनिवेशवाद का ख़तरा इस समय पूरी दुनिया और हमारे देश पर मंडरा रहा है, उसका प्रतिरोध करने के लिए इन ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति द्वारा जन-सामान्य में देशभक्ति और साम्राज्यवाद के प्रतिरोध की चेतना जगायें।

सभी भारतीय भाषाओं में स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी घटनाओं व व्यक्तित्वों को आधार बनाकर प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया है, जिसमें से बहुत सारा साहित्य ब्रिटिश औपनिवेशक काल में प्रतिबन्धित भी हुआ। आज वह साहित्य पुन: प्रकाश में आ रहा है। वर्ष भर इस साहित्य की प्रस्तुति सन्दर्भ अनुसार की जानी चाहिए। जैसे फरवरी में ग़दर पार्टी द्वारा भारत में 1857 के ग़दर से प्रेरणा लेकर फरवरी 1915 में किये गये ग़दर के असफल प्रयास की साहित्यिक प्रस्तुति। मार्च में भगत सिंह व उनके साथियों की शहादत से जुड़ी ढेरों साहित्यिक रचनाओं में से कुछ की झलक। अप्रैल में असेंबली बम काण्ड और मंगल पांडे की फाँसी से जुड़ा साहित्य। मई में कर्तार सिंह सराभा का जन्मदिन व 1857 के ग़दर की शुरुआत। जून में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई व बिरसा मुंडा की शहादत, जुलाई में शहीद ऊधम सिंह की शहादत, अगस्त में 9 अगस्त 'भारत छोड़ो दिवस' व 15 अगस्त के 'स्वाधीनता दिवस' से जुड़ी सामग्री, सितम्बर में भगत सिंह जन्मशती पर ढेरों सामग्री, अक्तूबर-नवम्बर में ग़दर पार्टी स्थापना दिवस व सराभा की शहादत, दिसम्बर में काकोरी काण्ड की शहादतें व जनवरी में रास बिहारी बोस का निधन इत्यादि अनेक घटनाओं व व्यक्तियों से जुड़ा भारतीय साहित्य इस पूरे वर्ष में सामने लाया जाना चाहिए। इसी कड़ी में सबसे पहले भगत सिंह शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर भगत सिंह पर रचे साहित्य में से सर्वाधिक लोकप्रिय पंजाबी 'घोड़ी' (लिप्यंतरण व भावार्थ के साथ) हिन्दी में बहुचर्चित रही किताब 'लाहौर की फाँसी' यानी 'आजादी के तराने' से कवि बमलट की भगत सिंह की फाँसी के दिनों में ही रचित एक हिन्दी कविता भी प्रस्तुत है। साथ में फाँसी के तुरन्त पहले अपने छोटे भाइयों कुलबीर और कुलतार के नाम भगत सिंह के अन्तिम पत्र भी। इस स्तम्भ के प्रस्तुतकर्ता हैं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. चमनलाल।

इसी खण्ड में आप पढ़ेंगे यशपाल की एक छोटी (और लगभग अब तक अचर्चित रही आई) कहानी 'साग', जिसमें दर्शाया गया है कि अँग्रेज़ों ने शहीदों की राख और फूलों के साथ कितना निर्मम और अमानवीय सलूक किया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाइयों के नाम भगत सिंह के अन्तिम पत्र

लाहौर सेंट्रल जेल
3 मार्च, 1931

प्रिय कुलबीर सिंह,
तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाक़ात के वक़्त ख़त के जवाब में कुछ लिख देने के लिए कहा। कुछ अलफाज़, लिख दूँ, बस। देखो, मैंने किसी के लिए कुछ न किया, तुम्हारे लिए भी कुछ नहीं। आजकल बिल्कुल मुसीबत में छोड़कर जा रहा हूँ। तुम्हारी ज़िन्दगी का क्या होगा? गुज़ारा कैसे करोगे? यही सब सोचकर काँप जाता हूँ। मगर भाई हौसला रखना, मुसीबत में भी कभी मत घबराना। इसके सिवा और क्या कह सकता हूँ: अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता, मगर अब तो यह भी नामुमक़िन मालूम होता है। आहिस्ता-आहिस्ता मेहनत से पढ़ते जाना। अगर कोई काम सीख सको तो बेहतर होगा, मगर सबकुछ पिता जी की सलाह से करना। जहाँ तक हो सके, मुहब्बत से सब लोग गुज़ारा करना। इसके सिवाय क्या कहूँ!

जानता हूँ कि आज तुम्हारे दिल के अन्दर ग़म का समुद्र ठाठें मार रहा है। भाई तुम्हारी बात सोचकर मेरी आँखों में आँसू आ रहे हैं, मगर क्या किया जाए, हौसला करना। मेरे अज़ीज़, मेरे बहुत-बहुत प्यारे भाई, ज़िन्दगी बड़ी सख़्त है और दुनिया बड़ी बे-मुरव्वत। सब लोग बड़े बेरहम हैं। सिर्फ़ मुहब्बत और हौसले से ही गुज़ारा हो सकेगा। कुलतार की तालिम की फ़िक्र भी तुम ही करना। बड़ी शर्म आती है और अफसोस के सिवाय मैं कर ही क्या सकता हूँ! साथ वाला ख़त हिन्दी में लिखा हुआ है। ख़त 'के' की बहन को दे देना। अच्छा नमस्कार, अज़ीज़ भाई अलविदा... रुख़सत।

तुम्हारा ख़ैर-अंदेश
भगत सिंह

सेंट्रल जेल, लाहौर
3 मार्च, 1931

अज़ीज़ कुलतार,
आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत दुःख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझसे सहन नहीं होते। बरखुर्दार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख़्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूँ!

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े-ज़फा क्या है,
हमें यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों ख़फ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुक़ाबला करें।
कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफ़िल
चराग़े-सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
हवा में रहेगी मेरे ख़्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।

अच्छा रुख़्सत। खुश रहो अहले-वतन, हम तो सफ़र करते हैं। हिम्मत से रहना।
नमस्ते।

तुम्हारा भाई
भगत सिंह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य में भगत सिंह

चमनलाल

किसी भी देश या समाज में ऐसे लोकनायक होते हैं, जो अपने व्यक्तित्व के किसी विशेष पक्ष से लोकमानस को ऐसे आकर्षित करते हैं, जैसे लोहे को चुम्बक। दिलचस्प यह है कि समय बीतने से इस आकर्षण में कमी नहीं आती, बल्कि कई बार यह आकर्षण बढ़ता चला जाता है। लोकमानस का अपने लोकनायकों के प्रति यह आकर्षण लोक साहित्य, लोकगीतों, लोकसंगीत, नाटकों, फ़िल्मों आदि में भी अभिव्यक्त होता है तथा बहुत बार शिष्ट साहित्य या सृजनात्मक साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। भगत सिंह भारतीय समाज, यहाँ तक कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों के लोकनायक हैं, जिनके व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण लोक साहित्य में भी निरन्तर बना हुआ है। भगत सिंह को केन्द्र में रखकर 1950 से 2005 के बीच पाँच-छह हिन्दी फ़िल्में बन चुकी हैं, जिनमें 'रंग दे बसन्ती' ने तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि भी हासिल की है। मनोज कुमार अभिनीत 'शहीद' के गीत आज चार दशक बाद भी उतना ही मन को छूते हैं, तो 'लीजेंड ऑव भगत सिंह' (अजय देवगन अभिनीत) ने सामान्य व बौद्धिक पाठकों दोनों को ही प्रभावित किया है, क्योंकि इस फ़िल्म में पहली बार भगत सिंह के विचारों को अभिव्यक्ति मिली है। हिन्दी में 'गगन दमामा बाज्यो' (लेखक— पीयूष मिश्रा) नाटक में ही नहीं चरनदास सिद्धू के साहित्य अकादेमी पुरस्कृत पंजाबी नाटक 'भगत सिंह शहीद' के हिन्दी अनुवाद की मंच प्रस्तुति में भी 1980 के दशक के बाद भगत सिंह का वैचारिक व्यक्तित्व उभरकर आया है। इस नाटक में भगत सिंह के 'समाजवादी चिंतक' के पहलू को उभारा गया है। हिन्दी में सागर साहरी का नाटक भी भगत सिंह पर आधारित था। हिन्दी में भगत सिंह को केन्द्र में रखकर इतना लेखन हुआ है कि सम्भवत: मात्रा और गुणवत्ता दोनों में ही यह लेखन पंजाबी भाषा के लेखन से भी आगे बढ़ कर है। हिन्दी में बच्चन सिंह का 'शहीद-ए-आज़म' शीर्षक से 2006 में 336 पृष्ठ का उपन्यास छपा, इससे पहले 2004 में प्रकाशित मृदुला गर्ग के 'अनित्य' उपन्यास में भी भगत सिंह का सन्दर्भ उभरकर आया था। रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में भी भगत सिंह लोकनायक के रूप में चर्चा में आते हैं।

लेकिन भगत सिंह पर सम्भवत: पहला उपन्यास मराठी में मृणालिनी जोशी कृत 'इनकलाब' है, जिसके प्रथम प्रकाशन का इसके 2005 में प्रकाशित हिन्दी संस्करण से पता नहीं चलता। यहाँ तक कि हिन्दी में इसके प्रथम प्रकाशन का भी, जो मूल मराठी प्रकाशन के बीस वर्ष बाद हुआ। चूँकि उपन्यास के आरम्भ में भगत सिंह की माता विद्यावती का आशीर्वाद है, उससे लगता है कि यह उपन्यास मराठी में पहली बार 1960-70 के बीच छपा होगा। 543 पृष्ठ के इस बड़े उपन्यास का प्राक्कथन भगत सिंह के साथी भगवानदास माहौर द्वारा लिखा गया था। हिन्दी, पंजाबी और उर्दू के अलावा मराठी ही नहीं, भगत सिंह पर साहित्यिक रचनाएँ सुदूर दक्षिण तक— तमिल तक में हुई। बांग्ला में तो भगत सिंह का भावनात्मक असर होने से रचनाओं की प्रचुरता होनी ही थी। 1930 से 1947 के बीच ब्रिटिश सरकार द्वारा विभिन्न भाषाओं की जिन पुस्तकों पर पाबन्दी लगाई गयी, उनमें से सबसे ज़्यादा किताबें भगत सिंह पर ही केन्द्रित थीं और वे किताबें लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में रची गयीं।

भगत सिंह की जीवनी अनेक भाषाओं में लिखी गयीं। लेकिन सबसे ज़्यादा रचना काव्य क्षेत्र में हुई। हिन्दी में श्रीकृष्ण सरल कृत 'भगत सिंह महाकाव्य' साढ़े पाँच सौ पृष्ठ से अधिक आकार का है। इन्हीं श्रीकृष्ण सरल ने चन्द्रशेखर आज़ाद पर भी महाकाव्य लिखा और इनका

लाहौर की फाँसी

एन.एल.ए. बमलट

रंग अब लाने को है, फाँसी लाहौर की।
दुश्मन को झुकाने को है, फाँसी लाहौर की॥

बैठे थे हम सभी समझौते की ओट में।
परदा सुलाह हटाने को है, फाँसी लाहौर की॥

सींचा है लीडरों ने इसे अपने खून से।
हक़ अपना चुकाने को है, फाँसी लाहौर की॥

जय वीर भगत जैसे ईहां बलिदान हो चुके।
मुरदों में जान लाने को है, फाँसी लाहौर की॥

आवेगी याद देख ले 'बमलट' ये उमर भर।
हरगिज़ ना भुलाने को है, फाँसी लाहौर की॥

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'क्रान्ति गंगा' काव्य ग्रंथ लगभग महाभारत से भी बड़े आकार में 1050 पृष्ठ का, विश्व का सबसे बड़ा प्रबन्ध काव्य कहा गया है। इसी क्रान्ति गंगा के अठारह में से आठवें सर्ग में (पृष्ठ 579 से 679 तक) भगत सिंह और उनके दल की कथा वर्णित हुई है। हिन्दी में शैलेन्द्र ही नहीं, ढेरों ढेर कवियों ने भगत सिंह को केन्द्र में रखकर कविताएँ रची हैं। इनमें शान्ति स्वरूप कुसुम व हीरा प्रसाद ठाकुर आदि शामिल हैं। हिन्दी, उर्दू व पंजाबी में भगत सिंह की फाँसी से कुछ पहले व बाद में तो कविताओं की इतनी बड़ी संख्या में रचना हुई कि उनमें से अधिकांश पर अँग्रेज़ सरकार ने पाबन्दी लगायी। हिन्दी की ऐसी बैन कुछ कविताओं से चुनकर नेशनल बुक ट्रस्ट ने 'फाँसी लाहौर की' शीर्षक से 2006 में ही एक संकलन डॉ. गुरदेव सिंह सिद्धू के संपादन में छापा है। इन्हीं डॉ. सिद्धू के सम्पादन के 'सिंघ गरजना' शीर्षक से भगत सिंह से सम्बन्धित पंजाबी कविताओं का एक संकलन पंजाबी विश्वविद्यालय ने 1992 में प्रकाशित किया था और अभी 2006 में ही इन्हीं के संपादन में पंजाबी में 'घोड़ियाँ शहीद भगत सिंह' संकलन छपा है। पंजाबी में प्रो. दीदार सिंह रचित प्रबन्ध काव्य शहीद भगत सिंह शीर्षक से 1984 में छपा, जिसमें भगत सिंह का वैचारिक पक्ष प्रखरता से उभरकर सामने आया है।

'घोड़ी' पंजाबी भाषा का लोकगीत रूप है, जिसमें दूल्हा बारात जाने और दुल्हन लाने के लिए चलते समय घोड़ी पर चढ़ता है और उसके पीछे 'सरवाला', जो अक्सर उसका छोटा भाई होता है, वह बैठता है। भगत सिंह के सन्दर्भ में 'घोड़ी' लोकगीत रचने वाले लोक कवियों ने 'मौत' को भगत सिंह की दुल्हन के रूप में चित्रित करते हुए भगत सिंह को चाव से अपनी दुल्हन को प्राप्त करने का बिम्ब सृजित किया गया है। 'मौत' यानी 'फाँसी' पर चढ़ते जाने वक़्त भगत सिंह का दूल्हे की तरह घोड़ी पर चढ़कर जाना लोकमानस का ऐसा बिम्ब है, जिसने भगत सिंह को सदियों तक के लिए लोकमानस में ऐसे प्रतिष्ठित कर दिया है कि उसका हाल में उभरकर आया वैचारिक पक्ष उसे और सुदृढ़ तो कर सकता है, लेकिन उस बिम्बा को बदल नहीं सकता।

पंजाबी (गुरमुखी व फ़ारसी— दोनों लिपियों में) 1931 के आसपास मिलते-जुलते शब्दों वाली भी कई घोड़ियाँ छपीं। शायर मेला राम 'तायर' व महिन्दर सिंह सेठी अमृतसरी की 'घोड़ियों' के कई हिस्से मिलते-जुलते हैं। शायर तायर ने 23 मार्च 1932 को लाहौर में भगत सिंह की शहादत के एक बरस बाद यहाँ प्रस्तुत 'घोड़ी' को ताँगे पर चढ़कर बाज़ार में गाया। इस घोड़ी सम्बन्धी, हिन्दी-पंजाबी लेखक गौतम सचदेव ने 'हुण' (जनवरी-अप्रैल 2007) अंक में दिलचस्प क़िस्सा बयान किया है। गौतम सचदेव के अनुसार उसके ससुर राम लुभाया चानणा स्वतंत्रता सेनानी थे और 1998 में संयोग से गौतम की भेंट इस घोड़ी के शायर तायर से हो गयी, जो उस समय सौ बरस के हो चुके थे, लेकिन उस उम्र में भी उन्होंने घोड़ी पूरी याद थी और गौतम ने टेपरिकार्डर में तायर की यादें और घोड़ी उन्हीं के स्वर में में रिकार्ड की। इसी घोड़ी को 'लीजेंड ऑव भगत सिंह' फ़िल्म में भी गीत के रूप में इस्तेमाल किया गया।

भगत सिंह शताब्दी वर्ष व उनकी शहादत के महीने में इस घोड़ी का देवनागरी लिप्यन्तरण व हिन्दी में भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

घोड़ी भगत सिंह शहीद

आवो नी भैणों रल गावीए घोड़ियाँ
जँञा ते होई ए तियार वे हाँ,
मौत कुड़ी नूँ परनावण चल्लिया
देशभगत सरदार वे हाँ।

(आओ बहनो मिलकर घोड़ियाँ गाएँ
बारात तो चलने के लिए तैयार है।
मौत दुल्हन को ब्याहने के लिए
देशभक्त सरदार चला है।)

फाँसी दे तखते वाला खारा बणा के,
बैठा तूँ चौकड़ी मार वे हाँ
हंझूआँ दे पाणी भर नाहवो गड़ोली
लहूँ दी रत्ती मोहली धार वे हाँ।

(फाँसी के तख्ते को पटरी बनाकर
तुम चौकड़ी मारकर बैठे हो।
लोटे में आँसुओं के जल को भरकर नहाओ[1]
लहू की लाल मोटी धार बनी है।)

फाँसी दी टोपी वाला मुकट बणा के,
सिहरा तूँ बद्धा झालरदार वे हाँ।
जंडी ते वड्ढी लाडे जोर जुलम दी
सबर दी मार तलवार वे हाँ।

(फाँसी की टोपी वाला मुकुट बनाकर
तुमने झालरों वाला सेहरा पहना है
जोर जुल्म की जंडी[2] को तुमने
सब्र की तलवार से काट दिया है।)

राजगुरु ते सुखदेव सरबाले
चढ़िया ते तूँ ही विचकार वे हाँ
वाग फडाई तैथों भैणाँ ने लैणी
भैणाँ दा रखिया उधार वे हाँ।

(राजगुरु व सुखदेव तुम्हारे सरबाले बने है। और तुम उनके बीच में चढ़कर बैठे हो। घोड़ी की लगाम पकड़ाने का शगुन तुमने बहनों से उधार रखा है।)

हरी किशन तेरा बणिया वे साँढू,
ढुक्के ते तुसीं इको बार वे हाँ
पैंती करोड़ तेरे जांजी वे लाडिया
कई पैदल ते कई सवार वे हाँ।

(हरिकिशन[3] तुम्हारा साढू भाई बना है
तुम दोनों एक ही द्वार पर पहुँचे हो
ओ दुल्हे तुम्हारे पैंतीस करोड़[4] बाराती हैं
कुछ पैदल व कुछ सवारियों पर हैं।)

कालीआँ पुशाकाँ पाके जँञा जु तुर पईं,
ताइर वी होइया ए तिआर वे हाँ।

(काली पोशाकें पहनकर बारात जब
चल पड़ी तो तायर भी तैयार हो गया।)

1. घोड़ी पर चढ़ने से पहले दूल्हे को नहलाया जाता है।
2. दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर गाँव के बाहर जंड के वृक्ष को तलवार से काटता है, यह भी इस रीति का हिस्सा है।
3. हरिकिशन को पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में गर्वनर पर गोली चलाने के कारण 1 मई 1931 को फाँसी दी गयी थी।
4. पैंतीस करोड़ उन दिनों अविभाजित भारत की आबादी थी। शायर तायर ने 1998 में इसे दोबारा गाते समय अस्सी करोड़ कर दिया था।

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साग

यशपाल

जिला जेल की फाँसी के कोठरियों में विशेशरप्रसाद और रहमान ख़ाँ बन्द थे। जैसे लोहे के पिंजरों में बन्द सरकस के शेर और चीते को लोग विस्मय और कौतूहल से देखते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े अँग्रेज़ सिविल सर्जन साहब, बग़ावत के पश्चात जिले की व्यवस्था सुधारने के लिए आये अँग्रेज कलक्टर साहब, फाँसी की कोठरियों के जंगले के सामने खड़े हो, इन क़ैदियों को देखते थे। परन्तु इन बड़े अफ़सरों के मुख पर सरकस देखने वालों का कौतूहल नहीं, घृणा थी।

जब यह दोनों क़ैदी जेल में आये, इनके शरीर पर गोलियों के घाव थे। अँग्रेज़ सिविल सर्जन साहब ने कर्तव्य का पालन करने के लिए चीर-फाड़ कर विशेशरप्रसाद के घुटने से और रहमान ख़ाँ की कमर से गोली निकाली और उनकी दवा-दारू की। इस कर्तव्य का पालन करते समय साहब का चेहरा घृणा से छुहारे की भाँति सिकुड़ जाता।

अपने चारों ओर अदब से सहमकर खड़े हुए अपने हिन्दुस्तानी मुसाहिबों, जेलर, जेल के डॉक्टर, कम्पाउण्डर, जेल के बाबू लोगों और वार्डरों को सुनाकर साहब, टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहना न भूलते— ''इन बदमाश लोगों ने साहब लोगों को बँगले में जलाकर मारा है।''

गोलियों के घाव ठीक हो जाने से पहले ही दोनों क़ैदियों के पाँवों में साहब के हुक़्म से बेड़ियाँ डाल दी गयीं। उन पर तुरन्त मुकद्दमा चलाकर सज़ा देने के लिए सेशन जज स्वयं जेल में तशरीफ़ लाये। शीघ्र ही पर्याप्त गवाही और सुबूत पेश हो जाने से उन्हें सेशन जज साहब ने आग लगाने और हत्या के अपराध में फाँसी का हुक़्म सुना दिया।

सरकार के क़ायदे से फाँसी की सज़ा पाये प्रत्येक व्यक्ति के लिए हाईकोर्ट से फाँसी की सज़ा रद्द हो जाने या सज़ा पर हाईकोर्ट की मंजूरी की मोहर लग जाने की प्रतीक्षा में उन्हें लोहे की सींखचादार कोठरियों में बन्द रखा गया।

अँग्रेज़ सिविल सर्जन साहब जब भी इन कोठरियों के सामने आते, घृणा की सिकुड़न उनके चेहरे पर आ जाती। अधिक कुछ कहने का अवसर न होने पर 'मर्डरर'! जैसा कुछ कहकर एक ओर थूक देते।

साहब का रुख़ देख ऐसे भयंकर क़ैदियों के ऊपर हिन्दुस्तानी जेलर, दूसरे अफ़सर और वार्डर सब विशेष सख़्ती रखते थे। कभी कोई दूसरा क़ैदी उनकी कोठरी की छाया के समीप भी न जा पाता। उनके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामने आते ही वह सब अफ़सरों और वार्डरों के चेहरे पत्थर की तरह भाव शून्य और कठोर हो जाते।

विशेशरप्रसाद और रहमान ख़ाँ अपने अपराध का बोझ जानते थे। क्षमा की उन्हें कोई आशा न थी। परन्तु निराशामय विस्मय था— इन तमाम हिन्दुस्तानियों को उनसे द्वेष और भय क्यों है? जिस अँग्रेज़ सरकार से वे लड़ने गये थे, उस सरकार का अँग्रेज़ तो कभी-कभी ही दिखाई देता है। वह सरकार तो स्वयं उस जैसों के ही हाथ से चल रही है। देश को आज़ाद किया जाय तो किससे?

अँग्रेज़ों को जलाकर उनका ख़ून करने वाले इन हत्यारों के प्रति साहब लोगों का क्रोध और घृणा के कारण प्रतिहिंसा का अन्त न था। हाईकोर्ट से दोनों को फाँसी लगाने की स्वीकृति आने पर इन्हें फाँसी की रस्सी पर छटपटाते देखने के लिए, जेल के बड़े साहब और बग़ावत से जिले की बिगड़ी अवस्था सुधारने के लिए आये दूसरे अँग्रेज़ अफ़सर तड़के ही जेल पहुँचे।

मृत्यु सामने थी। मृत्यु की ओर उन्हें शत्रु की प्रतिहिंसा ले जा रही थी। शरीर देकर भी उस प्रतिहिंसा के सम्मुख स्वतन्त्रता की भावना को जीवित रखने के लिए, परास्त न होने के लिए, उन्होंने फाँसी के तख़्ते पर पहुँचकर भी पुकार लगायी— ''इंकलाब ज़िन्दाबाद! भारत माता की जय!''

और उन्होंने अपने चारों ओर खड़े हिन्दुस्तानियों की ओर देखा— वे काठ की मूर्तियों की भाँति भाव शून्य और स्थिर थे।

मृत्यु के क्षण में भी अपनों से अपनेपन का कोई संकेत उन्हें न मिला। केवल शत्रु के चेहरे पर दाँत पीस लेने का संकेत था।

विशेशरप्रसाद और रहमान के सम्बन्धी रोते हुए अपने आदमियों की लाशें पाने के लिए जेल के फाटक पर खड़े थे। कलक्टर साहब ने वह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। बाग़ियों की लाश का प्रदर्शन शहर में होने से शान्ति भंग होने का भय था।

सिविल सर्जन साहब के हुक़्म से हिन्दुस्तानी जेलर हाज़िर हुए। साहब ने हुक़्म दिया— ''दोनों बाग़ियों की लाशें जेल के भीतर ही दफ़नाई जायें।'' दाँत पीसकर साहब ने कहा, ''और इनकी लाशों पर मर्सा का साग बोया जाय। साग तैयार होने पर सब साहब लोगों के यहाँ भेजा जाय।''

मर्सा का साग बहुत जल्दी तैयार हो जाता है। गहराई तक भुरभुरी क़ब्रों की ज़मीन पा वह और भी जल्दी ख़ूब ऊँचा उठ आया। एक दिन साग को ख़ूब हरा-भरा देख सिविल सर्जन साहब ने साग साहब लोगों को भेजे जाने की फ़र्माइश की।

जेल भर में ख़बर फैल गयी— बाग़ियों की क़ब्रों का साग आज साहब लोगों के यहाँ गया है। रात पड़ने पर जेल बन्द हुआ। बारकों में बन्द प्रत्येक क़ैदी के मन में साग की बात थी। प्रत्येक क़ैदी कल्पना कर रहा था—हिन्दुस्तानी को अँग्रेज़ खा रहा है। परन्तु सभी क़ैदियों का मुँह बन्द था— ऐसी बात कहने की रिपोर्ट अगर साहब के सामने हो जाय?

जेल के प्रत्येक अफ़सर के मन में साग की बात थी। प्रत्येक अफ़सर और वार्डर मन में कल्पना कर रहा था कि अँग्रेज़ हिन्दुस्तानी को खा रहा है परन्तु जेलर साहब दूधिया मसहरी में, पंखे के नीचे, दिल में उबाल लिये तकिये पर मुँह दबाए पड़े थे। डॉक्टर और कम्पाउण्डर साहब चादर में सिर छिपाए यही सोच रहे थे। बड़े वार्डर मैले फटे कम्बल पर आँख मूँदे, और केवल बीस रुपये माहवार पाने वाले नये सिपाही खुरांटी खटिया पर औंधा मुँह किये यही सोच रहे थे परन्तु; शब्द किसी के होंठों पर न था।

जिले में अमन हो जाने की ख़ुशी में साहब लोगों के क्लब में उस दिन डिनर था। हिन्दुस्तानी बैरे स्वच्छ तश्तरियों में वह हिन्दुस्तानी बाग़ियों की क़ब्र पर उगा साग साहब लोगों के सामने पेश कर रहे थे।

उन्होंने भी साग की कहानी सुनी थी। इनके चेहरे आतंक से सहमे हुए थे, पाँव में कमज़ोरी अनुभव हो रही थी; परन्तु हाथ भय से साहब की सेवा में मशीन की भाँति अपना काम करते जा रहे थे।

बात सबके दिल में थी परन्तु किसी के होंठों पर न आ पाती थी। साहब के भय से और आपस में एक दूसरे के भय से।

आह सबके दिल में थी परन्तु आहें सबकी अलग-अलग बिखरी हुईं; निर्जीव श्वासों की भाँति उनके हृदय से निकल हवा में समाप्त हो रही थीं। एक साथ मिलकर वे आधी भी शक्ति न पा सकती थीं, क्योंकि उन्हें परस्पर भय था। भय— अपनों से भय, शत्रु से भय, सब ओर भय... !

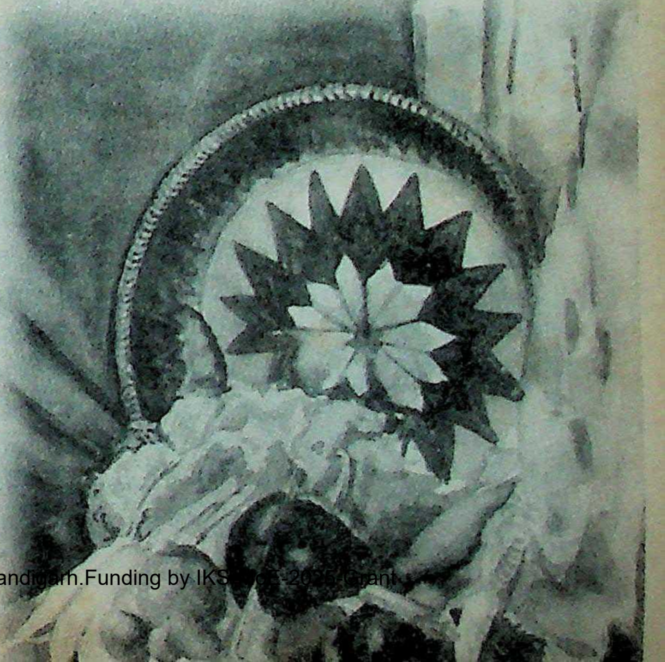

स्टिल लाइफ : राधेश्याम अग्रवाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मील का पत्थर

इन्तज़ार हुसैन

स्मृति के पुनर्वास का एक गुपचुप अभियान

अशोक वाजपेयी

इन्तज़ार हुसैन से उससे पहले रू-ब-रू मुलाक़ात नहीं हुई थी हालाँकि उनके अनोखे कथा-साहित्य से अच्छी तरह परिचय हो चुका था। वे भारतीय परम्परा की कुछ गाथाओं का अपनी कहानियों में पुनराविष्कार कर चुके थे और उनकी स्वाभाविक क़िस्सागोई के साथ मिलकर उन रचनाओं ने जो दुलर्भ रस पैदा किया था। वह आधुनिकता के कुछ जकड़बन्द ढाँचे में ख़ासा अप्रत्याशित था। उनसे पहली भेंट हुई ग़ालिब पर एक अन्तरराष्ट्रीय आयोजन में, जिसमें वे पाकिस्तान से शिरक़त के लिए दिल्ली आये थे और मैंने भी एक परचा पढ़ा था। परचा अँग्रेज़ी में था लेकिन उसमें ग़ालिब के उद्धरणों को मैंने अपने उच्चारण की भूलों के लिए पेशगी क्षमायाचना करते हुए, मूल में पढ़ा था। इन्तज़ार हुसैन ने ग़ालिब के ख़तों पर अपने परचे में उसे एक अनौपचारिक उत्तर-आधुनिक उपन्यास कहा और उनकी बड़ी नायाब व्याख्या की। बाद में, दोपहर के खाने के वक़्त एक साहब मुझे खोजते हुए आये और बोले कि इन्तज़ार साहब आपसे कुछ कहना चाह रहे हैं। मैं उत्सुकतावश लगभग भागकर गया तो बोले कि उन्हें मेरा परचा अच्छा लगा क्योंकि मैंने उसमें ग़ालिब को आधुनिकता का पहला बड़ा भारतीय कवि कहा था लेकिन 'एक बात आपने बिल्कुल झूठ कही।' मैं अचकचाया तो बोले कि आपने जो यह कहा कि आपको उर्दू नहीं आती है यह सरासर झूठ है क्योंकि आपका तलफ़्फ़ुस बिल्कुल दुरुस्त है। ज़ाहिर था कि मैं एक पारदर्शी और ईमानदार लेखक से मिल रहा था।

इन्तज़ार हुसैन के यहाँ आधुनिकता परम्परा के उत्खनन से निकलने वाले सत्व का प्रकाशन है। उनके यहाँ समय एक लम्बा और अटूट सिलसिला है जिसमें जो कुछ घटता है वह पूरी तरह से बीतता या नष्ट नहीं हो जाता, बचा रहता है। उनके यहाँ जिजीविषा अपने समय तक महदूद नहीं है। बल्कि सच्ची जिजीविषा तो वह है जो समय की कई परतों को समेटती है। पिछला-अगला अलग-अलग नहीं रहते और गड्डमड्ड भी नहीं होते। एक विलक्षण अर्थ में पिछला ही अगला और अगला ही पिछला लगने लगते हैं।

इन्तज़ार साहब के यहाँ इस उपमहाद्वीप के विभाजन के बाद से जो दायवंचन शुरू हुआ उसका गहरा प्रतिरोध है। उनके यहाँ अपने साझे उत्तराधिकार को लेकर कोई संकोच नहीं है। उनके साहित्य को देश के विभाजन को भाषा और संस्कृति, रूप और दृष्टि के स्तरों पर अस्वीकार करने की तरह भी पढ़ा जा सकता है। सौभाग्य से, उन्हें सिर्फ़ विभाजन और उसके बाद हुए ख़ून-ख़राबे और नरसंहार की विभीषिकाएँ भर याद नहीं हैं। उनकी याददाश्त और बहुत पहले जाती है। उन्हें कथासरित्सागर, जातक कथाएँ आदि भी याद हैं। भारतीय उपमहाद्वीप ने मनुष्य, जीवन, अस्तित्व, समय, काल, नश्वरता आदि के बारे में जो जाना-समझा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे इन्तज़ार हुसैन बहुत सहजता लेकिन ख़ूबी से अपनी कथा में पुनरुज्जीवित करते हैं। साहित्य का एक काम अगर किसी समाज की जातीय स्मृति को जीवित और अदूषित रखना है तो यह इन्तज़ार हुसैन का साहित्य कई दशकों से रखता आया है। एक ऐसे समाज में जहाँ राजनीति और तंत्र जातीय स्मृति मिटाने में मुब्तला हों यह साहस का काम भी है। बिना किसी नाटकीयता या घोषणा के इन्तज़ार हुसैन स्मृति के पुनर्वास का गुपचुप एक अभियान चलाते रहे हैं।

इस बात को अक्सर आज के अतिराजनैतिक माहौल में नज़रअन्दाज़ किया या भुला दिया जाता है कि इस उपमहाद्वीप में हिन्दू या मुस्लिम अस्मिता बिना एक-दूसरे के सम्भव नहीं है। हिन्दू धर्म, तत्त्व-चिन्तन और दर्शन को इस्लाम के साथ, उसके पड़ोस में रहने और उससे संवाद करने का लगभग एक हज़ार बरसों का लम्बा और निर्णायक अनुभव है। उलटकर यही बात इस्लाम के बारे में भी उतनी ही सही है। एक लेखक के रूप में इन्तज़ार हुसैन का विशेष महत्त्व इस सन्दर्भ में यह है कि वे इस सचाई की ओर सिर्फ़ इशारा भर नहीं करते, बल्कि पाकिस्तान की स्थिति में इसे ख़ासा ज़ोखिम उठाकर अपने कथा-साहित्य का एक बड़ा अभिप्राय बनाते हैं। वे उसकी जटिलताओं या कठिनाइयों को सरलीकृत या भावुक नहीं बनाते, न ही किसी तरह की आसान उम्मीद का सहारा लेते हैं। वे ध्वस्त पड़ोस के सपने के टूटे-बिखरेपन को पहचानते है। उनकी कथा जितनी ध्वंस के बारे में है उतनी ही पड़ोस के बारे में। राख-राख हुई सचाई में जो सुगबुगाहट बची रहती है वह उस सपने की ही है— सब कुछ भस्म हो जाने के बाद भी जैसे अस्थियाँ बची रहती हैं।

पंजाबी लेखिक अजीत कौर द्वारा सार्क लेखकों को एकत्र करने का जो प्रयत्न हुआ और अब भी अप्रतिहत चल रहा है, उससे ज़ोड़ने का जबसे अवसर आया, इन्तज़ार साहब से मुलाक़ात अधिक नियमित होने लगी। वे सार्क लेखक सम्मेलनों में आते रहे और हम माल्दीव और लाहौर में भी इस सिलसिले में मिलते-बैठते रहे हैं। वे वाचाल नहीं हैं पर उनमें एक शान्त और अचूक क़िस्म का विनोदभाव है। वे कभी कोई दावा अपने बारे में नहीं करते। ऐसा हुआ है कि हम घंटों और पाकिस्तानी लेखकों की महफ़िल में बैठें जिसमें इन्तज़ार साहब भी हों और वे ज़्यादातर चुप रहें। उनका जिस लम्बे समय से अपनी कल्पना और संवेदना में वास्ता है, ज़ाहिर है, उसने उन्हें धीरज और जतन दोनों दिये हैं। उनके हाव-भाव से कभी यह ज़ाहिर नहीं होता कि कहीं जाने की उन्हें हड़बड़ी है।

एक बार इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की एनेक्सी में हम कुछ लेखकों ने एक शाम रखी थी कुछ रसरंजन और गप के लिए अपने पाकिस्तानी लेखक-बन्धुओं के स्वागत में। दुस्संयोगवश उसी शाम उन सभी को पाकिस्तानी राजदूत ने अपने यहाँ रात के खाने पर बुला लिया। तय यह हुआ कि इन्तज़ार साहब और बाक़ी लेखक कुछ वक़्त हमारे साथ बिताकर राजदूत के यहाँ चले जाएँगे। हम लोग गप लगाने लगे। इन्तज़ार साहब की रसरंजन में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं है तो वह सचमुच रस ही ले रहे थे। धीरे-धीरे कृष्णबलदेव वैद के साथ पुराने लाहौर आदि की बातें चल निकलीं और इन्तज़ार साहब कुछ इस क़दर रम गये कि उन्होंने वहाँ से जाने की बात सोचना ही बन्द कर दिया। दसेक बजने को आये तो मेरे यह याद दिलाने पर कि उन्हें राजदूतावास जाना है, वे बोले कि अब क्या जाना, अदीबों को छोड़कर सफ़ीर के यहाँ क्या जाना!

आम तौर पर यह सामान्यीकरण किया जा सकता है कि हमारे कथा-साहित्य में धीरे-धीरे मनुष्येतर प्राणी और चीज़ें कम होती गयी हैं। आदमी इतना अधिक है कि बाक़ियों के लिए माना जगह ही नहीं बचती। इन्तज़ार हुसैन आदमियत के अनिवार्य पड़ोस यानी पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों को भूलनेवाले लेखक नहीं हैं। वे पूरी कहानी सिर्फ़ एक पक्षी पर लिख सकते है (इसी अंक में पढ़िए उनकी कहानी 'मोरनामा'-सं.)। यह भी भारत की पुरानी कथा-परम्परा का हमारे समय में एक प्रासंगिक पुनराविष्कार है। उन्हें पढ़ते हुए कई बार लगता है कि जैसे वे हमें याद दिला रहे हों कि हम कितने ही अकेले क्यों न हों, हम दूसरों के पड़ोस में हैं, कि हमारे पड़ोस में बहुत कुछ है जो हमारी मानवीयता का इज़हार है और उसमें ज़रूरी इज़ाफ़ा भी। यह उपमहाद्वीप अपने आप में सदियों से चली आ रही एक महागाथा है जिसमें आज भी हम कुछ जोड़ सकते हैं। इसमें आधुनिकता ने जो ध्वंस किया उसके लिए गुंजाइश है और जो बचाकर आगे बढ़ाया है उसके लिए जगह है। इस गाथा में कई समय हैं। उसकी यह क़तई मजबूरी नहीं है कि वह अपने को हमारे समय तक सीमित करे। जिसके पास कई समय नहीं है उसके पास मानो इस उपमहाद्वीप का सच्चा उत्तराधिकार ही नहीं है।

पिछले बरस हम कुछ मित्रों ने निर्मल वर्मा की पहली पुण्यतिथि पर इन्तज़ार हुसैन को पहला स्मृति व्याख्यान देने बुलाया था। वे दिल्ली के बाद भोपाल और उज्जैन भी गये थे। उनके लिए यह एक नया अनुभव साबित हुआ। उज्जैन में कालिदास समारोह चल रहा था और उदयन उन्हें कावलम नारायण पणिक्कर का 'विक्रमोवंशीयम्' दिखाने ले गया। वे बहुत अभिभूत हुए। उन्होंने लाहौर लौटकर एक बेहद ख़ूबसूरत पत्र लिखा।

यह सही है कि विभाजन के कारण हम भारतीयों ने बहुत कुछ गँवाया है। पर इन्तज़ार हुसैन की शख़्सियत और साहित्य दोनों ही यह दिलासा देते हैं कि राजनैतिक विभाजन अन्ततः सांस्कृतिक विभाजन नहीं है। शायद फ़ैज़ के बाद वे दूसरे पाकिस्तानी लेखक हैं जिनकी पूरे उपमहाद्वीप में ऐसी लोकप्रियता और प्रतिष्ठा है कि आधुनिक कथा-साहित्य पर अब समग्र रूप से भारत में भी उनके सन्दर्भ के बिना बात नहीं की जा सकती। वे एक उजला प्रतिबिन्दु हैं।

इन्तज़ार साहब सबसे दोस्ताना सुलूक करते हैं और वे अकेले हैं लेकिन किसी महत्त्व या गरिमा का बोझ उन पर नहीं है। वे सलीके से कपड़े पहनते हैं। उनके चेहरे पर एक सयानी चमक रहती है। कई बार वे हैरत में पड़ते दिखते हैं और आपकी तरफ़ ऐसे देखते हैं जैसे कि उन्हें अचरज हो रहा हो। यह एक निश्छल व्यक्ति का अचरज है जो दूसरे को पहचानने और समझने में कोई चूक नहीं करना चाहता। जिसे हर वक़्त याद है कि 'सो वो भी है आदमी।'

सी-60, अनुपम हाउसिंग सोसाइटी,
बी-13, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली-96

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन्तज़ार हुसैन की कथा-यात्रा

गोपीचन्द नारंग

इन्तज़ार हुसैन इस युग के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अफ़सानानिगारों में से हैं। अपनी रूपकात्मक शैली के द्वारा उन्होंने उर्दू अफ़साने को नयी कलात्मक और अर्थगत सम्भावनाओं से युक्त किया है और उर्दू अफ़साने का सम्बन्ध एक ही समय में कहानी, जातक कथा, धार्मिक किंवदन्तियों, पुरातन कथाओं तथा पौराणिक गाथाओं से जोड़ दिया है। उनका कहना है कि उपन्यास और कहानियों की पाश्चात्य संरचनाओं की तुलना में कथात्मक शैली हमारे सामूहिक अवचेतन और स्वभाव का कहीं अधिक साथ देती है। कथाओं के परिवेश को उन्होंने नयी अनुभूति और नयी अभिज्ञता के साथ कुछ इस तरह बरता है कि अफ़साने में एक नया दार्शनिक मिज़ाज और एक नया पौराणिक कथात्मक आयाम सामने आ गया है। वे व्यक्ति और समाज, जीवन और सृष्टि, अस्तित्व की प्रकृति और वास्तविकता की समस्याओं को रोमांटिक दृष्टि से नहीं देखते, न ही उनका रवैया मात्र बौद्धिक होता है, बल्कि उनकी कला में चेतन और अवचेतन— दोनों की क्रियाशीलता पायी जाती है। उनका दृष्टिकोण बुनियादी तौर पर आत्मिक और बौद्धिक है। वह मनुष्य के अन्तर्मन में सफ़र करते हैं, आत्मा में सेंध लगाते हैं और आधुनिक युग की उदासीनता, हृदयहीनता और असमंजस को सृजनात्मक लगन के साथ प्रस्तुत करते हैं। ओल्ड टेस्टामेंट व पुराण की सहायता से उनको रूपकों, संकेतों और कथाओं का ऐसा ख़ज़ाना हाथ आ गया है जिससे वे पेचीदा से पेचीदा ख़्याल और सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति को सहज व सरल रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। उनकी शैली में ऐसी सरलता और ताज़गी है जिसकी कोई उपमा इससे पहले उर्दू अफ़साने में नहीं मिलती। उपमहाद्वीप में कहानी की परम्परा कथा की परम्परा है। दास्तान ने भी इस लिहाज से इसी परम्परा को आगे बढ़ाया था कि वह सुनने-सुनाने की चीज़ है। इसके विपरीत बीसवीं शताब्दी में अफ़साने का समस्त विकास एक लेखन-शैली का विकास है। यह लिखे और पढ़े जाने की चीज़ होकर रह गया था। इन्तज़ार हुसैन ने नेत्र-शक्ति के साथ श्रवण-शक्ति को फिर से जाग्रत किया है और कहानी की परम्परा में सुनने और सुनाई जाने वाली शैली के आनन्द में नये सिरे से इज़ाफ़ा किया है। यह सिर्फ़ कथा की शैली का ही नवीनीकरण नहीं, बल्कि उसकी हज़ारों साल पुरानी परम्परा का भी नवीनीकरण है। इन्तज़ार हुसैन की अधिकांश कहानियों में कथा का आनन्द है और इस लिहाज से वे इस युग के ध्यान देने योग्य कथाकार हैं।

इन्तज़ार हुसैन डिबाई जिला बुलन्दशहर में पैदा हुए। शिक्षा मेरठ में प्राप्त की और स्वतन्त्रता के समय पाकिस्तान चले गये। अब तक उनके दो उपन्यास 'चाँद गहन'(1952) और 'बस्ती' (1980), एक लघु उपन्यास 'दिन और दास्तान'(1959) और अफ़सानों के चार संग्रह 'गली-कूचे'(1951), 'कंकरी'(1957), 'आख़िरी आदमी' (1967) और 'शहरे अफ़सोस' (1972) प्रकाशित हो चुके हैं और पाँचवाँ संग्रह 'कछुए' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। शुरू में वे भूतकाल की यादों के सीधे-सादे अफ़साने लिखते थे, जो पहले दो संग्रह 'गली-कूचे' और 'कंकरी' में मिलते हैं। उनका वर्तमान काल 1960 से एक-दो वर्ष पहले शुरू होता है। इस काल की कहानियाँ उन्होंने 'आख़िरी आदमी' में संकलित कर दी हैं। इसका एहसास कम लोगों को है कि इन्तज़ार हुसैन सामाजिक और राजनीतिक प्रकृति की कहानियाँ भी लिखते रहे हैं और यह सत्य है कि 'शहरे-अफ़सोस' की ज़्यादातर कहानियाँ इसी प्रकृति की हैं। इस लिहाज से देखा जाए तो ये संग्रह तीन अलग-अलग कालों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पहला काल 'गली कूचे' और 'कंकरी' के अफ़सानों का है जो अतीत की यादों और सांस्कारिक एवं सभ्यतागत रिश्तों के अहसास पर आधारित हैं। दूसरा काल 'आख़िरी आदमी' के अफ़सानों का है, जिसमें उनकी बुनियादी चिन्ता की प्रकृति मनुष्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है। इसी प्रकार तीसरा काल 'शहरे अफ़सोस' के अफ़सानों का है, जो ज़्यादातर सामाजिक-राजनीतिक प्रकृति के हैं और जिनमें गहरा सामाजिक व्यंग्य है। पहले और दूसरे काल के दरम्यान तो अन्तराल विद्यमान है, अलबत्ता दूसरे और तीसरे काल में ऐसा कोई अन्तराल नहीं। यह सम्भव है कि सामाजिक-राजनीतिक प्रकृति के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपमहाद्वीप में कहानी की परम्परा कथा की परम्परा है। दास्तान ने भी इस लिहाज से इसी परम्परा को आगे बढ़ाया था कि वह सुनने-सुनाने की चीज़ है। इसके विपरीत बीसवीं शताब्दी में अफ़साने का समस्त विकास एक लेखन-शैली का विकास है। यह लिखे और पढ़े जाने की चीज़ होकर रह गया था। इन्तज़ार हुसैन ने नेत्र-शक्ति के साथ श्रवण-शक्ति को फिर से जाग्रत किया है और कहानी की परम्परा में सुनने और सुनाई जाने वाली शैली के आनन्द में नये सिरे से इज़ाफा किया है।

अफ़साने सुर्रियलिस्टिक अफ़सानों के साथ ही साथ लिखे गये हों और उन्हें अन्तर्वस्तुगत एकता के कारण बाद में प्रकाशित किया गया हो, तथापि दोनों की प्रकृति में इतना स्पष्ट अन्तर विद्यमान है कि उन्हें अलग-अलग रुझान क़रार दिया जा सकता है। इन तीन बुनियादी प्रवृत्तियों के अतिरिक्त इन्तज़ार हुसैन के यहाँ चौथी प्रवृत्ति उन अफ़सानों में उभरती दिखाई देती है जो 'शहरे अफ़सोस' के बाद इधर-उधर पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं और अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए। इन ताज़ा अफ़सानों के शीर्षक या तो मनोवैज्ञानिक हैं या उनमें हिन्दुस्तानी तथा विभिन्न प्रकार की पौराणिक परम्पराओं को परस्पर मिश्रित कर कोई बुनियादी बात कहने की कोशिश की गयी है। इस ताज़ा रुझान को भी नज़र में रखें तो चार अलग-अलग रुझान या इन्तज़ार हुसैन की कला की चार अलग-अलग दिशाएँ क़रार दी जा सकती हैं।

इन्तज़ार हुसैन के सृजनात्मक सफ़र के इन्हीं चार चरणों या चार रुझानों की चर्चा की जाती है। प्रथम परिवेशगत यादों की कहानियाँ, द्वितीय मनुष्य के नैतिक व आध्यात्मिक पतन और भौतिक समस्याओं से सम्बन्धित कहानियाँ, तृतीय सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं की कहानियाँ तथा चतुर्थ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ और बौद्ध जातक और भारतीय पौराणिक कहानियाँ। इन्तज़ार हुसैन की यह देन साधारण नहीं कि उन्होंने कहानी की पाश्चात्य संरचना को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया, बल्कि कथा-कहानी और दास्तान व हिकायत के जो देसी साँचे पूर्वी-जनमानस और उसकी प्रकृति की सदियों की प्रक्रिया के परिणाम थे और पाश्चात्य प्रभावों के आक्रमण ने जिन्हें रद्द कर दिया था, इन्तज़ार हुसैन ने उसकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता के सत्व को ग्रहण किया और उनकी सहायता से प्रचलित साँचों को परिवर्तित कर कहानी को एक नया रूप और नया स्वाद प्रदान किया। कथा की परम्परा से लाभान्वित होने का प्रथम प्रयास यद्यपि अज़ीज़ अहमद की लम्बी कहानी 'जब आँखें आहन पोश हुईं' में मिलता है, जिसमें मुग़ल और तातारियों के युग की पुन:स्थापना में गद्य की प्राचीन शैलियों को भी बरतने का प्रयास किया गया है, लेकिन यह मात्र एक अनुभव था, जबकि इन्तज़ार हुसैन के यहाँ मामला उर्दू कथा-साहित्य को एक नये सृजनात्मक स्वभाव से अवगत कराने अथवा दो गद्य-शैलियों के वैभव को निचोड़कर तेज़ाबी विशेषता उत्पन्न करने अर्थात् प्रभावकारी बनाने का है। इन्तज़ार हुसैन की कला के कमाल का एक पहलू यह है कि उन्होंने कहानी को आध्यात्मिक-दार्शनिक खोज और तड़प से अभिज्ञ कराया है। यही कारण है कि उनके यहाँ एक रहस्योद्घाटन के समान अहसास होता है और कहीं-कहीं ऐसा परिवेश मिलता है जो आसमानी धर्मग्रन्थों में पाया जाता है। इन्तज़ार हुसैन के पात्र, उनके संकेत अन्य कहानीकारों से इस लिहाज से भिन्न हैं कि यह उनकी अपनी सभ्यता के चेतन के फलाफल हैं। व्यक्ति हो या समूह, उनकी दृष्टि मनुष्य के आध्यात्मिक-नैतिक पतन और बाह्य व आन्तरिक रिश्तों के परस्पर अभाव के विभिन्न आयामों पर रहती है। आज का मनुष्य और समाज जिस प्रकार मिथ्याचार, स्वार्थपरता, स्नायु तृप्ति, धर्मध्वजता, मुनाफ़ाख़ोरी और इस तरह की हज़ारों दूसरी कुरीतियों में घिरा हुआ है, अपने व्यक्तित्व की पहचान और अपने आत्म को पुन:स्थापित करना उसके लिए सबसे बड़ी समस्या बन गयी है। इन्तज़ार हुसैन की कहानियाँ मनुष्य की इसी भाग-दौड़ और तड़प को प्रतिबिम्बित करती हैं। इन्तज़ार हुसैन की कला आज के इंसान के खोये हुए विश्वास की खोज की कला इसलिए है कि भविष्य का इंसान आत्मज्ञान प्राप्त कर सके और अपने आत्म को पुन:स्थापित रख सके। इसके लिए उन्हें ओल्ड टेस्टामेंट, इंजील, किससुल अँबिया, पुराण, बौद्ध जातक कथाओं और सूफ़ियों के धर्मोपदेशों— सबसे लाभान्वित होना पड़ा है, और परिणामत: अभिव्यक्ति की ऐसी शैली प्रकट हुई है जो ख़ास उनकी अपनी है। इन्तज़ार हुसैन की कला विशेष रूप से तहदार और पेचदार है। जहाँ एक तरफ़ उसकी सादगी दृष्टि भ्रम प्रदान करती है, वहीं दूसरी तरफ़ उसका विवेक और प्रभावोत्पादकता सोचने पर मजबूर करते हैं। इन्तज़ार हुसैन की समझ एक गतिशील समझ है, और उसकी भावपूर्ण यात्रा गतिमान है, और कुछ कहा नहीं जा सकता कि आगे चलकर उसका रुख़ किन नयी भूमियों की ओर होगा।

अनुवाद : डॉ. इसराइल रज़ा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मोरनामा

इन्तज़ार हुसैन

रूपान्तर : ख़ुर्शीद आलम

अल्लाह जाने यह बदरूह कहाँ से मेरे पीछे लग गई सख़्त हैरान व परेशान हूँ। मैं तो असल में मोरों की मिज़ाजपुर्सी के लिए निकला था। ये कब पता था कि यह बला जान को चिमट जाएगी। वह तो इत्तफ़ाक़ से उस छोटी-सी ख़बर पर मेरी नज़र पड़ गयी वरना इस हंगामे में मुझे कहाँ पता चलना था कि वहाँ क्या वारदात गुज़री। हिन्दुस्तान के एटमी धमाके की धमाकाख़ेज़ ख़बरों की भीड़ में कहीं एक कोने में यह ख़बर छपी हुई थी कि जब यह धमाका हुआ तो राजस्थान के मोर भौंचक्के की हालत में झंकारते, शोर मचाते अपने कोनों से निकले और हक्का-बक्का फ़िज़ा में तितर-बितर हो गये।

वैसे तो मैंने तुरन्त ही एक कॉलम लिखकर अपने जानते भर में मोर-दोस्ती का हक़ अदा किया और फ़ारिग़ हो गया। मगर फ़ारिग़ कहाँ हुआ? उस छोटी-सी ख़बर ने मेरे साथ वही किया जो मनु जी के साथ उनके हाथ आ जाने वाली छंगलिया जैसी मछली ने किया था। वह तो उसे घड़े में डालकर निश्चिन्त हो गये मगर वह फैलती चली गयी। मनु जी ने उसे घड़े से नाँद में, नाँद से कुण्ड में, कुण्ड से तलैया में, तलैया से नदी में डाला मगर फिर वह नदी में भी नहीं समायी। फिर वे उसे उठाकर समुद्र की ओर चले तो वह छोटी-सी ख़बर या वह घटना जिसे अख़बार वालों ने एक कॉलम की सुर्ख़ी वाली दो पंक्तियों की ख़बर समझा था, मेरी कल्पना में फैलती चली गयी। आरम्भ में उन मोरों की याद आयी जिन्हें मैंने जयपुर की एक यात्रा के दौरान देखा था। सुब्हानअल्लाह, क्या तरशा-तरशाया गुलाबी शहर था। उस शहर में मैंने दोपहर में क़दम रखा था। उस समय तो किसी अस्तित्व का एहसास नहीं हुआ था, लेकिन जब दिन ढले मैंने उस दुल्हन जैसे सजे सजाए रेस्ट हाउस में अपने कमरे की खिड़की खोलकर बाहर झाँका तो क्या देखता हूँ कि सामने फैले हुए सहन में फ़व्वारे के इर्द-गिर्द चबूतरे पर मुंडेरों पर, मोर ही मोर! कितने सकून के साथ और कितनी ख़ामोशी से अपनी नीली-चमकीली लम्बी दुमों के साथ और एक शाहाना वैभव के साथ चहलक़दमी कर रहे थे। उनकी उस चहलक़दमी में शाही वैभव के साथ कितनी शान्ति थी। उस क्षण वह सारा इलाक़ा मुझे शान्ति का डोला नज़र आया। शान्ति का, सौन्दर्य का और प्रेम का।

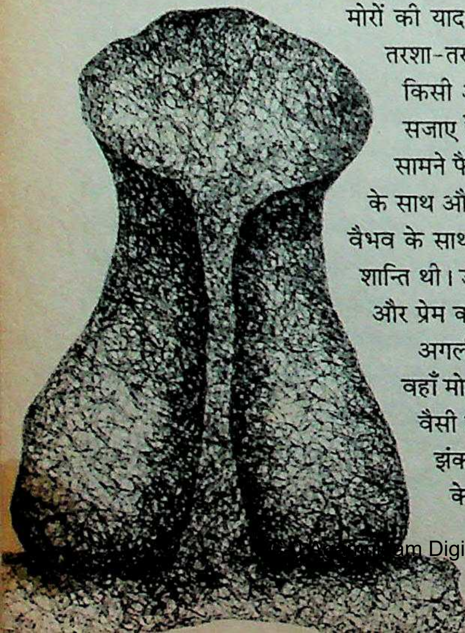

अगली शाम जब मैं उस शहर से निकलने लगा तो जिस टीले, जिस पहाड़ी पर नज़र गयी वहाँ मोरों का एक झुरमुट नज़र आया। उसी तरह ख़ामोश। उनकी चहलक़दमी में वही वैभव, वैसी ही शान्ति। थोड़ी ही देर में शाम का धुँधलका फैल गया और पूरा वातावरण मोरों के झंकार से लबरेज़ हो गया। मैंने जाना कि ये मुसाफ़िरनवाज़ मेरी ही ख़ातिर यहाँ आसपास के टीलों और पेड़ों पर उतरे हुए थे। अब वे अपने मेहमान को अलविदा कह रहे हैं।

...m Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और अब जब मैंने उस सफ़र को याद किया तो मेरी सारी यादों की फ़िज़ा मोरों से भर गयी और मैं हैरान हुआ कि अच्छा, वहाँ इतने मोरों से मेरी मुलाक़ात हुई थी! जैसे राजस्थान के सारे मोर मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये हों, मगर अब वहाँ क्या नक़्शा होगा। मैं ध्यान ही ध्यान में फिर उस क्षेत्र की तरफ़ निकल जाता हूँ। मैं हैरान व परेशान भटकता फिर रहा हूँ, न कोई मोर दिखाई पड़ रहा है, न उनकी झंकार सुनाई पड़ रही है।

वह सब कहाँ चले गये? किस खोह में जा छुपे? दूर एक टीले पर नज़र गयी। एक नुचा-खुचा मोर बैठा दिखाई दिया। मैं तेज़ क़दम उठाता उस तरफ़ चला। मगर मेरे पहुँचने से पहले उसने उदासी भरी आवाज़ निकाली, उड़ा और फ़ौरन ही नज़रों से ओझल हो गया।

वह मोर उड़कर किधर गया? यहाँ अकेला बैठा क्या कर रहा था? उसके संगी-साथी, मोरों के झुरमुट के झुरमुट, वह सब कहाँ गये? वह इस तरह वीरानी की तस्वीर बना हुआ क्यों नज़र आ रहा था। इतना उजड़ा-उजड़ा, इतना नुचा-खुचा क्यों नज़र आ रहा था? वीरानी की उस तस्वीर से मेरा ध्यान वीरानी की ऐसी ही एक और तस्वीर की तरफ़ चला गया, जिसे मैं भुला बैठा था और जो इस वक़्त अचानक मेरी कल्पना में उभर आयी थी। समन्दर के पारदर्शी पानी में घुलता हुआ गाढ़ा-गाढ़ा पेट्रोल पानी की रंगत बदलती चली जा रही है। पेट्रोल के प्रदूषण से कुछ कालापन नज़र आ रहा है और उजाड़ किनारे पर एक अकेली मुर्ग़ाबी उस दूषित पानी में नहायी हुई शान्त बैठी हैरत से समन्दर को तक रही है। जो पानी कल तक उसके लिए अमृत समान था, आज विष बन गया है। उसके पंख भारी हो गये हैं कि अब वह उड़ने योग्य नहीं रही और विष जैसे उसकी नस-नस में उतर गया हो। इराक़-अमेरिका युद्ध की सारी भयावहता इस क्षण मेरे लिए उस मुर्ग़ाबी में समाहित हो गयी थी। मुझे दुःख हुआ कि यह मुर्ग़ाबी इस वक़्त कितने दुःख में है और हैरानी हुई कि आदमियों ने इस समय जो कुछ एक दूसरे के साथ किया, सद्दाम हुसैन ने इराक़ियों के साथ, इराक़ियों ने कुवैतियों के साथ, अमेरिका ने इराक़ियों के साथ— उस सारी पीड़ा को इस ग़रीब मुर्ग़ाबी ने अपनी जान पर ले लिया है। विचित्र बात है जब पैग़म्बरी वक़्त पड़ता है तो बड़े-बड़े जान बचाकर निकल जाते हैं। कोई नन्ही-सी जान पीड़ा के उस बड़े बोझ को अकेली संघवा लेती है। इस घड़ी वह मुर्ग़ाबी मुझे एक विशाल दास्तानी परिन्दा नज़र आयी। जैसे उसमें किसी पैग़म्बर की रूह समा गयी हो कि उस ज़ोर पर उसने इंसानी उम्मत का सारा दुःख एक अमानत जानकर अपने कंधों पर ले लिया है।

मेरी दृष्टिहीनता थी कि मैंने उस मुर्ग़ाबी के मर्तबे को नहीं पहचाना। एहसास ही नहीं हुआ कि यह मुर्ग़ाबी तो एक पयम्बराना (देवस्वरूप) शान रखती है। हमारे युग की प्रतीक है। आदमी इस ज़माने में जो आदमी के साथ कर रहा है और अपनी आदमियत के अभिमान में जो कुछ प्रकृति के साथ कर रहा है, यह उस सबकी कहानी सुना रही है। मुझे ख़याल ही नहीं आया कि मुझे इस पर कहानी लिखनी चाहिए। कितनी आसानी से मैंने उस मुर्ग़ाबी को फ़रामोश कर दिया। शायद इसकी वजह यह हो कि वह बेचारी सिर्फ़ मुर्ग़ाबी थी। और मोर जिन पर मैं कहानी लिखने के लिए बेचैन हूँ, सिर्फ़ मोर नहीं हैं। फ़र्ज़ करो कि उस मुर्ग़ाबी की जगह कोई राजहंस होता। मगर राजहंस अब इस दुनिया में कहाँ है? एक ज़माना था कि इस महाद्वीप की विशाल धरती पर दो परिन्दे राज करते थे और यह फ़ैसला करना मुश्किल था कि परिन्दों का राजा कौन है, राजहंस या मोर! अब वह राजहंस कहाँ हैं और वह मोती जैसी झीलें कहाँ हैं जहाँ वह उतरा करते थे और राजकुमारियाँ कहाँ हैं जो अपने महल के प्राचीर पर उतर आने वाले राजहंस पर मोहित हो जाया करती थीं और उसे अपने आँगन में उतारने के लिए अपनी माला के मोती बिखेर दिया करती थीं। वह राजहंस मोती चुगते थे और मानसरोवर झील के पारदर्शी जल में तैरा करते थे। अब मानसरोवर झील कहाँ है? लगता है कि सब झीलें सूख गयीं। नदियों का पानी मैला हो गया। फ़िज़ा धुएँ, बारूद, मिट्टी-धूल से अँटी हुई है। नारों और धमाकों के शोर से दूषित है। राजहंस स्वच्छ वातावरण, पारदर्शी जल की तलाश में कहीं दूर निकल गये। पीछे बस, मुर्ग़ाबियाँ और बत्तखें रह गयीं। ज़माने का दुःख वे सहती हैं। राजहंस कथा-कहानियों के संसार में भ्रमण करते हैं।

एक मोर था जो अभी तक अपने पक्षीवत् वैभव के साथ टिका हुआ था और अतीत व वर्तमान के मध्य पुल की हैसियत रखता था। अब भी बाग़ों से उसकी झंकार इस तरह आती है जैसे प्राचीन के देवमालाई ज़मानों से तैरती हुई आ रही है। राजस्थान में तो मोर की कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी थी। ये आवाज़ें कहाँ से आ रही हैं! मैं खिंचा चला जाता हूँ। राजस्थान बहुत पीछे रह गया है। यह मेरी बस्ती है। सावन-भादों की भीगी शामों में वे कितना शोर मचाते थे! वह तो बस्ती के हर बाग़-बग़ीचों में झंकारते थे और उनकी झंकारी से सारी बस्ती गूँजती थी और वह एक मोर जो जाने किधर से उड़ता-उड़ता आया और हमारी मुँडेर पर बैठ गया। कितनी देर चुपचाप बैठा रहा। मैं दबे पाँव छत पर गया। पीछे से सरकते-सरकते मुँडेर तक गया। उसकी दुम पकड़ने ही को था कि उसने झुरझुरी ली और फ़िज़ा में तैर गया।

''मेरे लाल, मोर को तंग नहीं किया करते, यह जन्नत का जानवर है!'' नानी अम्मा ने मुझे लताड़ा।

''जन्नत का जानवर!'' मैंने हैरान होकर पूछा, ''फिर यहाँ। यह क्या कर रहा है?''

''अरे बेटा, अपने किये की सज़ा भुगत रहा है।''

''नानी अम्मा, क्या किया था मोर ने जो सज़ा भुगत रहा है?''

''अरे बेटा, मासूम तो है ही, शैतान की चाल में आ गया।''

''कैसे आ गया, शैतान की चाल में?''

''वह कमबख़्त बुढ़ा फूँस बन के जन्नत के दरवाज़े पर पहुँचा। बहुत मिन्नतें कीं कि दरवाज़ा खोलो। जन्नत के दरबान भाँप गये कि यह नहूसत मारा तो शैतान है! उन्होंने दरवाज़ा नहीं खोला। मोर जन्नत की मुँडेर पर बैठा यह देख रहा था। उसे बूढ़े पर बहुत तरस आया। उड़कर नीचे आया और कहा कि बड़े मियाँ, मैं तुम्हें जन्नत की दीवार पार कराये देता हूँ। अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। शैतान फ़ौरन ही मोर पर सवार हो गया। मोर उड़ा और उसे जन्नत में उतार दिया। अल्लाह मियाँ को जब पता चला तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। बाबा आदम और अम्मा हव्वा को जन्नत से निकाला तो मोर को भी निकाल दिया कि जाओ लम्बे बनो।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं कितना हैरान हुआ था— बेचारा मोर जन्नत की मुँडेर पर बैठा करता था, अब हमारी मुँडेर पर आकर बैठ जाता है। मैंने नानी अम्मा से कहा तो कहने लगीं, ''हाँ बेटे, अपनी मुँडेर छूट जाए तो यही होता है। अब तेरी-मेरी मुँडेर पर बैठता है और कहीं जो टिक के बैठ जाये।''

मुँडेरों, पेड़ों के झुण्ड में, टीले पर, जहाँ भी पंजे टिकाने को जगह मिल जाए। मैं जब श्रावस्ती की राह से गुज़रा था तो मैंने उसे एक हरे-भरे टीले पर बैठे देखा था। किसी ध्यान में गुम था जैसे चुपचाप किसी की राह तक रहा है। मैं श्रावस्ती बहुत देर से पहुँचा था। महात्मा बुद्ध कितनी बरसातों पहले यहाँ से सिधार चुके थे। अब वह ठिकाना भी यहाँ नहीं था, जहाँ बरसात के दिनों में आकर वास किया करते थे। बस अब तो उस बस्ती की यादगार थोड़ी ईंटें पड़ी रह गयी थीं। ज़रा हटकर एक हरे भरे शादाब टीले पर शायद उसी समय का एक मोर बैठा रह गया था, जो समय को, उस समय की श्रावस्ती को अपनी आँखों में रमाये बैठा था और कितने सकून से बैठा था। उस एकदम से उजड़ी हुई श्रावस्ती के सारे वातावरण में जैसे शान्ति रच बस गयी थी।

मैं श्रावस्ती में ज़्यादा देर नहीं रुका। मुझे वापस दिल्ली पहुँचना था। दिल्ली की वह शाम बहुत उदास थी। कम-से-कम बस्ती निज़ामुद्दीन में तो उसका यही रंग था। अभी पिछले दिनों कितने ख़ानाबर्बाद क़ाफ़िले दर क़ाफ़िले यहाँ से निकले थे। अब ख़ामोशी थी और बरसात की यह शाम बस्ती निज़ामुद्दीन में कुछ ज़्यादा ही ख़ामोश थी। कच्चे अहाते के बीच ग़ालिब की क़ब्र उजड़ी-उजड़ी थी। अहाते के आस-पास कितनी ऊँची-ऊँची घास खड़ी थी। उस बीच से मैं गुज़र रहा था कि पीछे से एक मोर ने मुझे पुकारा। मैंने मुड़कर देखा। वह दिखाई तो नहीं दे रहा था मगर उसकी पुकार फिर सुनाई दी। अजब पुकार थी, जैसे हज़ार सदियाँ मिलकर मुझे पुकार रही हों।

हज़ार सदियों के किनारे पर पहुँचकर मैं ठिठका। उस मोर की आवाज़ तो मुझे यहीं तक लेकर आयी थी मगर अब सदियों के उस पार से मोरों की झंकार सुनाई दे रही थी। मैं हैरान, या मौला! ये मोर किस बाग़ से बोल रहे हैं। मैंने क़दम बढ़ाया और एक नयी हैरानी ने मुझे आ लिया। यह कौन-सा नगर है! प्राचीर बादलों से बातें करते हुए। प्राचीर के आसपास फैले हुए बाग़ भाँति-भाँति के फल, रंग-रंग की चिड़ियाँ, बाग़ चिड़ियों की चहकार से गूँज रहे हैं। सारी चहकार पर छायी हुई दो आवाज़ें। कोयल की कूक और मोरों की झंकार। अरे, यह तो पांडवों का नगर है, इन्द्रप्रस्थ! यह तो मैं बहुत दूर निकल आया, मुझे वापस चलना चाहिए।

बहुत घूम फिर लिया, बहुत मोरों को देखभाल लिया। किन-किन वक़्तों के किस-किस नगर के मोरों को देखा। उनकी झंकार सुनी। अब मुझे मोरनामा लिखना चाहिए। मगर मुझे घर वापस होने से पहले राजस्थान का फिर एक फेरा लगाना चाहिए। शायद वह मोर जो भयावह की स्थिति में यहाँ से उड़ गये थे, वापस आ गये हों!

मोर सचमुच अच्छी ख़ासी तादाद में आ गये थे। मगर हैरानी हुई कि मुझे देखकर वे बहुत भयभीत हुए और चीख़ते-चिल्लाते टीलों और पेड़ों की शाख़ों से उड़े और फ़िज़ा में तितर-बितर हो गये। बस इसी आन मुझे एहसास हुआ कि मैं अकेला नहीं हूँ, कोई दूसरा भी मेरे साथ-साथ चल रहा है। मैंने अपने बायें नज़र डाली। मेरी आँखें फटी की फटी रह गयी हैं। ये तो अश्वत्थामा है, कुरुक्षेत्र का महापापी। ये यहाँ कहाँ और मेरे साथ क्यों चल रहा है! मुझे पता ही न चला कि वह मेरे साथ लग गया। फिर मुझे ख़याल आया कि जब मैं इन्द्रप्रस्थ से पलटा हूँ तो कुरुक्षेत्र के पास से जो गुज़रा था, वहीं से यह मनहूस शख़्स मेरे साथ हो लिया होगा। मगर कुरुक्षेत्र में तो अब सन्नाटा था— न आदमी न आदमज़ाद। ये वहाँ क्या कर रहा था? क्या तब से वहीं भटक रहा है?

युद्ध आदमी को क्या से क्या बना देता है? अश्वत्थामा को देखो और सीख लो। द्रोणाचार्य का बेटा, पिता ने वह सम्मान पाया कि सारे सूरमा, क्या कौरव क्या पांडव, उसके सामने माथा टेकते थे, चरण छूते थे। बेटे ने बाप से विरासत में कितना कुछ पाया, मगर ये विरासत उसे पचा नहीं। उस युद्ध का सबसे निन्दनीय व्यक्ति अन्ततः यही व्यक्ति ठहरा।

कहते हैं कि सूरमाओं के गुरु, द्रोणाचार्य के पास वह भयानक अस्त्र था, जिसे ब्रह्मास्त्र कहते हैं। देखने में घास की पत्ती, चल जाए तो वह तबाही लाए कि दूर-दूर तक जीव-जन्तु का नामोनिशान दिखाई न दे। बस्ती चपेट में आ जाये तो देखते-देखते ख़ाक का ढेर बन जाए। द्रोणाचार्य ने उस अस्त्र का रहस्य बस अपने एक ही शिष्य सूरमा को दिया था। अर्जुन को, जो उनका सबसे प्रिय शिष्य था। युद्ध भी क्या भयानक चीज़ है! कुरुक्षेत्र के मैदान में गुरु-शिष्य एक-दूसरे से लड़ रहे थे। मगर दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं करना है क्योंकि उसके चलने का मतलब होगा कि सब कुछ तबाह हो जाएगा।

द्रोणाचार्य ने मृत्यु से पूर्व अपने बेटे अश्वत्थामा को ब्रह्मास्त्र के गुण समझा दिया था मगर चेतावनी दी थी कि किसी भी दशा में इसका प्रयोग नहीं करना है, किन्तु जब युद्ध में द्रोणाचार्य मारे गये तो अश्वत्थामा को रोकने-टोकने वाला कोई नहीं था। युद्ध के अन्तिम क्षणों में वह जान पर खेला और ब्रह्मास्त्र चला दिया। युद्ध के अन्तिम क्षणों से डरना चाहिए। युद्ध के सबसे कोमल और भयानक क्षण वही होते हैं। विजेता को युद्ध को निपटाने की जल्दी होती है। हारने वाला जी जान से पीड़ित होता है। तो वह भयानक अस्त्र जो बस डराने धमकाने के लिए होते हैं, अन्तिम क्षणों में प्रयोग होते हैं। फिर बेशक़ शहर जलकर हिरोशिमा बन जाए, दिल की हसरत तो निकल जाती है! युद्ध के अन्तिम क्षणों में दिल की हसरत कभी विजेता निकालता है, कभी पराजित होने वाला। कुरुक्षेत्र में अन्ततः मन की इच्छा अश्वत्थामा ने पूरी की और ब्रह्मास्त्र फेंक मारा।

तब श्री कृष्ण अर्जुन से बोले, ''हे जनार्दन, द्रोण के मूर्ख पुत्र ने तो ब्रह्मास्त्र फेंक मारा! मुझे तो जीव-जन्तु सब नष्ट होते दिखाई दे रहे हैं। इस अस्त्र का तोड़ तेरे पास है, सो जल्दी तोड़ कर, इससे पहले कि सब कुछ जलकर भस्म हो जाए।''

तब अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र निकाला और अश्वत्थामा के तोड़ के रूप में प्रयोग किया। और कहते हैं कि जब अर्जुन का वाण चला तो ऐसी बड़ी आग भड़की कि तीनों लोक उसके शोलों की लपेट में आ गये। उसकी धमक उस वन तक भी पहुँची जहाँ व्यास ऋषि बैठे तप कर रहे थे। उन्होंने तपस्या बीच में छोड़ी। हड़बड़ाकर उठे और दोनों हाथ उठाकर चिल्लाए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि दुष्टो! ये तुमने क्या अनर्थ किया! सारी सृष्टि जल कर ख़ाक हो जाएगी, जीव-जन्तु का विनाश हो जाएगा। अपने-अपने अस्त्र वापस लो।

अर्जुन ने उस महान आत्मा के चरण छुए। हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और तुरन्त ही अपना अस्त्र वापस ले लिया।

पर अश्वत्थामा ढिठाई से बोला, ''हे महाराज, मैंने तो अस्त्र चला दिया। इसे वापस लेना मेरे वश में नहीं है। बस इतना ही कर सकता हूँ कि इसकी दिशा बदल दूँ। सो, अब यह अस्त्र पाण्डवों की सेना पर नहीं गिरेगा, पांडवों की स्त्रियों पर गिरेगा। जो गर्भ से होंगी, उनका गर्भ गिर जाएगा। जिसकी कोख में बच्चा पल रहा है वह बच्चा मर जाएगा। पांडवों की सन्तानों का इस प्रकार अन्त हो जाएगा।''

उसी क्षण श्री कृष्ण जी कलसकर बोले, ''हे द्रोण के पापी पुत्र, तेरा विनाश हो। तूने बालहत्या का पाप किया है। मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू तीन हज़ार वर्ष इस प्रकार जिएगा कि वनों में अकेला मारा-मारा फिरेगा। तेरे घावों से सदा रक्त व पीप ऐसे रिसा करेंगी कि बस्ती वाले तुझसे घिन्न करेंगे और दूर भागेंगे।''

मैं भी तो उससे दूर ही भागने की कोशिश कर रहा था, मगर वह तो साये की तरह मेरे पीछे लगा हुआ था। या अल्लाह, मैं किधर जाऊँ, कैसे इस नहूसत से पीछा छुड़ाऊँ! अचानक एक ख़याल आया कि मीराबाई की समाधि यहीं कहीं है। वहाँ जाकर छुप जाऊँ। फिर याद आया कि अरे हाँ, ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह भी तो इसी आसपास है। अगर उस दरगाह में पहुँच जाऊँ तो फिर समझो कि उसकी पकड़ से बच गया। वहाँ दरगाह में उसे कौन घुसने देगा। बस इस तरह के ख़याल मुझे आ रहे थे, लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि उससे आँख बचाकर कैसे निकलूँ! जिस राह जाता वह परछाईं की तरह साथ-साथ चलता। उधर मोरों ने शोर मचा रखा था। कितनी निराशा भरी आवाज़ों में चिल्ला रहे थे, यानी वह मोर जो बचे रह गये थे। उधर पाण्डवों के घरों से औरतों के रोने की आवाज़ें आ रही थीं। हर घर शोकाकुल था। वहाँ मरे हुए बच्चे पैदा हो रहे थे और अर्जुन के घर में तो क़यामत मची हुई थी। सुभद्रा, किस दर्द से बिलख रही थी! उसकी कोख का जन्मा अभिमन्यु पहले ही कुरुक्षेत्र में ख़त्म हो चुका था। रो-धोकर उसने बहू से आस लगाई थी कि वह पूत जनेगी। उस पूत से अर्जुन के अँधेरे घर में उजाला होगा और पाण्डवों की सन्तति आगे चलेगी। मगर हुआ वह जो अश्वत्थामा ने कहा था। उत्तरा बेहोश पड़ी है। बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ है। पाण्डवों के किसी घर में अब उजाला नहीं होगा। ब्रह्मास्त्र ने उनकी स्त्रियों की कोखों को उजाड़ डाला है। मगर सुभद्रा ने उम्मीद का दामन हाथ से नहीं छोड़ा है। भाई का वादा उसे याद आया। कृष्ण ने वचन दिया था कि बहना, तेरी बहू की कोख को उजड़ने नहीं दूँगा। तो लो, उन्होंने अवात होने के नाते मुर्दा बच्चे में प्राण डाल दिए हैं और बता दिया है कि यह बालक बड़ा होकर हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा। पाण्डवों का नाम रोशन करेगा। मगर उस मरे हुए बच्चे ने ज़िन्दा होकर अजब सवाल किया! जब सिंहासन पर बैठा और व्यास जी आशीर्वाद देने के लिए वनों से निकलकर आये और उसके दरबार में विराजे तो उसने गुलाब-केवड़े के पानी से चिलमची में उनके पाँव धोए। फिर चरण छुए और हाथ बाँधकर खड़ा हो गया, ''मेरे पूर्वज, आज्ञा हो तो एक प्रश्न पूछूँ?''

''पूछ बेटा।''

''हे महाराज, कुरुक्षेत्र में मेरे सब ही बड़े मौजूद थे, इधर भी और उधर भी। और दोनों ही ओर गुणी-ज्ञानी, बुद्धिमान मौजूद थे। फिर उन्हें यह समझ क्यों न आयी कि युद्ध महँगा सौदा है! सब कुछ उजड़ जाएगा, विनाश हो जाएगा।''

व्यास जी ने लम्बी ठण्डी-साँस भरी। बोले, ''पुत्र, युद्ध में अच्छे-अच्छे मानव की मति मारी जाती है, और होनी को कौन टाल सकता है!''

और ऋषि जी तुरन्त उठ खड़े हुए। जिन वनों से आये थे उलटे पाँव उन्हीं वनों में चले गये।

ऋषि लोग उन भले वक़्तों में हज़ारों वर्ष के हिसाब से ज़िन्दा रहते थे। अर्जुन का पौत्र ऋषि नहीं था, उसे साँप ने डस लिया और वह मर गया। मगर उसने व्यास जी से जो प्रश्न किया था उस प्रश्न ने व्यास जी से अधिक उम्र पायी। मैं जब राजस्थान में भटक रहा था तो यह प्रश्न मुझे मिला था। जहाँ अश्वत्थामा भटकता फिर रहा था वहाँ यह सवाल भी आसपास भटकता दिखाई दिया। उसने भी मेरा बहुत पीछा किया। यह समझ लो कि मैं दो सायों के बीच चल रहा था।

पहले मैं अश्वत्थामा को देख के हैरान हुआ था कि अच्छा उस मूर्ख के अभी तीन हज़ार वर्ष पूरे नहीं हुए हैं। फिर जब परीक्षित वाले प्रश्न से मुठभेड़ हुई तो मैं और हैरान हुआ कि अच्छा, ये प्रश्न भी अभी तक चला आ रहा है!

बल्कि मुझे लगा कि अब यह प्रश्न अधिक गम्भीर हो गया है, मानो पूरी पाक-भारत धरती पर मँडरा रहा है, जैसे किसी के सर पर तलवार लटकी हुई हो। होनी को कौन टाल सकता है, यह उत्तर तो न हुआ! व्यास जी ने प्रश्न को टाला था, उत्तर नहीं दिया था। तभी तो वह तब से फ़िज़ा में भटकता फिर रहा है और जवाब माँग रहा है। एक नहीं बल्कि दो। मेरी जान के लिए अश्वत्थामा कम था, यह सवाल भी मेरी जान को लग गया।

ख़ैर, मैं पहले अश्वत्थामा से तो अपनी जान छुड़ाऊँ! कितनी बार उसे ग़च्चा देने की कोशिश की। अचानक राह बदल कर दूसरी राह पर हो लिया। समझा कि उसे पता नहीं चला, मगर थोड़ी देर बाद पता चला कि वह तो फिर मेरे आसपास चल रहा है।

मैंने सोचा कि यह मेरा कितना पीछा करेगा, मुझे तो अपने क्षेत्र में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वापस चले जाना है। यह तो उस लोक का प्राणी है। हद से हद सरहद तक मेरा पीछा करेगा। आगे उसे कौन जाने देगा! फिर भी मैंने कोशिश की कि इससे आँख बचाकर निकल जाऊँ। बाद में उसे पता चले कि मैं यहाँ से निकल गया हूँ और उसकी पकड़ से बाहर हूँ।

मैं सचमुच उससे आँख बचाकर निकल आया था। कैसी तड़ी थी! उसके फ़रिश्ते को भी पता नहीं चला कि मैं कब वहाँ से निकला और कब सरहद पार किया। अपनी सरहद में क़दम रखने के बाद इत्मिनान की लम्बी साँस लिया। ख़ुदा का शुक्र अदा किया कि उस दुष्टात्मा से निजात पायी। मुझे बैताल पचीसी की कहानी याद आयी। मगर वह तो कहानी थी। इस तरह तो कहानियों ही में भूत जान को चिपटा करते हैं, मगर मेरे साथ तो सचमुच ऐसा हुआ, ख़ैर, बला से पीछा छूटा! अब मैं निश्चिन्त था। सोच रहा था कि मैं अब युग-युग के मोरों से मिल लिया हूँ। किस किस नगर के मोर की झंकार सुनी है। अब मैं इत्मिनान से घर बैठकर मोरनामा लिखूँगा। दिल खुशी से झूम उठा। जिन जिन मोरों को देखा था वह सब एकदम से मेरी कल्पना में मँडराने लगे। उनकी शीरीं झंकार से मेरा मन गूँज गया। फिर मुझे लगा कि जैसे मैं जगत मोर के साये में चल रहा हूँ। जंगल मोर, जिसकी दुम खड़ी होकर पंखे का रूप बन गयी है और सारे वातावरण पर आच्छादित हो गयी है। जगत मोर नृत्य कर रहा है।

मैं जब अपने घर के क़रीब पहुँचा हूँ तो अचानक मुझे अपने पीछे क़दमों की आहट का एहसास हुआ। जैसे कोई दबे पाँव मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। मैंने अचानक पलटकर देखा और मेरे क़दम सौ-सौ मन के हो गये। अश्वत्थामा मेरे पीछे-पीछे आ रहा था। यह कमबख़्त तो यहाँ भी आ गया। अब मैं कैसे इससे छुटकारा पाऊँगा!

तब मैं रोया और मैंने गिड़गिड़ाकर पालनहार से पूछा कि ऐ मेरे पालनहार, ऐ मेरे रब, इस प्रेत के तीन हज़ार वर्ष आख़िर कब पूरे होंगे! कब मैं अपना मोरनामा लिख पाऊँगा?

एफ़-58, सेक्टर-40, नोएडा-201301
फ़ोन : 95120-2576967

मीर और ग़ालिब पर दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

मीर
श्री रामनाथ 'सुमन'
पृष्ठ : 412, मूल्य : 140 रुपये

उर्दू-काव्य से मीर को निकाल दीजिए तो जैसे गंगा को हिन्दुस्तान से निकाल दिया! मीर में अनुभूति की गहराइयाँ तड़पती हैं, वहाँ दिल का दामन आँसुओं से तर है। मीर में एक अजब-सी ख़ुदफ़रामोशी है, एक बाँकपन, एक अकड़, एक फ़क़ीरी तथा ज़बान की वह घुलावट है, जो किसी दूसरे को नसीब नहीं हुई।

मीर के इस अध्ययन को, जो सुमनजी की पैनी दृष्टि से गुज़रकर आया है, पढ़कर आपको मीर के सम्बन्ध में उर्दू में कुछ पढ़ने को नहीं रह जाता, क्योंकि इसमें मीर पर हुए सम्पूर्ण अद्यतन श्रम का समावेश है।

किसी के लिए भी ग़ालिब का व्यक्तित्व और कृतित्व समझ लेना अथवा समझा देना आसान नहीं है। यौवन की तरंगों का यह रंगीन शाइर बाहर से जितना मोहक है भीतर से उतना ही जटिल और विविध भी। ग़ालिब का काव्य-लोक सामुद्रिक संसार की तरह उलझा, विचित्र और ख़ूबसूरत है— कहीं भावनाएँ शीशे की तरह पवित्र एवं पाठक को डबडबा देनेवालीं। 'सुमन' जी ने बहुत अधिक लोकप्रिय फिर भी बहुत अधिक अज्ञात इस महाकवि की रहस्य में छुपी ऊँचाइयों को अपनी परख-प्रतिभा से पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है।

ग़ालिब
श्री रामनाथ 'सुमन'
पृष्ठ : 512, मूल्य : 100 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

योजना बनाकर लेखन नहीं करता

इन्तज़ार हुसैन से इक़बाल रिज़वी की बातचीत

पाकिस्तानी कथाकार इन्तज़ार हुसैन का नाम भारतीय पाठकों के लिए अंजाना नहीं है। उनका उपन्यास 'बस्ती' जितना भारत में लोकप्रिय हुआ उतना अब्दुल्ला हुसैन के उपन्यास 'उदास नस्लें' को छोड़कर दूसरी पाकिस्तानी कृति लोकप्रिय नहीं हुई। इन्तज़ार हुसैन अक्सर भारत आते रहे हैं लेकिन पिछले तीन सालों में वे अलग-अलग अवसरों पर कई बार भारत आए। उनसे दो तीन बार टुकड़ों-टुकड़ों में इक़बाल रिज़यी की बातचीत हुई। बातचीत की वे किस्तें साक्षात्कार के रूप में सिलसिलेवार ढंग से यहाँ प्रस्तुत हैं।

आपके लेखन में भारतीय महाद्वीप की सदियों पुरानी परम्पराएँ, रस्में और मिथक जगह-जगह नज़र आते हैं। इस वजह से भारत में जहाँ आपका लेखन बहुत पसन्द किया जाता है, पाकिस्तान में आलोचना होती है।

नहीं ऐसा नहीं है कि पाकिस्तान में इस चीज़ की आलोचना होती है। हाँ, मेरी कहानियों में शामिल मिथकों या प्राचीन क़िस्सों के असरात पर सवाल ज़रूर खड़े होते रहे हैं कि भई ये क्या हैं। ये तो अलिफ़ लैला से प्रभावित होकर लिखी गयी हैं, ये तो हिन्दू ट्रेडिशन लगता है। तो कभी-कभी इस तरह की बातें होती रही हैं। लेकिन आप उन पाकिस्तानी साहित्यकारों के काम पर ग़ौर करें जो भारत से पाकिस्तान गये तो सबके यहाँ कहीं न कहीं पुरानी परम्पराएँ, साझा रस्में नज़र आएगी। और यह स्वाभाविक है। जब तक आप कहीं रहते हैं आप उस जगह को शिद्दत के साथ नहीं महसूस करते। वो तो जब आप कहीं से उखड़ते हैं तब अपनी ज़मीन, अपनी मिट्टी, वहाँ के रस्मों-रिवाज़ शिद्दत के साथ याद आते हैं। अगर आप संवेदनशील हैं तो जीवन भर वो यादें आपके साथ बनी रहती हैं। इसलिए केवल मेरे लेखन में ही नहीं पाकिस्तान के और भी साहित्यकारों के लेखन में इस तरह की चीज़ें नज़र आती हैं।

नौजवानी तक की उम्र आपने साझा संस्कृति वाले माहौल में गुज़ारी। क्या सिर्फ़ यही वजह है कि आपके लेखन में प्राचीन मिथक नज़र आते हैं या फिर सोच समझकर इनका प्रयोग करते हैं?

मैंने कभी योजना बनाकर इस तरह का लेखन नहीं किया। जब मैंने लिखना शुरू किया तो लेखकों के रूप में पश्चिमी लेखकों के भारी भरकम नाम हमारे बीच मौजूद थे। उन्हें पढ़ना अनिवार्य समझा जाता था। लगता था साहित्य में पश्चिम हमसे बहुत आगे है। हमारे हमउम्र उनसे बहुत प्रभावित रहते थे, लेकिन साथ ही बचपन में घर में सुनी अलिफ़ लैला, क़िस्सा चार दरवेश और दूसरी लोक कथाओं का असर भी कहीं न कहीं दिमाग़ में महफ़ूज़ था। क्योंकि उन कथाओं की क़िस्सागोई के अन्दाज़ ने मुझ पर गहरा असर डाला था। पाकिस्तान जाने के बाद अपनी जड़ों की याद शिद्दत के साथ आती रही। शायद इसी वजह से मैंने 1972 में सिलसिलेवार ढंग से जातक कथाएँ, बेताल पच्चीसी, सिंहासन पच्चीसी, अलिफ़ लैला वग़ैरह पढ़ीं। लगा कि मैंने एक रहस्यमयी संसार की यात्रा की है। जातक कथाओं ने मुझ पर ऐसा असर डाला कि ख़याल आया, प्राचीन भारत का साहित्य भी पढ़ना चाहिए तो महाभारत की कथाएँ पढ़ीं। तब लगा कि मैं तो साहित्य की एक समृद्ध परम्परा से अब तक बेख़बर था। जबकि ये सब तो लाजवाब हैं। विश्व साहित्य की धरोहर हैं ये साहित्य।

यही नहीं, इन्हें पढ़ते हुए मुझे लगा कि जिस युग की बात इनमें की गयी है, जिस लूट खसोट, रिश्वत, वासना, प्रेम वग़ैरा के हवाले हैं वैसी ही चीज़ें तो हमारे समय में भी घट रही हैं। साथ ही मैंने महसूस किया कि कथा भण्डार की इतनी बड़ी धरोहर, जिसमें कहानी से कहानी बुनने की जो कला है, क़िस्सागोई का जो दिलचस्प और असरदार अन्दाज़ है वह वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण चीज़ है। बस वहीं से मैंने एक नयी शुरुआत की। एक के बाद एक कई कहानियाँ लिखीं। ऐसा नहीं था कि मैं सोच समझकर कोई सीरिज़ लिख रहा था। हाँ, ये ज़रूर हुआ कि 1992 के आसपास इस तरह की कहानियों का भारत में अंग्रेज़ी में अनुवाद कर इसे 'लीव्ज़' नाम से किताब के रूप में छापा गया। पुरानी कथाओं से प्रभावित होकर जब मैंने कहानियाँ लिखीं तो बीच-बीच में अलग अन्दाज़ की कहानियाँ भी लिखीं। अब भी लिखते समय प्राचीन कथाओं के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

> पाकिस्तान जाने के बाद अपनी जड़ों की याद शिद्दत के साथ आती रही। शायद इसी वजह से मैंने 1972 में सिलसिलेवार ढंग से जातक कथाएँ, बेताल पच्चीसी, सिंहासन पच्चीसी, अलिफ़ लैला वग़ैरह पढ़ीं। लगा कि मैंने एक रहस्यमयी संसार की यात्रा की है। जातक कथाओं ने मुझ पर ऐसा असर डाला कि ख़याल आया, प्राचीन भारत का साहित्य भी पढ़ना चाहिए तो महाभारत की कथाएँ पढ़ीं। तब लगा कि मैं तो साहित्य की एक समृद्ध परम्परा से अब तक बेख़बर था।

हवाले उनका असर लेखन में आ जाते हैं।

प्रगतिशील लेखकों को लेकर आपकी टिप्पणियाँ जब तब भारत भी पहुँचती रहती हैं। उनके लेखन में क्या ऐसा फ़र्क़ है जो आप उनसे सहमत नहीं दिखाई देते।

देखिए तरक्की पसन्द लेखक मुझे भी पसन्द रहे हैं। कृशनचन्दर का तो मैं दीवाना था। लेकिन मुझे इस बात से एतराज़ रहा कि वे सामाजिक हक़ीक़तों को ही पूरी ज़िन्दगी समझते हैं। जबकि समाजी सचाइयाँ हमारे जीवन का एक हिस्सा हैं, पूरा जीवन नहीं। हमारी परम्पराएँ हैं, संस्कृति है यानी पूरी क़ायनात हैं ज़िन्दगी में। अब उसे कैसे भुला दें और सिर्फ़ सामाजिक मसलों पर ही बात करते रहें।

आपकी कहानियों में एक धीमा-धीमा व्यंग्य नज़र आता है।

देखिए लेखक एक ही सिचुएशन पर अलग-अलग समय में अलग-अलग तरह से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। व्यंग्य भी हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा है। मैं कहूँगा अहम हिस्सा है। मेरी कहानियों में कई स्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ व्यंग्यात्मक लहजा मुझे अधिक असरदार लगा लेकिन मैं मूल रूप से व्यंग्यकार नहीं हूँ। इसलिए मेरे लेखन में व्यंग्य को बहुत मुखर रूप में नहीं पाएँगे। उतना ही है जितना हर इंसान की आम ज़िन्दगी में होता है।

आप लम्बे समय तक पाकिस्तान में अख़बार से जुड़े रहे हैं लेकिन मीडिया के रवैये की अक्सर आलोचना करते रहते हैं।

मीडिया के असर की बात मैं आपको बताऊँ कि भारत के कुछ टीवी चैनल जो पाकिस्तान में देखे जाते हैं, उनके प्रोग्राम का गहरा असर वहाँ के नौजवानों पर नज़र आने लगा है। एक ख़ास किस्म की भाषा इन चैनलों के ज़रिये वहाँ घर-घर में पहुँची है। और मैं देखता हूँ कि उसमें जो कुछ दिखाया जा रहा है वह भारत का भी नहीं है। वह तो महज़ वेस्ट की नकल है। हम ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहाँ बाहरी दबाव बहुत है। समाज पर राजनीति हावी है। मीडिया की दखलअन्दाजी बहुत बढ़ गयी है। लोगों का बहुत-सा समय टीवी देखने में बीत जाता है। इंटरनेट का बढ़ता चलन पढ़े लिखे तबके से ढेर-सा समय छीने ले रहा है। मैं तो महसूस कर रहा हूँ मास मीडिया की वजह से सतहीपन ज़्यादा बढ़ रहा है। गहराई में जाकर सोचने की ज़रूरत ही ख़त्म कर दी है मीडिया ने। जबकि साहित्य सृजन के लिए स्थितियों, परिस्थितियों और भावनाओं को गहराई से सोचना बेहद अहम है। साहित्य की ये ज़रूरत तब तक बनी रहेगी जब तक साहित्य का वजूद बना रहेगा। इस काम को किसी और तरीक़े से किया ही नहीं जा सकता।

कहीं नयी नस्ल को लेकर नाउम्मीद तो नहीं हो रहे हैं?

नहीं ऐसा नहीं है। ज़माना बदलता रहता है। अपनी ज़िन्दगी में ही मैंने ज़माने के इतने बदलाव देखे हैं कि लगता है सदियों से ज़िन्दा हूँ। जेनरेशन गैप का मसला तो हर पीढ़ी के साथ रहता है लेकिन पहले से साधनसंपन्न होते जा रहे समाज में बड़ा साहित्य सृजन, रुका-रुका-सा ठहरा-ठहरा-सा महसूस हो रहा है। नये कहानीकार लिख रहे हैं, नये नाविल लिखे जा रहे हैं लेकिन बड़ी चीज़ें सामने नहीं आ रहीं हैं। अहमद फ़राज़, किश्वर नाहीद और कुछ दूसरे शायर अच्छा लिख रहे हैं लेकिन ग़ज़ल के मैदान में फ़ैज़ के बाद ठहराव-सा आ गया है। भारत में भी ग़ज़ल के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम होता नहीं नज़र आ रहा है।

क्या भारतीय साहित्यकारों का लेखन पाकिस्तान पहुँच रहा है?

हाँ, उर्दू और पंजाब वालों का तो पहुँचता ही रहता है। हिन्दी साहित्यकारों की रचनाएँ भी पहुँचती हैं। कभी-कभी उर्दू के माध्यम से और अक्सर अँग्रेज़ी अनुवाद के ज़रिये। आपको एक बात बता दूँ कि पाकिस्तान में हिन्दी जानने वाले अब बहुत कम बचे हैं फ़िर भी हिन्दी से उर्दू अनुवाद का काम होता रहता है। हिन्दी लेखकों में से मैंने निर्मल वर्मा और अब्दुल बिस्मिल्लाह को पढ़ा है। कमलेश्वर का एक नावेल 'कितने पाकिस्तान' भी उर्दू में आया है।

भारत और पाकिस्तान के बीच वो कौन-सी चीज़ें हैं जिनके ज़रिये दोनों और क़रीब आ सकते हैं?

एक तो है क्रिकेट। इसका बहुत गहरा असर है दोनों देशों में। इसके खिलाड़ी समाज में हिरो की तरह लिए जाते हैं। इसके अलावा हिन्दी फ़िल्में भी बहुत अहम रोल निभा रही हैं। शायद भारत पाकिस्तान इस मैदान में और क़रीब आये तो दोनों तरफ़ हालात और बेहतर बने। ये देखकर अच्छा लगता है कि सियासी बयानबाज़ी के बावजूद दोनों मुल्क़ों में दोस्ती की रिवायत मज़बूत हो रही है।

प्लाट नं.-3, सेक्टर-1, वैशाली, गाजियाबाद (उ.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं क्यों लिखता हूँ

इन्तज़ार हुसैन

अगले ज़माने में एक सौदागर था जिसकी सात बीवियाँ थीं। एक बार क्या हुआ कि उसे व्यापार के सिलसिले में सफ़र पे जाना पड़ गया। वह बारी-बारी छह बीवियों के पास गया और बोला, ''बीवी हम परदेस जाते हैं कहो तुम्हारे लिए क्या तोहफ़े लाएँ।'' सब बीवियों ने बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी फ़रमाइशें कीं। फिर आई सातवीं बीवी की बारी... जिससे सौदागर को ऐसा उन्स तो नहीं था मगर उसने सोचा कि रस्म तो पूरी कर ही लेनी चाहिए। सातवीं बीवी ने न किसी क़ीमती ज़ेवर की फरमाइश की न किसी भारी पोशाक की। बस एक सब्ज़ पंखिया ले आने को कह दिया।

सौदागर जब अपना कारोबार करके परदेस से वापस होने लगा तो उसने बाज़ार जाकर बीवियों के लिए पुरतकल्लुफ़ तहाएफ ख़रीदे मगर सब्ज़ पंखिया उसके ज़हन से उतर गयी। जब वह जहाज़ में आकर बैठा तो अजब माज़रा गुज़रा कि जहाज़ अपनी जगह से हरक़त ही न करे। जहाज़ी सरगरदाँ और मुसाफ़िर परेशान कि जहाज़ आख़िर क्यों नहीं चलता। कुछ पहुँचे हुए बुज़ुर्ग ने कहा, ''कि भाई तुम में से कोई मुसाफ़िर अपना काम करना भूल गया है। जब तक वह काम पूरा नहीं होगा, जहाज़ हरकत में न आएगा। हर मुसाफ़िर से बारी-बारी सवाल किये गये। सबने अपने-अपने काम गिना दिए। जब आई सौदागर की बारी तो उसे अपनी बीवियों को तोहफ़े गिनाते-गिनाते अचानक सातवीं बीवी की सब्ज़ पंखिया याद आयी। जहाज़ वालों ने कहा, ''भाई, सब्ज़ पंखिया तलाश करो और जल्दी आओ कि जहाज़ किसी तरह रवाना हो सके।''

मैं भी एक सफ़र पर निकला हुआ हूँ कि और सब्ज़ पंखिया ढूँढता हूँ। पुरानी कहानियों और दास्तानों के शहज़ादे और सौदागर बड़े ख़ुशनसीब होते थे कि नाकामियों और परेशानियों के बाद बिल आख़िर गौहर-ए-मुराद पा लेते थे। मगर जिस सफ़र पर मैं निकला हूँ उसमें गौहर-ए-मुराद तो कम ही लोगों को मिला है, शोबदे अलबत्ता बहुत मिलते हैं। मुझे एहसास हो रहा है कि मैं कोई बड़ा दावा कर बैठा हूँ। 'वैसे मैं क्यों लिखता हूँ?' के सवाल के जवाब की कोशिश ख़ुद क्या एक दावा नहीं? और यह दावा अपने यहाँ किसको नहीं है? मगर मैं तो यूँ सोचता हूँ कि फ़र्ज़ कीजिए कि चेखव के मुल्क में, उसकी ज़िन्दगी में या उसके मरने के फ़ौरन बाद मैं लिख रहा होता तो क्या मैं यह दावा करने की जुर्रत करता? अल्लाह की क़सम मेरी तो क़लम थर्राने लगती है। लेकिन मैं यहाँ डरूँ किससे? मैं जिस ज़बान में लिखता हूँ उसमें अफ़साना-निगार बेशक़ हुए हैं लेकिन निस्फ़ सदी से कुछ कम उधर। उसके बाद जो लोग आये और बिल ख़ुसूस वह फ़ौज जो 35 ई. वाली तहरीक के साथ आयी। यह कौन लोग हैं मैं इन्हें नहीं पहचानता। इन्हें देखकर तो मुझे दास्तानों के शोबदा बाज़ों का ख़्याल आता है। आख़िर मैं किसकी पैरवी करूँ और किसके ख़िलाफ़ बग़ावत करूँ। मेरे रस्ते में यह लोग आते ही नहीं। इनकी कोई तहरीर न तो मेरा रास्ता रोकती है और न रास्ता दिखाती है। मुझे हर काम के लिए दौर के दौर फलाँग कर उस दौर में पहुँचना पड़ता है जब आब-ए-हयात, शाए हुई थी। मौलाना मो. हुसैन आज़ाद और उनसे पहले और आस-पास के दिनों के चन्द और अफ़साना निगार बेशक़ साहेब-ए-तखलीक़ लोग थे, सय्याह थे। बस उन्होंने छ: बीवियों के तहाएफ़ फराहम किये हैं। सब्ज़ पंखिया मैंने किसी के यहाँ नहीं देखी।

यह सब्ज़ पंखिया क्या है? यह सोचते हुए मेरा तसव्वुर उस वक़्त की दास्तानों की फ़िज़ा से बहककर अपने बचपन के घर के उस बालाई कोठे पर जा पहुँचा है, जहाँ अक़्ब में एक बड़ा सा जंगला था और उससे परे एक बोसीदा-सा छज्जा जिस पर न जाने कब से मिट्टी जम रही थी। बरसात के दिनों में उस पे अजीब-सी घास उग आयी थी। नर्म पतली-सी सीधी शाख़ फुनंग पे सब्ज़ वर्क़-सा लिपटा हुआ कुछ इस शक़्ल का जिस शक़्ल का पत्तों में लिपटा हुआ भुट्टा होता है। शाख़ लम्बी होती जाती और वह वर्क़ा खुलता जाता, सफ़ेद-सफ़ेद रोआँ अन्दर से झाँकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर एक मुलायम-सा लम्बोतरा खुशनुमा गाला हवा में लहलहाने लगता। मेरी ज़बान में शायद इस पौधे के लिए कोई नाम मौजूद नहीं है। मेरे मुतकद्दमीन ने तो सब्ज़े के पूरे क़ाफिला ही को बेगाना कहकर फितरत की बिरादरी से ख़ारिज कर दिया था। वैसे हम इस पौधे को भुट्टा कहा करते थे। न जाने कितनी मर्तबा मैंने इसे तोड़ने की कोशिश की होगी मगर जंगले में मेरा हाथ फँस जाता और वह पौधे मेरी दस्तरस से परे बेन्याज़ी से लहलहाते रहते। कभी-कभी अब्र आता तो उन पौधों में पहले एक बहुत हल्की-सी थरथरी पैदा होती और फिर एकाएकी हवा के झोंकों से वह झोंटे लेने लगते। यह है वह लम्हा, जिसे गिरफ़्त करने के लिए मैंने अफ़साना निगारी का जाल फैलाया। मुझे यों महसूस होता है कि इस पौधे को, इसकी नीम महसूस लर्ज़िश को बस मैंने देखा है। सेगए फितरत की यह आयत मुझ पर मेरे विजदानी नफ़स पर उतरी है। मुझे इस पौधे का 'इस्म' तखलीक़ करना है और उसकी ख़फी लर्ज़िश को एक जली शक्ल में ढालना है। बाग़ का यह ज़र्रा-ए-ज़मीन अब तक निगाहों से ओझल था, बेकार था, बाग़ से बाहर था। अब मेरी तफसीर से यह बाग़ का जुज़ बनेगा। इस ज़र्रे की मैं यों तफसीर करूँ कि इसका इन्फरादी हुस्न भी नज़र आये और वह हुस्न आयतों के उस पूरे निज़ाम से पैदा होने वाले हुस्न का भी जुज़ नज़र आये जिसे फितरत कहते हैं। अगर मैंने यह फ़र्ज़ अदा न किया तो फितरत का तसव्वुर इस ज़माने में जिस हद तक मुकम्मल होना चाहिए— मुकम्मल नहीं होगा और यह एक गुनाह होगा, जिसका मुझ पे अज़ाब पड़ेगा। अगर यह फरीज़ा अदा हो, तो सफ़र क़ामयाब रहा और सब्ज़ पंखिया मिल गयी। मगर फिर सोचता हूँ कि जब अपने से जंगले की सलाखें ज़ेर न हो सकें तो इस लम्बे सफ़र में आने वाली बड़ी मुश्किलात पर क्योंकर ग़ल्बा हासिल हो सकेगा।

अपना यह मकान डुबाई में था, जिसे गंगा का पानी सेराब करता था। मगर मैंने और दरिया भी तो देखे हैं और उनसे सेराब होने वाली मिट्टी पर उगता हुआ दूसरे रंगों का सब्ज़ा भी देखा है। गंगाजल से भीगी हुई ज़मीन में जन्म लिया, जमुना से तर होने वाली ज़मीन पर होश सँभाला, अब रावी के किनारे छावनी छायी है। फिर उन सबसे आगे एक दरिया है। दरया-ए-फ़रात जिसका साहिल मौलिद भी है मिस्किन भी है और मर्जा भी। मुझसे पहले एक शख़्स गुज़रा है अनीस जो गोमती और फ़रात के बीच में खड़ा था। उसने दोनों दरयाओं को काटकर अपना एक-तीसरा दरिया निकाल लिया। मैं चार दरियाओं के जाल में घिरा हूँ। यह ऐसी सूरतेहाल है, जिससे शायद मुझसे पहले के किसी लिखने वाले को पाला नहीं पड़ा था। फिर हाल अपना यह है कि बाजू में न वह अनीस वाला ज़ोर और न उसका जैसा तीशा मगर दवाब यह देखता हूँ कि इन्हें काटकर अपना पाँचवाँ दरिया निकालूँगा। इस ख़ुदफरेबी की कोई हद है!

अनीस, नज़ीर, मौलाना मो. हुसैन आज़ाद— यह चन्द हस्तियाँ मेरा रास्ता रोकती भी हैं और मुझे रस्ता दिखाती भी हैं। नज़ीर को जब मैं पढ़ता हूँ, तो मुझे उस आयत का रिश्ता हाथ आता है जो उस ख़स्ता छज्जे के वसीले से मुझ पर उतरी थी। और 'आब-ए-हयात'— मुझे वाकई कभी-कभी यों लगता है कि उर्दू में पहला नाविल आज़ाद ने लिखा था और दूसरा नाविल मैं लिखूँगा। लेकिन यही किताब मेरा रस्ता भी रोकती है। वह ज़मनी किरदार तक जो अब बस थोड़ी-थोड़ी सतरों में बयान हुए हैं, मुझे चैलेंज करते हैं कि हम जैसा कोई जीता जागता किरदार तखलीक़ किया हो, तो सामने लाओ। उसके वे फिक़रे जो पूरे एक समाज के शहर में उतर गये हैं मुझे रोकते हैं कि ऐसी नस्र लिखी हो, तो पेश करो।

लिखने वालों की यह वह नस्ल है, जिसकी मैंने पैरवी की है और जिससे मैं बग़ावत पे भी तुला बैठा हूँ। मैं नस्र लिखना चाहता हूँ, लेकिन मो. हुसैन आज़ाद की नस्र नहीं— 'अपनी' नस्र। मेरे अफ़सानों की ज़बान पे ख़ासी वाहवाह हुई है हालाँकि मेरे अफ़सानों का जो सबसे कमज़ोर पहलू है वह यही ज़बान है। कमबख़्त यह शय तो मेरे क़ाबू में कम अज़ कम अब तक तो बिल्कुल ही नहीं आयी है। इज़हार के बने बनाये साँचों को मैंने अगर ज़रा सलीकें से इस्तेमाल कर भी लिया तो तीर क्या मारा! मैंने अपना साँचा कहाँ बनाया है? यह ख़ाम आहन मेरे हाथों में मोम नहीं बनता। इस खैबर के दरवाज़े में जब तक मेरी उँगलियाँ यों दर न आयें जैसे आटे में दर आती हैं उस वक़्त तक मैं कैसे समझ लूँ कि खैबर फतह हो गया! मुझ पर जो आयत उतरी है वह तो अपनी ज़बान भी अलग लायी थी। वह तरोताज़ा ज़बान मेरे हाफ़िज़ा से उतर गयी है। एक तरफ़ तो मैं इस ज़बान को याद करने की कोशिश कर रहा हूँ और दूसरी तरफ़ मैं यह सोच रहा हूँ कि मैंने जो चार दरियाओं का पानी पिया है, उन चारों की ख़ानी बैक वक़्त मेरी ज़बान की आहंग में क्योंकर पैदा हो सकती है!

मुझे यहाँ अपने एक और एहसास का ज़िक्र कर देना चाहिए। इस सफ़र में मैं अपने आपको अकेला भी समझता हूँ मगर अक्सर रस्तों पे यह एहसास भी होता कि कुछ और लोग भी हैं जो अपने साथ चल रहे हैं, शायद वह भी सब्ज़ पंखिया की जुस्तजू में हैं। शायद यह है नयी नस्ल का एहसास। हमसफ़री का भी एहसास और मसाब्क़त और मुक़ाबला का भी एहसास। इस नयी नस्ल और उस पुरानी नस्ल से हटकर जिनके ख़िलाफ़ मैंने अपने एहसासे बग़ावत का ज़िक्र किया है, बाक़ी जो लम्बा चौड़ा गिरोह है और जिसमें से बहुत से अब भी ज़िन्दा हैं और लिखते हैं, उन्हें इज़हार की आसानी के लिए मुर्दा नस्ल भी कहा जा सकता है। वह मेरे लिए बस इसी हद तक एक मसला है जिस हद तक मुसाफ़िर की राह में कोई गला सड़ा दरख़्त जो बीच सड़क पे पड़ा हुआ एक मसला होता है।

मैंने इस पहलू से कभी नहीं सोचा कि अगर सब्ज़ पंखिया न मिली तो क्या होगा। सब्ज़ पंखिया का एहसासे बनफसा क्या कम बड़ी दौलत है! एहसास जो इस नये अहेद का एहसास है। पिछली नस्लों ने जिस बुनियादी बात को ग़ैर अहम समझकर भुला दिया था उसे हम नये लोगों ने फिर अहम समझा है और उसकी मानवियत के इन्कशाफ की ठानी है। मुझे सब्ज़ पंखिया न मिलेगी तो और कोई हमसफ़र ढूँढ निकालेगा। यूँ भी हो सकता है और यह बात ज़्यादा जँचती है कि पूरी नयी नस्ल मिलकर सब्ज़ पंखिया ढूँढेगी और रुके हुए जहाज़ के चलने का बन्दोबस्त करेगी।

रूपान्तर : असमत नीलो अंसारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उर्दू साहित्यकार

क़ुर्रतुलऐन हैदर

की चर्चित कृतियाँ

क़ुर्रतुलऐन हैदर की कृतियों में ऐतिहासिक अहसास व सामाजिक चेतना के विकास का अनूठा सम्मिश्रण दिखता है। 'निशांत के सहयात्री' में भी यही अहसास और चेतना बहुत गाढ़ी हो गयी है

क़ुर्रतुलऐन हैदर की कहानियाँ अपनी विषय-वस्तु, चरित्र-चित्रण, तकनीक, भाषा और शैली हर तरह से उर्दू कथा साहित्य में उल्लेखनीय इजाफा मानी जा सकती है।

कथ्य और शिल्प के स्तर पर चाँदनी बेगम दरअसल एक ऐसा प्रतीकात्मक उपन्यास है जिसके कई-कई पहलू हैं; और कथानक के धागे में समर्थ कथाकार ने सबको इस तरह पिरोया है कि किसी को अलग करके नहीं देखा जा सकता।

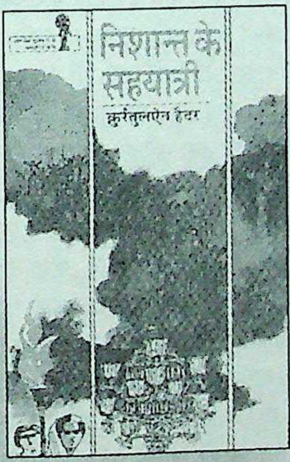

निशांत के सहयात्री
क़ुर्रतुलऐन हैदर
पृष्ठ : 356, मूल्य : 250 रुपये

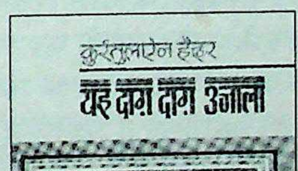

यह दाग़ दाग़ उजाला
क़ुर्रतुलऐन हैदर
पृष्ठ : 192, मूल्य : 120 रुपये

चाँदनी बेगम
क़ुर्रतुलऐन हैदर
पृष्ठ : 310, मूल्य : 200 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

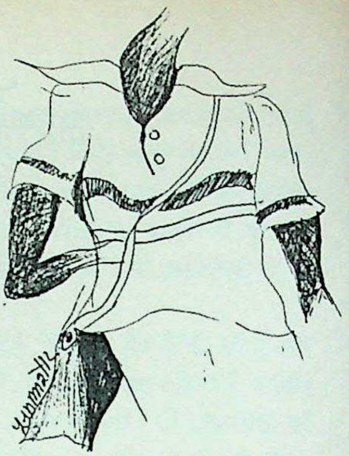

विलाप

अहमद नदीम क़ासमी

रूपान्तर : खुर्शीद आलम

बस कुछ ऐसा ही मौसम था मेरी बच्ची, जब तुम सोलह-सत्रह साल पहले मेरी गोद में आयी थीं। बकाइन के ऊदे-ऊदे फूल इसी तरह महक रहे थे और बेरियों पर गिलहरियाँ चोटी तक इसी तरह भागी फिरती थीं और ऐसी हवा चल रही थी जैसे सदियों के सूखे किवाड़ों से भी कोंपलें फूट निकलेंगी। जब तुम मेरी गोद में आयी थीं तो दीये की काली-पीली रोशनी में ऊँघता हुआ कोठा चमकने-सा लगा था और दाया ने कहा था कि हाय री, इस छोकरी के तो अंग-अंग में जुगनू टँके हुए हैं। उस वक़्त मैंने भी दर्द के ख़ुमार में अपने जिस्म के इस टुकड़े को देखा था और मुझे तो याद नहीं पर दाया ने बाद में मुझे बताया था कि मैं मुस्कराकर तुम्हारे चेहरे की दमक में अपने हाथों की लकीरों को यूँ देखने लगी थी जैसे कोई ख़त पढ़ता हो।

अगली रात जब तुम्हारे बाबा ने मौक़ा पाकर तुम्हें देखा था तो उदास हो गया था और मैंने कहा था, ''तुम तो कहते थे, बेटा हो या बेटी सब ख़ुदा की देन है, फिर अब क्यों मुँह लटका लिया है?'' और उसने कहा था, ''तू नहीं जानती न भोली औरत, तू माँ है न! तू कैसे जाने कि ख़ुदा इतनी ख़ूबसूरत लड़कियाँ सिर्फ़ ऐसे बन्दों को देता है जिनसे वह बहुत खफ़ा होता है।'' उस वक़्त मेरा जी चाहा था कि मैं तुम्हारे बाबा की आँखें उसकी खोपड़ी में से निकालकर बादामों की तरह तोड़ दूँ क्योंकि मेरी जान, वह तो तुम्हें इस तरह देख रहा था जैसे चिड़िया साँप को देखती है। वह तुम्हारी ख़ूबसूरती देखकर डर गया था, फिर उसने अपनी उम्र के सोलह-सत्रह साल तुमसे डरते-डरते गुज़ार दिये। वह अब भी डरा और सहमा हुआ, बाहर गली में बिछी हुई चटाइयों पर लोगों में घिरा बैठा है और आसमान को यूँ देख रहा है जैसे कोई उसकी तरफ़ आ रहा है।

तुम मुझ पर तो नहीं गयी थीं मेरी बच्ची, मैं तो गाँव की एक आम लड़की थी। मेरा नाक नक़्श बिल्कुल सीधा-सादा था। हाँ, तुम अपने बाबा पर गयी थीं जो बहुत ख़ूबसूरत था। वह तो अब भी ख़ूबसूरत है पर अब उसकी ख़ूबसूरती सोलह-सत्रह साल की गर्द से अँट गयी है। अब भी उसकी बड़ी-बड़ी बादामी आँखें हैं और अब भी उसके चेहरे और मूँछों के रंग में सोना है पर जब तुम पैदा हुई थी न, तो वह बिल्कुल मूरत था। तुम आयीं तो वह डर गया था मगर उस डरने से उसकी शक्ल नहीं बदली, बस ज़रा-सी बुझ गयी। तुम्हारे आने के बाद मैंने उसके मोतियों के-से दाँत बहुत कम देखे। उसके पँखुड़ी होंठ हमेशा यूँ भिंचे रहे जैसे खुले तो कुछ हो जायेगा। अभी कुछ देर पहले जब वह आया और उसने तुम्हें देखा तो मुझे ऐसा लगा जैसे किसी बहुत बड़े महल की बुनियादें बैठ रही हैं। वह यहाँ खड़े-खड़े ही एकदम अन्दर से बूढ़ा हो गया। जब वह पलटा तो मैं डरी भी कि वह गली तक पहुँचने से पहले ही ढेर हो जायेगा, मगर अभी-अभी मैंने दीवार पर से झाँका है तो वह गली में बैठा है और जमा होते हुए लोगों को यूँ डर-डरकर, चौंक-चौंककर देख रहा है जैसे उसकी चोरी पकड़ी गयी हो।

तुम जब तीन-चार साल की होकर भागने-दौड़ने लगीं तो देखने वालों को यक़ीन नहीं आता था कि मिट्टी का बना हुआ इंसान इतना ख़ूबसूरत भी हो सकता है! एक बार तुम गिर पड़ी और तुम्हारे माथे पर चोट आयी तो मैं रोते-रोते निढाल हो गयी पर तुम्हारे बाबा ने चहककर कहा था, ''ख़ुदा जो करता है ठीक करता है! हमारी रानो बेटी के माथे पर चोट के निशान ने उसकी खूबसूरती को दाग़दार कर दिया है।'' पर ख़ुदा को तो कुछ और मंजूर था। चोट का निशान तो बाक़ी रह गया, मगर यह निशान बिल्कुल नये-नये चाँद का-सा था,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लाल-लाल-सा भी और सुनहरा-सुनहरा-सा भी, जो अब मेरी जान, पीला-पीला-सा लग रहा है।

फिर जब तुम पाँच साल की हुईं तो मैंने क़ुरान-शरीफ़ पढ़ाने के लिए तुम्हें बीबी जी के पास बिठा दिया। तब पता चला कि तुम्हारी आवाज़ भी तुम्हारी तरह ख़ूबसूरत है। बीबी जी के घर की दीवारों से क़ुरान शरीफ़ पढ़ने वाली बच्चियों की आवाज़ें आती थीं तो उनमें से मेरी रानो बेटी की आवाज़ साफ़ पहचानी जाती थी। तुम्हारी आवाज़ में चाँदी की कटोरियाँ बजती थीं। ऐसी खनक कि तुम चुप भी हो जाती थीं तो तब भी चारों तरफ़ से झंकार-सी उठती रहती थी। फिर यूँ हुआ कि पहले तुम आयत पढ़ती थीं और तुम्हारे बाद तुम्हारी सहपाठियों की आवाज़ें आती थीं। यूँ जब तुम अकेली पढ़ रही होती थीं तो गली में से गुज़रने वालों के क़दम रुक जाते थे और चिड़ियों के झुंड मुंडेरों पर उतर आते थे। एक बार मज़ार साईं दुल्हे शाह जी के मुजाविर साईं हज़रत शाह उधर से गुज़रे थे और तुम्हारी आवाज़ सुनकर उन्होंने कहा था, ''यह कौन लड़की है जिसकी आवाज़ में फ़रिश्तों के परों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ रहे हैं!'' और जब तुम्हें मालूम हुआ था कि साईं हज़रत शाह ने तुम्हारे बारे में यह कहा है तो तुम इतनी खुश हुई थीं कि रोने लगी थीं।

तब यूँ हुआ कि औरतें पानी से भरे हुए बर्तन लातीं और तुम्हारी तिलावत (क़ुरान का पाठ) ख़त्म होने का इन्तज़ार करती रहतीं। तुम क़ुरान पाक बन्द करके उठतीं और 'तुफ़ैल साईं दुल्हे शाह जी' कहती हुई उन बर्तनों पर 'छु' करतीं और औरतें यह पानी अपने सगे-सम्बन्धियों को पिलातीं तो बीमार अच्छे हो जाते, बुरे नेक हो जाते, बेनमाज़ी नमाज़ी हो जाते।

उन दिनों मुझे यूँ लगने लगा जैसे तुम नूर की बनी हुई तो ख़ैर हमेशा से हो, पर अब तुम बीबी जी के यहाँ से वापस आतीं तो तुम्हारे चेहरे पर मेरी नज़रें न जम पातीं, जैसे सूरज पर नज़र नहीं जमती।

ख़ुदा और उसके रसूल के बाद तुम साईं दुल्हे शाह जी का नाम जपती रहती थीं। इसीलिए तो तुम्हारा बाबा साईं दुल्हे शाह जी के मज़ार पर सलाम भी करा लाया था।

क़ुरान शरीफ़ तुमने इतना पढ़ा मेरे जिगर के टुकड़े, कि अब भी जब चारों तरफ़ सन्नाटा और सिर्फ़ इधर-उधर से सिसकी की आवाज़ आती है। मैं तुम्हारे आसपास, तुम्हारी ही आवाज़ में क़ुरान शरीफ़ की तिलावत सुन रही हूँ। तुम्हारे होंठ तो नहीं हिल रहे, पर मैं अपने दूध की क़सम खाकर कहती हूँ कि यह आवाज़ तुम्हारी है। ज़मीन पर ऐसी नूरानी आवाज़ मेरी रानो के सिवा और किसकी हो सकती है!

एक दिन जब तुम्हारे चाचा दीन मुहम्मद की बीवी अपने बेटे के लिए तुम्हारा रिश्ता पूछने आयी तो तब मुझे मालूम हुआ कि तुम शादी की उम्र को पहुँच गयी हो। माँएँ तो बेटी के सर पर चुन्नी लेते ही समझ जाती हैं कि वक़्त आ रहा है, पर तुम्हारे बारे में तो मैं सोच ही न सकी। तुमने सोचने की मोहलत ही न दी। मैंने तुम्हारे बाबा से अपनी इस बेख़बरी की बात की तो वह बोला, ''तू तो सदा की बेख़बर है, पर मैं ऐसा बेख़बर नहीं हूँ। बस ये है कि मुझे लड़की से डर लगता है, उससे भी तो बात करो। उसने तो जैसे अपना सब कुछ मौला की राह में तज दिया है।''

तब पहली बार मुझे भी तुमसे ख़ौफ़ आया। मैंने सोचा अगर मैंने तुमसे रिश्ते की बात की तो कहीं तुम जलाल में न आ जाओ, मगर फिर उसी शाम को साईं हज़रत शाह का एक ख़ादिम (सेवक) आया और उसने बताया कि कल से साईं दुल्हे शाह का उर्स (वार्षिक उत्सव) है जो तीन दिन तक चलेगा और साईं हज़रत शाह ने ख़्वाब में साईं दुल्हे शाह जी को देखा और यह फ़रमाते सुना है कि मेरी चेली रानो को बुलाकर तीन दिन तक उससे मेरे मज़ार पर क़ुरान शरीफ़ की तिलावत कराओ, वरना सबको भस्म कर दूँगा। तुम जानती थीं बेटी कि साईं दुल्हे शाह जी बड़े जलाल वाले साईं थे। ज़िन्दगी में जिसने भी उनके ख़िलाफ़ कोई बात की उसे बस एक नज़र भर कर देखा और राख कर डाला। मरने के बाद भी उनकी दरगाह में या उसके आसपास कोई बुरा काम या बुरी बात हो जाये तो उनका मज़ार शरीफ़ सिरहाने की तरफ़ से खुल जाता है और उसमें से उनका पवित्र हाथ प्रगट होता है। बुरा काम या बुरी बात करने वाला जहाँ भी हो खिंचा चला आता है। अपनी गर्दन साईं जी के पवित्र हाथों में दे देता है और फिर वहीं ढेर हो जाता है। साईं जी का पवित्र हाथ वापस मज़ार शरीफ़ में चला जाता है और मज़ार शरीफ़ की दरारें यूँ बन्द हो जाती हैं जैसे कभी खुली ही नहीं थीं।

किसकी मजाल थी कि साईं दुल्हे शाह जी का हुक्म टालता। दूसरे दिन सुबह को हम तीनों एक ऊँट पर कुजावा (ऊँट की काठी) में बैठे थे और दरगाह दुल्हे साईं की तरफ़ जा रहे थे। मैं कुजावे के एक तरफ़ थी और तुम मेरी जान, दूसरी तरफ़ थीं और बीच में ऊँट के पालान पर तुम्हारा बाबा बैठा था। ऊँट जैसे ही उठा और चलने लगा था तो तुमने क़ुरान शरीफ़ की तिलावत शुरू कर दी थी और मेरी पाक व नेक बच्ची, मैंने अपनी आँखों से देख लिया था कि हमारा ऊँट जहाँ से भी गुज़रता था, लोग दूर-दूर से खिंचे चले आते थे। वह हमारे साथ-साथ चल रहे थे और रो रहे थे और सुब्हान अल्लाह कर रहे थे और कुजावे के ऊपर चिड़ियों और अबाबीलों और कबूतरों के झुंड के झुंड आते थे और गोता लगाकर जैसे मेरी बच्ची की आवाज़ का शरबत पीकर नाचते-तैरते हुए दूर निकल जाते थे और मैं सोचती थी कि यह हम गुनहगारों की किस नेकी का बदला है कि ख़ुदा ने हमें ऐसी बेटी बख़्शी है जो ज़मीन पर क़ुरान शरीफ़ की तिलावत करती है तो उसकी आवाज़ आसमान तक जाती है। आसमान का ख़याल मुझे यूँ आया था कि एक बार तुम्हारे बाबा ने पालान पर झुककर मेरे कान में हौले से कहा, ''ये कैसे नूरानी परिन्दे हैं, जो हमारे साथ-साथ उड़ रहे हैं! मैंने इन इलाक़ों में ऐसा परिन्दा कभी नहीं देखा कि उनके पंखों में सितारे चमकते हों। ये तो आसमानों से उतरकर आने वाले फ़रिश्ते मालूम होते हैं!'' और मेरी आँखों का नूर मेरी बच्ची, मैं, तुम्हारी अनपढ़ माँ क़सम खाकर कह सकती हूँ कि वह फ़रिश्ते ही थे। कुछ ऐसे जैसे नन्हे मुन्ने बच्चों के पंख लग गये हों और वह हवा में हुमकते फिरते हों। वह मेरी पहुँची हुई बेटी से तिलावत सुनने आये थे।

फिर जब दरगाह साईं दुल्हे शाह जी के पास हमारा ऊँट बैठा था तो जैसे तुम भूल गयी थीं कि तुम्हारे साथ तुम्हारे माँ-बाप भी हैं। तुम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मज़ार शरीफ़ की तरफ़ यूँ खिंची चली गयी थीं जैसे साईं दुल्हे शाह जी तुम्हारी अँगुली पकड़कर तुम्हें अपने घर लिये जा रहे हों। मज़ार शरीफ़ को बोसा (चुम्बन) देकर और उसकी एक तरफ़ बैठकर तुमने क़ुरान शरीफ़ की तिलावत शुरू कर दी थीं और तुम्हारी आवाज़ की मिठास चखने के लिए उर्स पर आने वाले लोग मज़ार शरीफ़ पर टूट पड़े थे। हम दोनों ने मज़ार शरीफ़ को अपनी पोरों से छुआ और फिर अपनी पोरें चूम लीं। फिर हम साईं हज़रत शाह की ख़िदमत में उनके घुटनों को छूने और करकमलों को चूमने पहुँचे थे और उन्होंने फरमाया था, ''अपनी बेटी को साईं जी के क़दमों में बिठाकर तुमने अपने अगले पिछले गुनाह माफ़ करा लिये हैं। तुम इशांअल्लाह जन्नती हो!'' यह सुनकर खुशी से हमारे साँसें फूल गयी थीं। फिर मैंने अन्दर जाकर बीवियों को सलाम किया था और तुम्हें... मेरी जान... साईं दुल्हे शाह जी और साईं हज़रत शाह और उनके घराने की बीवियों की अमानत में देकर हम दोनों यह कहकर वापस गाँव आ गये थे कि उर्स के तीन दिन गुज़रने के बाद अगले रोज़ हम अपनी इस नेमत को लेने हाज़िर हो जायेंगे जो ख़ुदा ने और उसके हबीब पाक ने हम ग़रीबों गुनहगारों को हमारी किसी सीधी-सादी नेकी से खुश होकर बख़्शी है।

ऐ मेरी बच्ची, मेरे लख़्ते-जिगर, ऐ मेरी साफ़-सुथरी रानो बेटी! फिर जब तीन दिनों के बाद हम दोनों साईं दुल्हे शाह जी के मज़ार पर गये थे तो तुम वहीं बैठी थीं जहाँ हम तुम्हें बिठा गये थे, मगर क्या यह तुम ही थीं! तुम्हारी आँखों की पुललियाँ फैल गयी थीं, तुम्हारे होंठों पर जमे हुए ख़ून की पपड़ियाँ थीं, तुम्हारे बाल उलझ रहे थे। चादर तुम्हारे सर से उतर गयी थी और अपने बाबा को देखकर भी तुम्हें अपना सर ढाँपने का ख़याल नहीं आया था। तुम्हारा रंग मिट्टी-मिट्टी हो रहा था और हमें देखते ही तुम चिल्ला पड़ी थीं, ''मुझसे दूर रहो बाबा, मेरे पास न आना अम्मा। मैं अब यहीं रहूँगी। मैं उस वक़्त तक यहीं रहूँगी जब तक साईं दुल्हे शाह जी का मज़ार नहीं खुलता और उसमें से उनका पवित्र हाथ नहीं निकलता। जब तक फ़ैसला नहीं होता मैं यहीं रहूँगी। जब तक इंसाफ़ नहीं होगा मैं यही रहूँगी। ...और मज़ार शरीफ़ खुलेगा। आज नहीं तो कल खुलेगा, एक महीना बाद, एक साल बाद, दो साल बाद सही, पर मज़ार शरीफ़ ज़रूर खुलेगा। और पवित्र हाथ ज़रूर निकलेगा। तब मैं ख़ुद ही अपने बाबा और अपनी अम्मा के क़दमों में चली आऊँगी और सारी उम्र उनकी जूतियाँ सीधी करूँगी और उनके पाँव धो-धोकर पिऊँगी। पर अभी मैं नहीं आऊँगी, अभी मैं नहीं आ सकती। मैं बँध गयी हूँ, मैं मर गयी हूँ।'' फिर तुम्हें एकदम बहुत-सा रोना आ गया था मगर तुमने अपने आँसू रोक लिये थे और तुम भीगी हुई आवाज़ में तिलावत करने लगी थीं। आस-पास खड़े हुए बीसियों लोग हमारे साथ ज़ार-ज़ार रोने लगे थे और कहने लगे थे, ''असर हो गया है, दिन-रात मज़ार शरीफ़ पर रहने से इस पर असर हो गया है।''

तुम्हारे बाबा ने फ़रियाद की थी। असर हो गया है? दिन-रात क़ुरान-शरीफ़ की तिलावत करने वाली लड़की पर कोई असर कैसे हो सकता है! और अगर तुम कहते हो कि असर हो गया है तो साईं हज़रत शाह कहाँ हैं? वह रोता हुआ साईं हज़रत शाह की तरफ़ चल पड़ा था और मैं बिलखती हुई उसके पीछे-पीछे थी। मगर हमें ख़ादिमों ने बताया था कि साईं जी तो उर्स के तुरन्त बाद एक हुजरे (कोठरी) में बन्द होकर बैठ जाते हैं और कई दिनों तक वज़ीफ़ा फ़रमाते हैं और किसी से नहीं मिलते। फिर मैंने अन्दर बीवियों के पास जाना चाहा था मगर बड़े दरवाज़े पर सेविकाओं ने बताया था कि रानो की हालत से बीवियाँ पहले ही बहुत परेशान हैं और उन्हें ज़्यादा परेशाना करना गुनाह है।

हम उजड़े-पजड़े माँ-बाप, मज़ार शरीफ़ से एक तरफ़ हटकर बैठ गये थे और रो रहे थे और लोग हमें रोता देखकर रो रहे थे कि साईं हज़रत शाह का ख़ास ख़ादिम आया था और उसने बताया था कि साईं जी को रानो की इस हालत का बड़ा दुख था और उन्होंने फ़रमाया था कि यह लड़की अचानक जिन्न-भूत के कब्ज़े में चली गयी है और साईं हज़रत शाह एक ख़ास वज़ीफ़ा (विशेष मंत्रजाप) फ़रमा रहे हैं कि यह जिन्न उतरे तो इस अमानत को इसके माँ-बाप तक पहुँचाया जाये। फिर हुक़्म हुआ था कि तुम जाओ और रानो को दरगाह शरीफ़ की निगरानी में रहने दो।

''अब तुम जाओ।'' हमारे सरों पर तुम्हारी आवाज़ आयी थी और हमने सर उठाकर देखा था कि तुम्हारी आँखें तालाबों की तरह भरी हुई थीं। ''अब तुम जाओ मेरे बाबा, जाओ मेरी अम्मा। अब तुम जाओ। मज़ार शरीफ़ ज़रूर खुलेगा। पवित्र हाथ ज़रूर निकलेगा। फ़ैसला ज़रूर होगा। फ़ैसला हो जाये तो मैं सीधी तुम्हारे पास पहुँचूँगी। साईं दुल्हे शाह जी ख़ुद मुझे तुम्हारे पास छोड़ आयेंगे। अब तुम जाओ...'' यह कहकर तुम मज़ार-शरीफ़ की तरफ़ पलट गयी थीं और तुम चलते हुए यूँ डोल रही थी जैसे कटी हुई पतंग डोलती है।

मैं तुम पर से सदके जाऊँ मेरी बेटी! हम तुम्हारे माँ-बाप इसके बाद भी बार-बार तुम्हारे पास पहुँचे मगर अब तो तुम हमें पहचानती भी नहीं थीं। हम तुम्हें पुकारते थे तो तुम हमारी तरफ़ यूँ ख़ाली ख़ाली आँखों से देखती थीं जैसे हैरान हो रही हो कि यह आवाज़ किधर से आयी है! तुम्हारी रंग मिट्टी जैसा हो गया था। तुम्हारे होंठ अकड़कर फट गये थे। तुम्हारे बालों में गर्द था और तिनके थे और टूटे हुए खुश्क पत्ते थे। एक बार जब हम तुम्हारे लिए कपड़ों का नया जोड़ा लेकर गये और ये कपड़े हमने तुम्हारे सामने रख दिये तो तुम ये कपड़े हाथ में लेकर उठीं और एक तरफ़ चल पड़ीं। तुम्हारा एक भी क़दम सीधा नहीं उठता था। फिर तुम ग़ायब हो गयी थीं। और हम खुश हुए थे कि तुम कहीं कपड़े बदलने गयी हो, मगर फिर एकदम एक तरफ़ से शोर उठा था। तुम उसी रफ़्तार से वापस आ रही थीं और तुम्हारे पीछे दरगाह शरीफ़ के कुछ सेवक थे, जिन्होंने बताया था कि तुमने नये कपड़ों का यह जोड़ा दरगाह शरीफ़ के लंगर की देग के नीचे भड़कती आग में झोंक दिया था।

तिलावत तो तुम अब भी कर रही थी मगर आवाज़ में चाँदी की कटोरियाँ नहीं बजती थीं। फिर तुम पढ़ते-पढ़ते मज़ार शरीफ़ के सिरहाने की तरफ़ झुक जाती थी जैसे कोई झिरी, कोई दरार ढूँढने की कोशिश में हो। फिर तुम टूटकर रो देती थीं और तिलावत को रोककर हौले-हौले जैसे ख़ुद को समझाती थीं... मज़ार शरीफ़ ज़रूर होगा। फिर तुम आँखें बन्द कर लेती थीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और तिलावत में मसरूफ़ हो जाती थीं।

एक बार हम साईं हजरत शाह की ख़िदमत में भी हाजिर हुए थे और अर्ज़ किया था कि जिन्न-भूत कलामे पाक पवित्र क़ुरान पढ़ने वालों के पास नहीं फटकते। दूर से बैठे हँसते रहते हैं और झूमते रहते हैं और अगर हमारी हीरा बेटी पर ऐसे नापाक जिन्न आ गये हैं जो क़ुरान शरीफ़ की तिलावत का भी लिहाज़ नहीं करते, तो ये आपकी दरगाह शरीफ़ ही के जिन्न हैं। आपके हुक़्म से उतर जायेंगे। ख़ुदा के नाम पर, रसूले पाक के नाम पर, पीर दस्तगीर के नाम पर, साईं दुल्हे शाह जी के नाम पर हमारे साथ मज़ारे शरीफ़ पर चलिये और ये जिन्न उतारिये और साईं हज़रत शाह ने फ़रमाया था कि हम जिन्न तो उतार देते मगर तुमने ठीक कहा, यह कोई बड़ा पापी जिन्न है और पापी जिन्न हमारे कब्ज़े में नहीं हैं। हम यहाँ दुआ कर रहे हैं, तुम घर जाकर दुआ करो। हमारा वज़ीफ़ा जारी रहेगा।

जब हम टूटे-फूटे वापस आ रहे थे तो बीवियों की एक बूढ़ी सेविका ने मुझे एक तरफ़ ले जाकर बताया था कि उर्स के तीसरे दिन साईं हज़रत शाह मज़ार की तरफ़ आये थे तो तुम्हारी बदनसीब बेटी ने मज़ार शरीफ़ पर से गोल-गोल लहरिये पत्थर उठाकर झोली में भर लिये थे और चीख़ -चीख़कर कहा था कि साईं मज़ारे शरीफ़ से पवित्र हाथ तो जब निकलेगा, निकलेगा अगर तुम एक क़दम भी आगे बढ़े तो मैं साईं दुल्हे शाह जी के दिये हुए इन पत्थरों से तुम्हारा नाश कर दूँगी। ख़ादिम तुम्हारी बेटी को पकड़कर मारने-पीटने के लिए आगे बढ़े थे तो साईं जी ने उन्हें रोककर कहा था कि नादानो यह लड़की नहीं बोल रही है, इसके अन्दर का पापी जिन्न बोल रहा है। जब तक यह मज़ारे शरीफ़ पर क़ाबिज़ है हमें और हमारे ख़ानदान के किसी मर्द-औरत को इधर नहीं आना चाहिए वरना क्या ख़बर में जिन्न क्या कर बैठे!

फिर एक रात दरगाह शरीफ़ का एक ख़ादिम आया कि तुम्हारी बेटी तुम्हें बुला रही है। हम रातोंरात गिरते-पड़ते वहाँ पहुँचे तो तुम मज़ार शरीफ़ के पायताने लेटी हुई थीं। चिराग़ की रोशनी में हमने देखा कि तुम्हारी नज़र टिक गयी थी और तुम्हारे होंठ ज़रा-ज़रा से हिल रहे थे। ज़ाहिर है तुम उस वक़्त भी तिलावत ही कर रही थीं। फिर जब मैंने तुम्हारा सर अपनी गोद में रखा और तुम्हारे बाबा ने तुम्हारा हाथ अपने हाथों में लेकर रोना शुरू कर दिया तो बहुत ही कमज़ोर आवाज़ में तुमने कहा था, "मेरी अम्मा मेरे अब्बा, कौन जाने मज़ार शरीफ़ क्यों नहीं खुला! इंसाफ़ तो नहीं हुआ पर चलो फ़ैसला तो हो गया। चलो मैं ही गुनहगार सही। साईं दुल्हे शाह जी, आपने तो बड़ा इन्तज़ार कराया। अब क़यामत के दिन जब हम सब ख़ुदा के सामने पेश होंगे... ख़ुदा के सामने....! ख़ुदा...!" इसके बाद तुम चुप हो गयी थीं और तब से चुप हो।

फिर हम तुम्हें यहाँ घर में उठा लाये और जब अभी-अभी सवेरे साईं हज़रत शाह का ख़ास ख़ादिम साईं जी की तरफ़ से तुम्हारे लिए कफ़न लाया तो तुम पर से उतरा हुआ जिन्न जैसे तुम्हारे बाबा पर आ गया... उसने कफ़न हाथ में लिया और उसे उस चूल्हे में झोंक दिया जिस पर तुम्हें नहाने के लिए पानी गर्म किया जा रहा था। अब मेरे लख़्ते जिगर, मेरी नेक और पाक, मेरी साफ और सुथरी रानो बेटी! आओ मैं तुम्हारे माथे के बुझे हुए चाँद को चूम लूँ। देखो कि बकाइन के ऊदे ऊदे फूल महक रहे हैं और बेरियों पर गिलहरियाँ तने से चोटी तक भागी फिर रही हैं। और ऐसी हवा चल रही है जैसे सदियों के सूखे किवाड़ों से भी कोंपलें फूट निकलेंगी और चारों तरफ़ तुम्हारी तिलावत की गूँज है और साईं हज़रत शाह के भेजे हुए कफ़न के जलने की बू अब तक सारे घर में फैल रही है और मेरे अन्दर इतना बहुत-सा दर्द जमा हो गया है जैसे तुम्हें जन्म देते वक़्त जमा हुआ था।

एफ-58, सेक्टर-40,
नोएडा-201301 (उ.प्र.)
मो.- 09820811320

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

उर्दू साहित्यकार

अली सरदार जाफ़री

की चर्चित कृति

अली सरदार जाफ़री की बड़ी कविताओं में बड़ी-दीवारी चित्रकारी का आनन्द है। उनके शब्द स्पष्ट और शक्तिशाली हैं, उनकी लय ऊँची और जोश से भरी हुई है; निश्चित रूप से उनकी शैली उपदेशकों जैसी है, इसलिए कि वे जनसमूह में सुनाने के लिए भी कही गयी हैं। और यह उनका गुण है, अवगुण नहीं।

मेरा सफ़र (कविता संग्रह)
अली सरदार जाफ़री
पृष्ठ : 156, मूल्य : 115 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

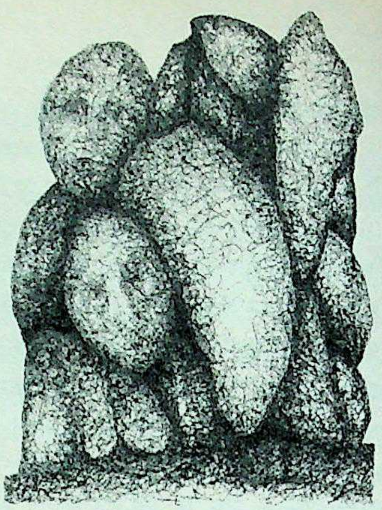

सीप और समन्दर

मुहम्मद मंशा याद

रूपान्तर : सुरजीत

हम दोनों अपनी-अपनी जगह जाग रहे थे, मगर इस ख़याल से कि एक के जागने की फ़िक्र में दूसरे की नींद न उड़ी रहे, ख़ुद को सोया हुआ प्रकट कर रहे थे। इस बात का भी दोनों को अन्दाज़ा था कि हम अपनी-अपनी जगह नींद के जुगनू और यादों की तितलियाँ पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन लगता था, नींद आज गेट से अन्दर ही नहीं आयी थी। किसी शरीर बच्चे की तरह कॉलबेल का बटन दबाकर बाहर ही से दौड़ गयी थी। अचानक उसने इस यक़ीन के साथ कि मैं जाग रहा हूँ, पूछा, ''वह मुझे किस रिश्ते से बुलायेगा?''

''पता नहीं!'' मैंने जवाब दिया, ''आयेगा, तो बुलायेगा न!''

''तो क्या इसकी भी गुंजाइश हैं... '' उसने सहमी हुई आवाज़ में पूछा, ''कि वह न आये...?''

''हाँ... हो सकता है, वह शहर में आये, लेकिन हमारे पास न आये। अपनी खाला के यहाँ चला जाये।''

''ऐसा न कहिये...'' उसकी आवाज़ और धीमी पड़ गई ''मेरे दिल में हौल उठता है।''

''देखो, हमें ऐसी सूरते-हाल के लिए पहले से तैयार रहना चाहिए।''

''मगर आप तो कह रहे थे, आपकी उससे बड़ी अंडरस्टैंडिंग है।''

''हाँ, कभी थी।'' मैंने जवाब दिया, ''यों भी बड़ा मूडी और जज़्बाती क़िस्म का लड़का है। ज़रा-सी किसी बात या नाखुशगवार ख़याल से उसका इरादा बदल सकता है।''

''आपको इसीलिए नींद नहीं आ रही?''

''नहीं।'' मैंने कहा, ''नींद न आने की वजह इतने अरसे बाद उसे देखने की एक्साइटमेंट है।''

''कभी-कभी मुझे एहसासे-जुर्म होने लगता है...'' वह उदास लहजे से बोली, ''कि मैंने आपको सबसे जुदा कर दिया।''

''ऐसा मत सोचा करो।'' मैंने दिलासा दिया, ''काश, मैं तुम्हें तुम्हारे क़ीमती अठाईस बरस वापस लौटा सकता!''

''आप मिल गए हैं, सारे दुःख भूल गयी। अगर वे भी मिल जाये, तो मेरी ज़िन्दगी सँवर जाये।''

''वह तुम्हें कैसे मिल सकता है! उसकी अपनी माँ मौजूद है!''

''मैं भी तो उसकी माँ हूँ! वह मेरी गोद से भी तो जन्म ले सकता था।''

''ले सकता था, लिया तो नहीं।''

''हाँ, लिया तो नहीं!'' उसकी आवाज़ में उदासी थी। कुछ देर ख़ामोशी छायी रही। फिर वह बोली, ''आपने बताया था, उसकी सूरत-शक़्ल आपसे मिलती है।''

''भई आयेगा, तो ख़ुद ही देख लेना। अब सो जाओ।''

''बच्चों का इन्तज़ार करना कितना अच्छा लगता है!'' वह बोली, ''इस वक़्त तो सो रहा होगा ना!''

''ज़ाहिर है, उसकी मेरी तुम्हारी तरह दिमाग़ ख़राब नहीं है।''

''कल इस वक़्त वह यहाँ ऊपर के कमरे में सोया होगा— हमारे पास।''

''देखो!'' मैंने कहा, ''हमें बहुत होशमन्दी और होशियारी से काम लेना होगा। अगर वह अपनी खाला के यहाँ या होस्टल में रहना पसन्द करेगा, तो हमारा इसरार करना बेकार होगा। उसे यह एहसास भी नहीं होना चाहिए कि हम उसे अपने पास रखकर अपनी तनहाई और वंचना का समाधान करना चाहते हैं, और न ही वह यह समझे कि वह हम पर बोझ बनेगा। तुम उस पर न तो ग़ैर-ज़रूरी तवज्जो देना, न ही उसे नज़रअन्दाज़ किये जाने का शक़ हो। मुझे यक़ीन है, वह एक बार यहाँ आ गया, तो हम उसे अपने पास रखने में कामयाब हो जाएँगे।''

''आपको यक़ीन है?''

''हाँ, चलो अब सो जाओ।''

और वह प्रकट में सो गयी लेकिन मुझे मालूम था, वह कहाँ-कहाँ भटक रही होगी!

इतने बरसों पहले जब वे हमारे किरायेदार थे, और वह कॉलेज में पढ़ती थी, उसका एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसा ऑपरेशन हुआ था कि वह माँ बनने की योग्यता से हमेशा के लिए वंचित हो गयी थी, लेकिन डॉक्टर उसके अन्दर से ममता तो नहीं निकाल सकते थे! वह शारीरिक तौर पर स्वस्थ हो गई मगर हर समय उन बच्चों को याद करके रोती रहती, जिन्हें कभी उसके गर्भ से जन्म लेना था। सपनों में उसे उनकी सूरतें नज़र आतीं। क्या पता उसने उनके नाम भी रखे हुए हों, मगर बताती न हो!

हर औरत एक माँ होती है कि यह औरत की मंज़िल है और प्रसूत की दर्दें उसे ज़िन्दगी के खुशगवार-तरीन पलों की तरह याद रहती हैं। वह अपना एक सुरक्षित और ख़ूबसूरत घर भी इसीलिए बनाना चाहती है कि उसके गुड्डे-गुड़ियाँ उसमें सुख-चैन से रहें और वह मुहब्बत भी शायद इसीलिए करती है कि माँ बन सके और मर्द की अधीनता भी इसीलिए स्वीकार करती है कि उसके बच्चों को संरक्षण मिले, मगर उसमें शुरू ही से माँपन इतना हावी था कि वह अपने बूढ़े-बाप की देखभाल और छोटे भाई की परवरिश भी एक माँ की तरह कर रही थी।

वे ऊपर की मंज़िल में रहते थे। बड़ी बहनों की शादियाँ हो चुकी थीं। और हालाँकि अभी वह दसवीं जमात में पढ़ती थी, लेकिन उसने एक सुघड़ औरत की तरह घर को सँभाला हुआ था। मुँह-अँधेरे जागती, मशीन चलाकर ऊपर की साझी टंकी में पानी भरती, गीज़र चलाती, फ़र्श साफ करती, गुसलख़ाने धोती, अब्बा को वुज़ू कराकर मस्जिद भेजती। मुझे अपने बिस्तरे में लेटे-लेटे पता चलता रहता कि वह क्या कर रही है!

अम्मी उससे बहुत प्रभावित थीं। ऐसी काम करने वाली और सेवा करने वाली लड़कियाँ दुनिया के सारे जवान लड़कों की अम्मियों को पसन्द होती हैं। यों भी उसमें सिवाय उसकी नाक के अन्य कोई शारीरिक ऐब नहीं था। उस नाक के मैंने बहुत-से नाम रखे हुए थे। चीनी, फीनी, मेंढक और एंटी-यूनानी नाक। रंगत सफ़ेद थी। चेहरा चाँद की तरह गोल, जैसे ज्यामीतिक परकार से बनाया गया हो, लेकिन उसमें एक अजीब कशिश और आकर्षण था, जो बयान से बाहर था, जिसे सिर्फ़ महसूस किया जा सकता था।

मेरा ख़याल है, दुनिया के मर्द सारी उम्र अन्दर से खिलन्दड़ा लड़का बने रहते हैं, मगर लड़कियाँ होश सँभालते ही औरत बन जाती हैं और अपने मामले बहुत जल्दी समझने लगती हैं। कुदरत ने कमज़ोर को अपनी रक्षा के कई गुर सिखाये होते हैं। शेर और चीते को शिकार करने के इतने तरीके मालूम नहीं होते होंगे, जितने शिकार होने वाले छोटे जानवरों को अपने बचाव के मालूम होते हैं। अगर ऐसा न होता, तो दुनिया कमज़ोरों से कब की ख़ाली हो चुकी होती। मैं उसे हर वक़्त छेड़ने और सताने लगा और उसे फाँसने के मरदाना तरीके आज़माने लगा, मगर वह बहुत होशियारी से मेरे हर हमले को ख़ारिज कर देती। मैं कहता, आज बहुत ख़ूबसूरत लग रही हो या यह लिबास तुम पर बहुत फ़ब रहा है, तो वह लजाने या इतराने की बजाय सुनसान आँखें उठाकर और बेरंग-सी मुस्कराहट होंठों पर लगाकर मेरा रस्मी शुक्रिया अदा करती और चली जाती। मैं अपने तमाम मर्दाना ख़म के साथ तिलमिला कर रह जाता।

एक बार बड़ी मुश्किलों से आपा ने उसे फ़िल्म देखने पर रज़ामन्द किया। लेकिन मुझे बड़ी मायूसी हुई जब वह हिरो-हिरोइन का रोमांस शुरू होते ही सो गयी और उस समय जागी, जब इन्टरवल के समय रोशनी हुई। इस दौरान में मैंने आपा से शिक़ायत की कि ख़्वाहमख़्वाह उस पर टिकट के पैसे जाया किये तो वे कहने लगीं, ''कोई बात नहीं। घर और स्कूल का काम करके थक जाती है बेचारी!''

वह क़रीब रहते हुए भी दूर भागती रही और मेरी तलब और फतहमन्दी की ख़्वाहिश बढ़ती रही और बढ़ते-बढ़ते एक रोज़ सचमुच की मुहब्बत में तब्दील हो गई लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। उसके अब्बा ने कहा, ''यह बीमार है। इसीलिए बी.ए. का इम्तहान नहीं दे सकी। इसे पेट में दर्द रहता था। अब पता चला है कि ट्यूमर है। ऑपरेशन होगा।''

''ठीक है, ऑपरेशन के बाद सही!'' अम्मी ने कहा, ''आप हाँ कर दें। हमें शादी की इतनी जल्दी नहीं है।''

उसके अब्बा रुँधी आवाज़ में बोले, ''अगर बच गयी तो आपकी अमानत, वरना कहा-सुनी माफ़ कर दीजिएगा, बहन!''

रात को मैं पहली बार बेधड़क उसके कमरे में घुसा गया, ''तुमने आज तक बताया क्यों नहीं कि तुम बीमार हो? क्या हम कुछ नहीं लगते थे? तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकते थे?'' जवाब में वह देर तक रोती रही। फिर रोते-रोते अब्बा को आवाज़ दी, ''अब्बा, इनके लिए कुछ ले आएँ। पहली बार आए हैं।''

भाई घर पर नहीं था। उसके अब्बा मेरे मना करने के बावजूद गिरते-पड़ते बाहर चले गये। उनके जाने के बाद मैं देर तक बोलता रहा, ''ऑपरेशन है, तो क्या हुआ! होते रहते हैं ऑपरेशन... मैं तुम्हें शहर के बेहतरीन अस्पताल ले जाऊँगा। तुम चन्द रोज़ में बिल्कुल अच्छी हो जाओगी। मैं सिर्फ़ तुमसे शादी करूँगा। अगर तुम मर गयीं, तो कभी शादी नहीं करूँगा। उम्र भर तुम्हारा सोग मनाऊँगा।''

ऑपरेशन से एक रोज़ पहले उसने भाई के साथ घर से अपना अटैचीकेस मँगवाया। वह सीढ़ियाँ उतर रहा था कि अटैचीकेस खुल गया और उसके कपड़े और अल्लम-गल्लम निजी चीज़ें सीढ़ियों पर बिखर गयीं। मैं समेटने में उसकी मदद करने लगा। अचानक मेरे हाथ में कॉपी का वह पन्ना आ गया, जिस पर मैंने दो बरस पहले उसके लिए शेअर लिखा था। उसने और पता नहीं, मेरी कितनी छोटी-छोटी चीज़ें जमा कर रखी थीं।

मैंने बहुत समझाया। बहुत इसरार किया, मगर वह न मानी। उसका कहना था, वह एक बोझल पत्थर है। अपने साथ मुझे भी क्यों ले डूबे! यही मुश्किल मुझे पच्चीस-छब्बीस बरस की गृहस्थ ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद पेश आयी। वह किसी तरह मान ही नहीं रही थी। कहती, ''वह बहुत खुश है!'' पर मैं जानता था, वह घुल-घुलकर मर जाने वाली औरत है। अन्दर की वीरानियाँ अब उसके चेहरे से भी पढ़ी जा सकती थीं। और शायद वह रज़ामन्द न होती, अगर मैं उसकी कमज़ोर रग पर हाथ न रख देता। मैंने उसे लालच दिया था कि गोगी भी हमारे साथ रहेगा।

उसने उसे नहीं देखा था, लेकिन वह उसका यों ज़िक्र और इन्तज़ार करती, जैसे वह उसका अपना बेटा हो, और वीकएंड पर आने वाला हो।

उसने फ़ाइन-आर्ट्स में डिप्लोमा करने के बाद एक प्राइवेट फ़ार्म में डिज़ाइनर की हैसियत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से नौकरी कर ली थी। यह मकान उसे फ़ार्म की तरफ़ से अलॉट हुआ था। वालिद का इन्तक़ाल हो गया था और भाई अपने बीवी-बच्चों के साथ शहर के अन्दर अपने ससुराल में रहता था। उसने घर का पिछला हिस्सा यतीम बच्चों की देखभाल करने वाली एक संस्था को दे रखा था और स्वयं भी उसकी सक्रिय सदस्या थी। शादी के बाद मैंने अपनी ट्रान्सफ़र लाहौर करवा ली थी, और उसी के मकान में रहने लगा था। इस दौरान में मैं सिर्फ़ एक बार अपने घर रावलपिंडी गया था और बहुत क्षुब्ध होकर लौटा था। बड़े बेटे ने दरवाज़ा खोला था, मगर सलाम और कलाम किये बग़ैर एक तरफ़ चला गया था। मैं अपने ही घर में अजनबी था। मेहमान की तरह ख़ामोशी से जाकर ड्राइंगरूम में बैठ गया। बीवी अपने कमरे से बाहर नहीं आयी। बेटी किचन में थी। वह भी माँ के डर से वहीं बैठी रोती रही। सिर्फ़ बहू ने कुशल-मंगल और चाय-पानी का पूछा। वह ग़ैरों से आयी थी, मगर अपनों के ग़ैर बन जाने पर अपनी लग रही थी। मुझे गोगी का इन्तज़ार था। बहू ने बताया था, वह खेलने गया हुआ है। सात बजे तक आ जाता है। मुझे एक-एक लम्हा गुज़ारना मुश्किल हो रहा था। जी चाहता था, उठकर बरवर्जीख़ाने में जाऊँ और बेटी को लिपटाकर प्यार करूँ, मगर उसका सामना करने की हिम्मत न हुई। लड़कों की और बात होती है!

सात बजे के क़रीब किसी ने ज़ोर का धक्का देकर दरवाज़ा खोला। यक़ीनन यह गोगी ही होगा। यह उसकी आदत थी। लगा, जैसे दरवाज़े से वह सीधा दिल में दाख़िल हो गया हो। वह मुँह से सीटी बजाता खुश-खुश आ रहा था। मुझे देखकर ठिठक गया। दरवाज़ा बन्द कर के कुछ देर खड़ा सोचता और डोरमेट से जोगर साफ करता रहा। फिर आहिस्ता-आहिस्ता सर झुकाये मेरे क़रीब वाले सोफ़े पर आकर बैठ गया। उसने भी सलाम नहीं किया था, लेकिन मुझे बुरा नहीं लगा। उसका मेरे पास आ बैठना ही बहुत था।

''पढ़ाई कैसी चल रही है?'' मैंने पूछा।

''ठीक है।'' उसने संक्षिप्त-सा जवाब दिया।

कुछ देर हम यूँ ही चुपचाप बैठे रहे। फिर मैंने कहा, ''आगे क्या करना चाहते हो?''

''इंजीनियरिंग।''

''वह तो लाहौर ही में हो सकती है। वहाँ आ जाओ!''

उसने कोई जवाब न दिया। दाँतों से नाख़ून खुरचता रहा। मैंने कहा, ''बहुत खुला मकान है।''

''पहले एफ़.एस.सी. कर लूँ।''

''हाँ, कर लो। मुझे यक़ीन है, तुम्हारे बहुत अच्छे मार्क्स आएँगे। फिर आ जाना। जब तुम चाहो।''

''अच्छा।''

''... वह भी यही चाहती है। तुम्हारा बहुत ख़्याल रखेगी। जब चाहो, आकर मिल जाया करना।''

''रिज़ल्ट के बाद देखूँगा।''

''ठीक है। मैं अब चलता हूँ। फ़्लाइट का वक़्त हो रहा है।''

मैं उठ खड़ा हुआ। जेब से कुछ रकम निकाल कर दी। उसने पैसे ले लिए। मेरा दिल यक़ीन और इत्मीनान से भर गया। बच्चों को माँ की मुहब्बत ही की नहीं, बाप के स्नेह और संरक्षण की भी ज़रूरत होती है।

''कल चले जाइयेगा। क्या खाना भी नहीं खाएँगे!'' बहू ने मुझे रोककर पूछा। मैंने ज़रूरी काम का बहाना किया। उसके सलूक और स्वभाव की तारीफ़ की और दुआ देकर चल दिया।

गोगी ने मेरे लिए टैक्सी रुकवाई। मेरा ब्रीफकेस उठाकर टैक्सी के अन्दर रखा। और हाथ हिलाकर मुझे रुख़सत किया। उसके इम्तहान में तीन-चार महीने बाक़ी थे, मगर इम्तहान मुल्तवी होता रहा और रिज़ल्ट आते-आते आठ-दस महीने लग गये।

वह बहुत अच्छे नम्बरों से पास हुआ था। बहू का ख़त आया था। वह सर्टीफ़िकेट्स बनवाता और काग़ज़ात मुकम्मल करवाता रहा है और अब अगले जुमे को लाहौर आयेगा, लेकिन साथ ही यह स्पष्ट भी कर दिया था, कि अगर न पहुँचे, तो परेशान न हों, क्योंकि आंटी उसे भेजना नहीं चाहतीं। शायद इस शर्त पर इजाज़त दे दें कि वह होस्टल में या अपनी खाला के पास रहेगा।

इधर वह उसे एक नज़र देखने के लिए मरी जा रही थी। हर रोज़ नयी-नयी चीज़ें ख़रीदती। हर वक़्त उसी के बारे में पूछती रहती। कपड़े कैसे पहनता है? नाश्ते में क्या लेता है? क्या कुछ शौक़ से खाता है? संगीत कैसा पसन्द करता है? उसने उसके कमरे का फर्नीचर, कालीन और नये परदे ख़रीदे। छोटा-सा कलर टेलीविज़न और मिनी डेक। कई तरह की डिस्को कैसेट्स, रंगा-रंग टाइयाँ और बहुत-से रेडीमेड कपड़े। मैं उसे बार-बार समझाता कि वह अपने जज़्बात पर क़ाबू रखे। पहले उसे आ तो जाने दे, मगर वह मेरी एक न सुनती।

''अगर वह अपनी खाला के यहाँ चला गया, तो?'' उसने मुझे चौंका दिया। मैंने घड़ी देखी। सुबह के चार बजने वाले थे।

''क्या हो सकता है?'' मैंने जवाब दिया।

''मैं मर जाऊँगी।''

''पागल न बनो!'' मैंने कहा, ''अगर इसी तरह करती रहीं, तो आ भी गया, तो चला जायेगा। आदमी कई बार ग़ैर-मामूली ध्यान और मुहब्बत से भी बिदक सकता है, और उसके दिल में तो तुम्हारे लिए नफ़रत भी हो सकती है।''

''नफ़रत?'' वह जैसे रो-सी पड़ी। फिर बोली, ''ठीक है। करता रहे नफ़रत, मगर यहाँ रहे मेरे पास। मैं उसके लिए खाना पकाऊँ। उसके कपड़े धोऊँ। उसके जूते पालिश करूँ। बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए।''

''तुम उसकी सौतेली माँ हो या आशिक़?''

''माँ से बड़ा और सच्चा आशिक़ और कौन हो सकता है?''

''अच्छा, अब सो जाओ।''

''अब क्या सोना! अज़ान हो रही है।''

उसने उस रोज़ नमाज़ के बाद दुआ माँगी, ''या अल्लाह! आज सारी गाड़ियाँ, बसें और हवाई जहाज़ ख़ैर-ख़ैरियत से अपनी-अपनी मंज़िल पर पहुँचें। सारी माँओं के बच्चे घरों को सलामत लौटें।''

हमें यह मालूम न था कि वह किस ट्रेन, बस या फ़्लाइट से आयेगा। आयेगा भी या नहीं, मगर हमने दिन निकलते ही उसकी राह देखना शुरू कर दी।

तरह-तरह के खानों से फ्रिज भरा पड़ा था, मगर वह सुबह से किचन में घुसी हुई थी। विराम-विराम से जाकर ज़ीने की खिड़की से बाहर झाँक आती। कई बार बहाने-बहाने से गेट तक भी हो आयी थी। मैं प्रकट में शान्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नज़र आने की कोशिश कर रहा था, मगर दिल में हलचल मची हुई थी। वक़्त बिताना कठिन हो रहा था। आँखें दीदा-ए-याकूब बनी हुई थीं। ज्यों ही किसी रिक्शा या टैक्सी की आवाज़ सुनाई देती, हम चौंक जाते। कोई किशोरायु लड़का सड़क पर आता-जाता या सामने के पार्क में टहलता नज़र आता, तो वह पुकारती, "इधर आइए, देखिए, वह तो नहीं है?"

ज्यों-ज्यों वक़्त गुज़रता जा रहा था, हमारी बेक़रारी में इज़ाफ़ा होता जा रहा था। दो बज गये थे। खाने का वक़्त हो गया था। आज हम एक साथ खाना खाना चाहते थे, मगर उसका कुछ पता न था।

चार बजे के क़रीब सामने के छोटे-से पार्क में उसे एक नौजवान लड़का दिखायी दिया, जो छोटे बच्चों के साथ क्रिकेट खेल रहा था, लेकिन क़रीब ही एक तरफ़ अटैचीकेस रखा था। वह ज़ीने की खिड़की से उसे देखकर चिल्लाई, "मेरा ख़्याल है, वही है!"

"अगर वही है, तो ख़ुद आ जाएगा।" मैंने कहा, "तुम परेशान न हो।"

"अरे, कितना ज़ालिम लड़का है!" वह बोली,"इतनी दूर से उन बच्चों के साथ क्रिकेट खेलने आया है!"

मैंने खिड़की के पास जाकर देखा और तसदीक की, "हूँ, वही है।"

"वही है न? देखा, मैंने पहचान लिया!" वह सबसे पहले ईद का चाँद देखने वाले किसी बच्चे की तरह खुशी से चिल्लाई। फिर बोली, "अब वापस तो नहीं जा सकता न?"

"नहीं।... आ जाएगा।" मैंने तसल्ली दी। "ख़ुद को अन्दर आने के लिए तैयार कर रहा है।"

आख़िर उसने खेल छोड़ दिया और अटैचीकेस उठाकर घर की तरफ़ चल पड़ा। मैं उतरकर नीचे आ गया, मगर वह वहीं खड़ी रही, जैसे उसे डर हो, वह गेट तक आकर पलट न जाये। फिर वह कामेंट्री करने वालों की तरह मुझे बताने लगी, "गेट पर खड़ा है। ...अब गेट खोल रहा है। ...अटैचीकेस दीवार पर रखकर फूलों की क्यारियों का मुआयना कर रहा है। ...अब अन्दर आ रहा है।"

"तुम नीचे आ जाओ और जब तक मैं न बुलाऊँ, सामने न आना। वह ख़ुद तुम्हारे बारे में पूछे और मिले, यही अच्छा लगेगा।"

मैं ड्राइंग-रूम में अख़बार लेकर बैठ गया और वह किचन में व्यस्त हो गयी। प्रकट में हम बेपरवाह और व्यस्त थे, मगर परिन्दे पकड़ने वालों की तरह हमारा ध्यान उसी पर था। ड्राइंग-रूम का दरवाज़ा खुला था। उसने हौले से खटखटाया। खाँसकर मेरे खँखारने की नकल उतारी और अन्दर आ गया।

उसने आदत अनुसार न सलाम किया, न हाथ मिलाया। यों भी हमारे बीच एक अजीब-सी झिझक बाधक हो गयी थी। अटैचीकेस एक तरफ़ रखकर ख़ामोशी से खड़ा कुछ देर कमरे की चीज़ों का जायज़ा लेता रहा। फिर शेल्फ पर रखी किताबों के टाइटल पढ़ने लगा।

"घर में सब ठीक है?" मैंने पूछा।

"जी।"

"रेलगाड़ी से आये हो या फ़्लाइट-कोच से?"

"रेल-कार से।"

"क्या लेट थी?"

"नहीं।"

कुछ देर हम ख़ामोश रहे। फिर वह बोला, "वह कहाँ हैं?"

"कौन?" मैंने जान-बूझकर सवाल कर डाला।

"वह... अम्मी।"

मैं उसके मुँह से यही शब्द सुनना चाहता था और मुझे उससे इसी क़िस्म के रवैये की अपेक्षा थी। मैंने उसे आवाज़ दी। वह कहीं क़रीब ही दरवाज़े से लगी खड़ी थी और आ गयी और उसे यों देखने लगी, जैसे पहचानने की कोशिश कर रही हो। उसने सलाम किया! उसने दुआ दी और सिर पर हाथ फेरा। मेरा दिल इत्मीनान से भर गया कि एक मुश्किल पड़ाव बख़ूबी तय हो गया। फिर उसने उसे कोल्ड-ड्रिंक ला दिया। कुशलता पूछी और स्टोर-रूम की तरफ़ चली गयी।

"रेल-कार लेट नहीं थी, तो घर तलाश करने में मुश्किल पेश आयी?" मैंने पूछा।

"नहीं।" उसने गिलास से बर्फ़ के टुकड़े निकालकर ट्रे में रखते हुए जवाब दिया।

"तो क्या खाला के घर चले गए थे?"

"नहीं, अब्बू।"

"फिर इतनी देर क्यों कर दी?"

उसने इधर-उधर देखा, जैसे यक़ीन कर लेना चाहता हो कि कोई और सुन या देख तो नहीं रहा और बोला, "भैया को मालूम था, मुझे जाना है, मगर वह मिले और पैसे दिये बग़ैर आज सवेरे ही काम पर चले गये। अम्मी नहीं चाहती थीं कि मैं यहाँ आऊँ। किराया क्या देतीं! भाभी के पास जितने पैसे थे, उन्होंने दे दिये। उनसे बमुश्किल रेल-कार की टिकट आयी।"

उसके बग़ैर पैसों के सफ़र करने की यातना और पैदल चलने की तकलीफ़ का अन्दाज़ा कर के दुःख की एक आँधी-सी उठी और व्यथा के गर्दो-गुबार से मेरा सारा अन्दर भर गया। मैं अभी सोच ही रहा था कि क्या कोख के बग़ैर भी कोख की टीस महसूस की जा सकती है कि वह हाथ से बनी कुछ तस्वीरें लेकर आ गयी और उसकी गर्द साफ करने लगी। फिर एक तस्वीर अलग करके दिखाते हुए बोली, "इसे पहचानते हैं?"

"कौन है यह?"

"मेरा बेटा।"

"तुम्हारा बेटा?"

"हाँ, जिसे मेरे कोख से..." उसकी आवाज़ भर्रा गयी।

यह तो नहीं कहा सकता था कि वह हू-ब-हू गोगी का चेहरा था, मगर वह उसके सिवा और किसी की तस्वीर भी नहीं थी। हम हैरानी से कभी तस्वीर को और कभी एक-दूसरे को देखने लगे।

सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-15

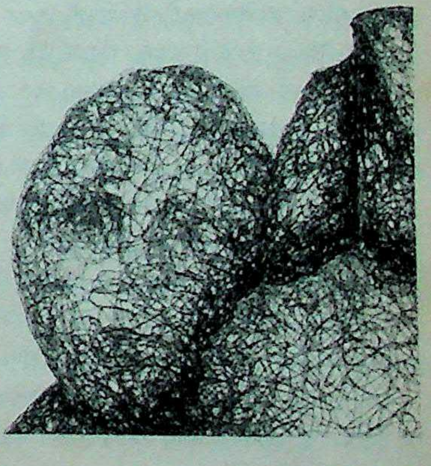

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

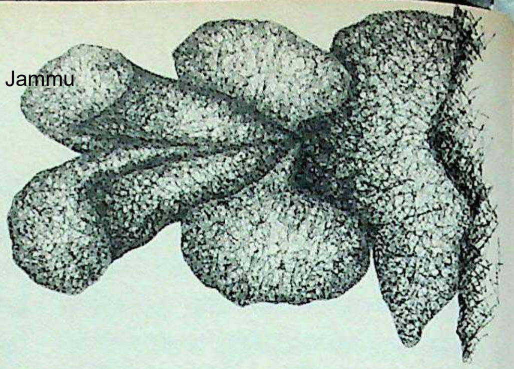

झड़ी

गुलज़ार

बारिश की झड़ी भी कुछ इस तरह लगी थी मुम्बई में, जैसे दामू को पीने की झड़ी लगी थी। पाँच रोज़ से लगातार दिन-रात दारू पिये जा रहा था और पाँच रोज़ से आसमान भी बरसे ही चला जा रहा था। लगता था दोनों को चढ़ी हुई है, और कोई रुकने को तैयार नहीं था। ज़िद्द-सी लगी हुई थी।

दामू का हमेशा से यही हाल था। दामू ऐसा ही था। जब पीने पर आता तो कोई उसे रोक नहीं सकता था। बीस-बीस दिन, एक-एक महीना, सुबह-ओ-शाम— दारू बस दारू। बीवी लक्ष्ये को रोकती, जो उसे दारू देता था। तो दामू पता नहीं कहाँ-कहाँ से निकाल लेता था। बिस्तर के नीचे बिछी तलाई में से, दाल के डिब्बे में से, छत के पाटिये से— और दम भी बहुत था पीने का। पीता था तो ख़ुश रहता था। औरों की तरह लड़ता-झगड़ता नहीं था। और जब छोड़ देता था तो तीन-तीन, चार-चार महीने, कभी छह-छह महीने तक हाथ नहीं लगाता था। तब उसके जैसा आदमी न होता बस्ती में। उसके जैसा बाप नहीं, पति नहीं। उसके जैसा वर्कर भी नहीं।

लेकिन वो तो मौसम की बात है! इस बार तो पहली बारिश के साथ ही शुरू हो गया— और बारिश भी, क्या बारिश! सौ साल में ऐसी बारिश नहीं हुई थी।

पहला दिन गुज़रा, बरदाश्त किया। हमेशा की तरह मुम्बई की लोकल ट्रेनें बन्द हुईं। चलीं, फिर बन्द हुईं। दूसरे दिन बाहर के ट्रक आने बन्द हुए। तेल तरकारी की आमद बन्द हुई। भाव-ताव ने खरगोशों की तरह कान खड़े कर लिये। शहराहों पर ट्रकों की क़तारें रुकती नज़र आने लगीं। बारिश मुसलसल जारी थी एक ही रफ़्तार से, और उसी रफ़्तार से दारू जारी थी।

तीसरे दिन से ख़तरे के आसार दिखाई देने लगे। बारिश, बारिश के साथ हवा। गली में पानी भरना शुरू हुआ। बीवी बाहर का सामान उठा-उठाकर खोली में रखने लगी। बालिश्त भर की खोली, जिसमें दामू, उसकी बीवी सोभा और बेटी किशनी, जिसकी अगले महीने शादी होने वाली थी। वो ही नहीं समाते थे, बीवी ने बकरी को भी अन्दर ले लिया। दामू चिढ़ गया।

''अबे तेरी भैन की... बकरी को अन्दर लाने की क्या जरूवत (ज़रूरत) थी?''

''बाहर खड़ी कब तक भीगती रहती?''

''अबे इतना मोटा ऊन का कोट पहन रखा है इसने। दो घण्टे भीग नहीं सकती?''

''दो घण्टे कहते हो! दो दिन हो गये हैं पानी पड़ते। आज तो गली भी भर गयी और नाला इतना ज़ोर से बह रहा है! मुझे तो लगता है पुनिया की झोंपड़-पट्टी सब जाएगी पानी में।''

दामू चुप हो गया। दाएँ हाथ से नमक चाटा थोड़ा-सा और बाएँ हाथ से आधा गिलास दारू का गटक गया। नौसादर सीने में जा लगा। भट्टी वाले को गाली दी, ''साला, इतना नौसादर डालने लगा है दारू में। लगता है बैटरी का तेज़ाब डाल दिया।''

सोभा ने कोई जवाब नहीं दिया। बकरी को एक तरफ़ बाँध के किशनी से बोली, ''उठ बेटी— ये फ़र्श का सामान थोड़ा उठा के ऊपर रख दे। तख़्त पे डाल दे। लगता है पानी थोड़ा तो भरेगा खोली में। बारिश तो बन्द होने की नहीं— और तेज़ हो गयी...''

उसने बात पूरी भी नहीं की थी कि गली में एक शोर उठा।

''लगता है झोंपड़ी गयी पुनिया की!''

सोभा ने दरवाज़े पर जाकर देखा। मुक़ादम की छत पूरी की पूरी फिसल के गली में आ पड़ी थी। लोग भागे उसे उठाने के लिए। लेकिन अब क्या फ़ायदा, बजाये गली से भरने के, पानी सीधा ऊपर से भरने लगा— आसमान भी ज़िद् में था। 'किशनी ने जाना चाहा', लेकिन सोभा ने रोक दिया, ''तू बैठ। अगले महीने लगन है। कहीं हाथ पैर तोड़ के आ गयी तो...''

कुछ और कहते सोभा निकल गयी। दामू का जी चाहा बेटी से कोई बात करे। अब वही तीनों थे खोली में। दामू, किशनी और बकरी।

''काँदा है घर में बेटी? एक काँदा काट के देना। नमक डाल के।''

किशनी चुपचाप काँदा काटने लग गयी। दामू ने खिड़की में रखी बोतल उठाई और फिर से गिलास भर लिया।

''मटका से पानी भी दे दे बेटी।''

बग़ैर कुछ कहे किशनी ने मग भरके रख दिया। आधा गिलास दारू, आधा गिलास पानी! किशनी लौट गयी थी लेकिन दामू ने अपना काँपता हुआ हाथ किशनी के सर पे रखा, जो कुछ देर हवा में लहराता रहा। मुख़ालिफ़ हवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में उड़ते पंछी की तरह, और उसने दुआ दी, "तू फ़िक्र नहीं करना बेटी। बोत शान से तेरा लगन करूँगा। पच्चीस हज़ार की खोली, पच्चीस हज़ार का कपड़ा गहना, पच्चीस हज़ार तेरे मरद को दूँगा। पूरा एक लाख लेकर आऊँगा। सब तेरे लगन में ख़र्च कर दूँगा। एक लाख ज़्यादा हो गया क्या? चल पचास हज़ार लाऊँगा।"

पच्चीस हज़ार बार, ये बात वो नशे में दोहरा चुका था— और हर बार सोभा फटकार देती थी, "कहाँ से लाएगा? रेस में जाएगा क्या? कि चोरी करेगा?"

हर बार सोभा बोलती ज़रूर थी— और वो भी हर बार पीने के बाद एक बार तो अपने अन्दाज़ से ज़रूर किशनी के सर पे हाथ रख देता था— और यही कहता था, "तू फ़िक्र मत कर..."

किशनी काँदा और नमक रख के सामान हटाने लग गयी। पानी अब खोली के अन्दर आना शुरू हो गया था और किचन वाली छत से बाक़ायदा नीचे रखी बालटी बज रही थी। बकरी जो इतनी देर बैठी हुई थी फिर खड़ी हो गयी।

सोभा बहुत देर तक नहीं आयी तो किशनी देखने को निकली। वो भी आधे घण्टे के लिए गुल हो गयी। दामू को भी सामान की फ़िक्र हुई। पहले तो उसने अपनी एक लीटर दारू सँभालकर ऊपर रख दी। जो दाल के डिब्बे में छुपा के रखी थी वो अलग। फिर पानी का एक बड़ा वाला जग भर के रख लिया। फिर कपड़े लत्ते वाली दो पेटियाँ, उठाकर तख़त पर रख दी। तीसरी पेटी बहुत भारी थी। घसीटने में पैर पे लग गयी। वो वहीं छोड़ दी।

बकरी बिलकुल कोने में घुस के खड़ी हो गयी, जैसे नमाज़ में हाथ बाँधे खड़ी हो। एक डिब्बे में कुरमुरे भरे हुए थे। थोड़े जेब में भर लिये। थोड़े मुट्ठी में भर के दामू फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गया। खोली में पानी भरना शुरू हो गया था।

इस बार सोभा लौटी किशनी नहीं। साड़ी उठा के घुटनों से ऊपर बाँध ली थी। चिल्ला रही थी, "देखो आज घर में खाना पकाना तो नहीं हो सकता। नीचे मलिये का होटल,आधा पानी से भर गया। लोग बाग ऊपर वाले गैरिजों में भाग रहे हैं।"

नशे में था लेकिन याद था। "मुक़ादम का क्या हुआ? घर तो भर गया होगा?"

"बेचारा अभी तक सामान उठाकर ऊपर पहुँचा रहा है। हीरा, गोपाल, सुलेमान सब लगे हैं। लेकिन क्या करें? बूढ़ों बच्चों को देखें कि सामान देखें?"

सोभा खाने-पीने का सामान उठा उठाकर ऊपर रखती जा रही थी। पाँव-वड़ा लायी थी। वो बना रही थी दामू के लिए, और कह रही थी, "कितने बच्चे पैदा करते हैं मुहल्ले वाले! एक-एक साइज़ के दस-दस बच्चे मिलते हैं। शुक्र है अपनी एक ही है!"

"तेरा पेट नहीं गिरने लगता तो इधर भी लाइन लगी होगी अब तक।"

सोभा ने भी गर्दन मार के कहा, "भगवान है ना बचाने वाला!... लो खा लो।"

दामू ने बाजू से पकड़ लिया।

"वो क्या तेरे सगे वाले हैं?"

"अब हाथ छोड़ो।" सोभा ने डपट के कहा, "और यहाँ से निकलने की तैयारी करो। नीचे देखो, कितना पानी भर रहा है।"

सोभा ने दो पेटियों के ऊपर खुर्ची (कुर्सी) रखी थी। दामू धीरे से उठ के, उसके ऊपर चढ़ गया।

"इतना ऊँचा तो तेरे सगे वाला भी नहीं आ सकता। पानी क्या आएगा?"

"लुढ़क मत जाना। यहाँ उठाने वाला कोई नहीं है।"

"तू कहाँ जा रही है?"

"गैरिज वाले छप्पर में। ज़रा हाथ बँटा दूँ। किशनी भी वहीं है।"

"वो कब आएगी?"

"ज़रा पानी थमे तो सब लोग लौटेंगे।"

लेकिन इस बार कोई नहीं थमा। न बारिश, न दामू। गली के पानी का बहाव बढ़ता ही गया। नाला दरिया हो चुका था। मुक़ादम का छोटा लड़का पानी में गिरा और ग़ोते खाता बह गया। कई लोग दौड़े लेकिन वो हाथ नहीं आया। इस दौड़ में कुछ लोग ज़ख़्मी भी हुए। बहुत से लोगों का ख़्याल है कि वो जहाँ पानी का भँवर बन रहा था, वहाँ कोई 'मेन होल' खुला था और मुक़ादम का लड़का उसी में खिंच गया।

घरों में बिजली चली गयी थी या बन्द कर दी गयी थी। शॉर्ट सर्किट होने का ख़तरा था। शाम होते-होते पानी के साथ-साथ शहर अँधेरे में डूबने लगा।

ऊपर के दोनों तीनों गैरिजों में छह फुट तक पानी भर गया। जिन गाड़ियों से मरम्मत के लिए इंजन निकले हुए थे उनके ढाँचे क़ब्रों की तरह पानी पर तैर रहे थे। छत के पास, सामान के लिए बने खाँचों से सामान पानी में फेंककर कुछ लोग उन खाँचों में घुस गये थे। अब जब तक बारिश न थमे— और पानी न उतरे, उनके नीचे उतरने का कोई इमकान नहीं था।

जो निकल सके निकल गये, और दूर बिल्डिंगों की छतों पर, हस्पतालों के बरामदों में, स्कूलों के कमरों में जाकर पनाह ले रहे थे। किशनी हस्पताल के एक बरामदे में घुसी बैठी थी। उसे किसी ने ख़बर नहीं दी, सोभा को लोगों ने पानी में डूबते देखा था। कुछ कहते हैं, किसी साँप ने डस लिया, जो कई जगह पानी में तैरते नज़र आ रहे थे।

शाम ढलने से पहले दो नौजवान लड़कों ने कमर में रस्सा बाँधकर दामू की खोली तक पहुँचने की कोशिश की। लेकिन अन्दर दाख़िल न हो सके। उनकी गर्दन तक पानी आ चुका था। बकरी दरवाज़े पर उलटी अटकी हुई थी। मर चुकी थी। दीवार के पास का अण्डर करंट (निचला बहाव) बहुत तेज़ था। पीछे की खिड़की पानी में डूब चुकी थी। दामू ने किसी तरह बरतनों वाला टेबल तख़त पर खींच कर खुर्ची (कुर्सी) उसके ऊपर खींच ली थी। कुछ बरतन पानी के ऊपर तैर रहे थे। कुछ बह गये। बारिश और पानी के शोर से कान फट रहे थे। लड़कों ने बहुत आवाज़ें दीं दामू को, लेकिन वो एक हाथ में बोतल पकड़े, दूसरे हाथ में एक लम्बी लकड़ी से पानी पर तैरते टमाटर और खीरे पकड़ रहा था। जैसे कोई मछलियों को घेर रहा हो, और हँस रहा था। बाहर निकलने की, न उसने सुनी, न कही, और शायद सोची भी नहीं। वो अभी तक पानी के ऊपर था— और आसमान को ज़िद्द लगी थी, यह झड़ी कौन पहले बन्द करता है!

बोस्कियाना, पाली हिल, बान्द्रा, मुम्बई-50
फोन - 022-26469957

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

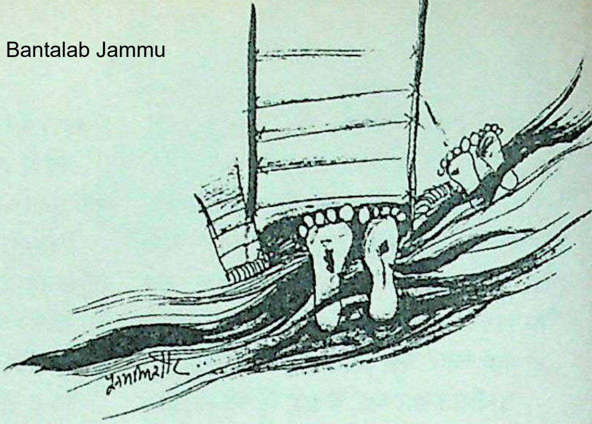

दो दोस्त

मसऊद मुफ़्ती

अनुवाद : सुरजीत

वे वे दोनों दोस्त थे। न जाने क्यों!... मगर थे।

उनमें से एक पक्का शराबी था और दूसरा पक्का नमाज़ी। फिर भी दोनों दोस्त थे। शायद इसलिए कि दोनों इंसान थे। देखिए न! इंसान तो हम सब हैं, लेकिन अगर वे हम-आप जैसे होते, तो दोस्त ही क्यों बनते! एक दूसरे को घूरते रहते, या गालियाँ देते। ख़ैर, छोड़िए, इन बातों को। मोटी बात यह है कि नमाज़ी उसे शराब पीने से नहीं रोकता था, और शराबी उसे नमाज़ पढ़ने पर नहीं टोकता था। नमाज़ी में ख़ुदा-बीनी का घमण्ड न था और शराबी में जहाँ-बीनी का ग़रूर न था। न एक को अर्शी सामीप्य का दावा, न दूसरे को ज़मीनी ज़हानत पर फ़ख्र। शायद दोनों को एहसास था कि दोस्ती और संगीत तो सिर्फ़ इस दुनिया तक है। आगे तो अपनी-अपनी क़ब्र ही है न! जिसमें मुनकर-नक़ीर को ख़ुद ही जवाब देना होगा। बस जैसा जवाब ज़ेहन में है, उसके मुताबिक़ अपनी-अपनी ज़िन्दगी गुज़ारते रहो और दूसरे का ठेका न लो।

दरअसल यह दोस्ती बचपन ही में शुरू हो गयी थी, जब दोनों नाबालिग़ थे, नासमझ थे और बेरंग थे। एक पर शराब का रंग न चढ़ा था, दूसरे पर पाकीज़गी का साया न पड़ा था। दोनों हमजमात भी न थे, सिर्फ़ हमउम्र थे, और वह भी नावाक़िफ़ियत के फ़ासलों के आर-पार।

एक दिन स्कूल के ग्राउंड में चार लड़के एक लड़के को तंग कर रहे थे। कभी बाल खींचते, कभी धक्का देते। कभी उसके गिर्द घेरा डालकर नाचने लगते। वह भागने की कोशिश करता, तो घसीटकर फिर घेरे में ले लेते। एकाध धौल भी जमा देते। उन चारों का गिरोह बे-राहरवी के लिए बदनाम था, मगर चारों असर-रसूख वाले अमीर लोगों और स्मगलरों के बेटे थे। इसलिए सज़ा और प्रताड़ना से बचे रहते थे, क्योंकि भारी फीसों और उजले कपड़ों वाला स्कूल पाकिस्तानी समाज की भरपूर अलामत था।

स्कूल के कई लड़के दूर-दूर से तमाशा देख रहे थे। कई-एक तरस भी खा रहे थे, मगर तरस पर यह भय छाया था कि कहीं ख़ुद भी निशाना न बन जाएँ। न जाने कैसे वह संयोग हुआ कि दो भिन्न दिशाओं से दो लड़के एक ही समय मज़लूम को छुड़ाने मैदान में कूद पड़े। थोड़ी धींगामुश्ती हुई। वे चार शरारती धौंस से धमका रहे थे और ये दो प्रतिरोधक हमदर्दी से उबल रहे थे। दोनों जज़्बों में कोई मुक़ाबला मुमकिन न था, अस्तु चार पर तीन ग़ालिब आ गये और वे शिकार को छुड़ाकर बरामदे की ओर ले चले।

बेसाख़्ता प्रतिक्रिया की यह अकस्मात वारदात उनका पहला संयोगवश परिचय था। यह नैतिक दुस्साहस उनकी आपसी शनाख़्त बन गयी और इंसानी हमदर्दी की साँझी किरण उनकी दोस्ती में बदल गयी। तालीम इकट्ठी चलती रही। चेहरे पर मसें फूटीं, तो अन्दर तबीयतों के साँचे उभरने लगे। एम.ए. करते-करते एक प्रफुल्लिता-सी चखने लगे, दूसरे को वज़ू में मज़ा आने लगा। अन्ततः डिग्रियाँ मिलीं तो दोनों ज़िन्दगी के रेले में बिखर गए। फिर ख़त, फोन और कभी-कभार की मुलाक़ात के सिलसिले जारी रहे और दोनों ने एक दूसरे की शादियों पर ख़ूब भंगड़े डाले।

एक बार मुलाक़ात हुई, तो एक कहने लगा, ''यार, तुम्हारे बारे में ख़बर सुनी है। क्या यह सच है?''

''तो सुन ली तुमने भी...? चलो, अच्छा हुआ। हम तो फारिग हुए जल्दी से।''

''मगर हुआ क्या था जो साल भर बाद ही तलाक़ हो गयी?''

''यार, वह बहुत अच्छी बीवी थी!''

''अच्छी थी, तो तलाक़ क्यों दे दी?''

''मेरा मतलब है, मुझसे कुछ ज़्यादा ही अच्छी थी। मुझे पीने न देती थी कि पीना हराम है।''

''कमाल है, तुमने मुझसे तो ज़िक्र किया होता! शायद मैं उसे कायल कर सकता। कि पीने के लिए 'हराम' का शब्द इस्तेमाल नहीं हुआ, बल्कि यह अपने ज़्यादा बुरे असरों की वजह से मना किया गया है।''

''देखो, मेरा उसूल यह है कि पीने की बात सिर्फ़ पीने वालों से करता हूँ, और तुम तो कहीं अगली ज़िन्दगी में जन्नत में जाकर पीने वाले बनोगे। तो मैं— क्या उस वक़्त तक तुम से बात का इन्तज़ार ही करता रहता! और फिर यार, मुझे वहाँ तुमसे बात करने के लिए घुसने कौन देता? इसलिए ख़ुद ही फ़ैसला कर लिया।''

उसके बाद एक की औलाद बढ़ती रही। दूसरे के जाम बढ़ते रहे, हालाँकि एक बार 1977 में दोस्त ने फोन पर ख़बरदार भी किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था कि प्रधानमंत्री भुट्टो ने शराब पर पाबन्दी लगा दी है!

"अरे मियाँ!" वह हँसकर बोला, "यह पाबन्दी तो मुल्ला को खुश करने वाली रिश्वत है। भुट्टो ख़ुद पीने वाला है। वह दूसरों का जाम नहीं रोकेगा। बस न पीने वालों की तसल्ली के लिए दिखावा करेगा।"

फिर गली-कूचों, दुकानों, बाज़ारों, रेस्तोराँओं और होटलों में पाबन्दी चलती रही और तहखानों में जाम चलते रहे। जनरल ज़िया-उल-हक़ की हुकूमत आयी तो कानून और पाकीज़गी पर तख़्त की वफ़ादारी हावी होने लगी। वफ़ादार के हाथों में चकाचौंध जाम भी किसी को नज़र न आता था और बेवफ़ा या आज़ाद मनुष्य पर बिन पिये ही जाम की तोहमत लगने लगी। सरकारी कश्ती में सवार होने वाले शराबी के शराबी रहे। हाथ से जन्नत न गयी और रोषाधीन लोगों को न शराब मिली, न जन्नत!

एक दिन नमाज़ी का फोन आया, "यार, एक मुनासिब रकम का चेक तो भिजवा दो!"

"ख़ैरियत?"

"बस अपनी ज़कात (धर्म-कर) दे रहा हूँ। तुम भी शामिल हो जाओ तो लेने वाले का ज़्यादा भला हो जाएगा।"

"किस को दे रहे हो?"

"बहुत अच्छा दारुल-लूम है। अपनी मस्जिद को व्यापक कर रहा है। पैसे इकट्ठे करने की ज़िम्मेदारी मुझ पर आ पड़ी है, क्योंकि मैं मस्जिद कमेटी में हूँ।"

"तो तुम ही ज़्यादा दे दो न! ढाई फ़ीसदी की हद पार करने पर कोई फाँसी नहीं चढ़ाता। मैं अकसर यह हद पार कर जाता हूँ और अभी तक ज़िन्दा हूँ।"

"किसको देते हो?"

"सिर्फ़ एक अदारे को। ईधी फाउंडेशन को!"

"तो इस दफ़ा दो अदारों को दे दो!"

"ऊहूँ... कई बार दो चेक भी आगे-पीछे देता हूँ, मगर दोनों ही उसी को देता हूँ। देखो, तुम जब मस्जिद में नमाज़ पढ़ोगे और कोई नमाज़ियों पर गोली चलाकर तुम्हें ज़ख्मी कर देगा, तो सिर्फ़ ईधी की एम्बुलेन्स तुम्हें अस्पताल पहुँचाएगी। और कोई तुम्हारी मदद को नहीं आयेगा। इस्लामी जमहूरिया (लोकतन्त्र) पाकिस्तान की हुकूमत भी नहीं आयेगी। और अगर कभी मैं नशे में सड़क पर गिर गया, तो हुकूमत तो पूछ-ताछ के लिए अदालत में ले जायेगी, मगर कोई भी सवाल पूछे बग़ैर सिर्फ़ ईधी मुझे अस्पताल तक ले जायेगा।... इसलिए तुम मारने वालों को ज़कात देते हो और मैं बचाने वालों को देता हूँ।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है। इसलिए मेरा चेक जिधर जा रहा है, उसे जाने दो। दूसरा चेक तुम्हें भिजवा रहा हूँ। अपने चेक के साथ यह भी ईधी को भेज दो।"

अरसे बाद कारोबारी व्यवस्तताएँ दोनों को एक शहर में ले आयीं। शाम के क़रीब पहला दूसरे से मिलने गया। हाथ मिलाए। कहकहे, हा-हू, हा-हा!"

"सादिक!" मेज़बान ने नौकर को आवाज़ दी, "देखो, व्हिस्की का एक ही गिलास लाना। साहब नींबू-पानी, या शरबत लेंगे।"

बूढ़ा नौकर दोनों गिलास रखकर मुड़ने लगा, तो मेज़बान ने कहा, "और ध्यान रखना। अज़ान हो, तो साथ वाले कमरे में जाएनमाज़ बिछाकर साहब को बता देना।"

"मगर जी... वह... जाएनमाज़ तो घर में है ही नहीं, क्वार्टर से अपनी ले आऊँ?"

"हा हा-हा हा!" मेज़बान ने कहकहा लगाया, "फिक्र न करो। मैं अभी-अभी लाया हूँ। गाड़ी से निकाल लो। मुझे पता था कि आज नमाज़ी आयेगा।"

वह मुड़कर जाने लगा तो वह फिर बोला, "सादिक, यह जब भी आएँ, इसे ख़ुद ही बिछाना, लपेटना और सँभालना। मुझे न तंग करना।"

दो-तीन चढ़ा चुका तो गिलास उठाकर बोला, "देखो मियाँ, मेरी शाम की संगत यह है। बुरी लगे, तो आने का वक़्त बदल लो। मैं भी इसी की वजह से तुम्हें शाम को मिलने नहीं आ सकूँगा। सोचकर बता देना, कब आया करूँ? जब कहोगे, सिर के बल आया करूँगा।"

"बकवास मत करो। मैं शाम ही को आऊँगा और इसी तरह तुम्हारे साथ बैठूँगा। यह साबित करने के लिए कि तुम तुम हो, मैं मैं हूँ।"

फिर यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहा। वह अकसर शाम को उसके घर मिलने जाता, तो सादिक बड़ी सहृदयता और सेवा-निष्ठा से मेज़ दोबारा साफ करता और सलीके से दोनों को अपने-अपने पेय-पदार्थ पेश करता। थोड़ी देर बाद बड़ी ज़िम्मेदारी से जाएनमाज़ बिछाता और आकर बड़े आदाब से कहता, "जी, अज़ान हो रही है।"

एक दिन वह अज़ान सुनकर ख़ुद ही साथ वाले कमरे में चला गया, तो सादिक अभी जाएनमाज़ बिछा रहा था। बिछा चुका, तो उसके दोनों हाथ पकड़ कर चूमे और अपनी आँखों से लगाए, "ख़ुदा आपका भला करे जी! आप आते हैं, तो आपके सजदे से इस घर की किस्मत जाग जाती है!"

और फिर अपनी आँखों से श्रद्धा के आँसू पोंछने लगा।

"सादिक, तुम कब से साहब के साथ हो?"

"अरसा हो गया जी। आधी जवानी यहीं गुज़री।"

वह हँसा, "और इस सारे अरसे में साहब को पिलाते रहे हो?"

"क्या करता जी! उन्हें मेरे हाथ का गिलास पसन्द है, और फिर मेहरबान भी तो बहुत हैं। मेरी शादी उन्होंने करायी। फिर तीन बच्चों को तालीम दिलाते हुए स्कूल से कॉलेज में पहुँचा दिया है।"

उसने पसन्दीदगी से सिर हिलाते हुए वैसे ही कहा, "फिर तो तुम बहुत खुश होगे यहाँ?"

"खुश तो बहुत हूँ जी! बस, एक ही ग़म है।"

"वह क्या?"

"जी, हमारे साहब नमाज़ नहीं पढ़ते, तो अल्लाह की रहमत कैसे आयेगी यहाँ!"

वह बेअख़्तियार हँस पड़ा, "तुमने पूछा नहीं। वे क्यों नहीं पढ़ते?"

"कई बार पूछा जी! कहते हैं, नमाज़ पढ़ने वालों ने पाकिस्तान में ख़ुदा की खलकत का क्या हश्र कर दिया है, जो तुम मुझे भी उधर लगाना चाहते हो! कहते हैं, बस यही अच्छा है कि तुम पढ़ते हो। मेरे लिए भी दुआ कर दिया करो कि ख़ुदा मुझे बीमारी और मुहताजी से बचाये और चलते-फिरते ही ले जाये। मैं पढ़ूँगा, तो सिर्फ़ इसी एक दुआ के लिए। अगर तुम मेरे

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए यह दुआ माँगते रहोगे, तो मुझे इबादत से छुट्टी मिली रहेगी।''

''ओए सादिक!'' दूसरे कमरे से आवाज़ आई ''एक और गिलास बना लाओ।''

वक़्त इसी तरह गुज़रता रहा।

दोनों बड़े अफ़सोस से सुन रहे थे, ''हमारे अपने गाँव में हुआ है जी! सादिक सामने खड़ा धीरे-धीरे बोल रहा था, ''मैं इस दफ़ा छुट्टी पर गया, तो घर वालों ने मुझे बताया कि बीच चौराहे पर खड़े होकर उसने अपने आपको आग लगा ली।''

''मगर क्यों?''

''ग़रीबी क्यों नहीं पूछती जनाब! बस भागने के रास्ते बताती रहती है।''

फिर वह ब्यौरा बताता रहा, ज़्यादा बच्चे... छोटे लड़के... बड़ी लड़कियाँ... घूरने वाले ज़ोरावर... सुनने वाले उनकी सुनते। उस ग़रीब की कौन सुनता! वग़ैरा। वह सुनाता रहा। यह सुनते रहे।

तब दोनों दोस्तों ने फ़ैसला किया कि कल सादिक के साथ उसके गाँव जाएँगे और मरने वाले के घर वाले से मिलकर देखेंगे कि उनकी क्या मदद की जा सकती है! अगले दिन वे गये भी, मगर बच्चों की माँ ने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

''सादिक भाई। मैं तेरी मिन्नत करती हूँ, इनको वापस ले जा। गाँव में कार वालों ने बच्चों का बाप छीन लिया। अब शहर के कार वाले कहीं उनकी माँ भी न छीन लें।''

उस समय तो दोनों निराश लौटे, मगर बाद में सादिक द्वारा वे दोनों मिलकर ख़ामोशी से उस ख़ानदान का आर्थिक पोषण करते रहे। इस प्रकार पुरानी दोस्ती में एक नयी संगत बन गई जो काफ़ी अरसा चलती रही, मगर उससे अगली संगत जो उभरी, वह कभी उनके सपने में न थी।

वह शाम दोनों पर क़यामत की तरह टूटी।

गिलास उसके सामने पड़ा था, मगर वह पीना जैसा भूल ही गया। दोस्त की आवाज़ धीमी और उदास थी। उसके शब्द लड़खड़ा रहे थे। लहजे में मायूसी थी, क्योंकि आज डॉक्टर ने आख़िर तसदीक कर दी थी कि उसे कैंसर है, जो काफ़ी बढ़ चुका है।

वे दोनों काफ़ी देर तक बातें करते रहे। नीची आवाज़ में। बग़ैर हँसी-मज़ाक के। ख़ामोशी के लम्बे-लम्बे विरामों से। भय, आशंका, दिलासे, उम्मीदें बार-बार उभरते-डूब जाते। फिर उभरते। कभी ख़म ठोंककर खड़े हो जाते, कभी लड़खड़ाने लगते। बरसों पुराने सम्बन्धों में एकदम नया विषय, बिल्कुल नया अन्दाज़े-गुफ़्तगू। भ्रम-मूलक भविष्य से बेचैन, आशा-निराशा का नया धुँधला रिश्ता... और सबसे बढ़कर नये मरीज़ की एकदम नयी सोच। 'क्यों?' के गिर्द घूमती हुई। वह बार-बार कह उठता, ''न जाने ख़ुदा ने मेरे साथ यह क्यों किया! मैंने कब उसकी अवज्ञा की थी? उम्र भर अपना तन मारता रहा, अपना मन मारता रहा। अपनी ख़्वाहिशें मारता रहा। अपना आपा मारता रहा। क्या इसीलिए अब वह मुझे इस तरह धीरे-धीरे हलाक़ करेगा, जैसे बिल्ली चूहे को खेल-खेलकर मारती है!''

और जब वह चला गया, तो दूसरा दोस्त गुमसुम-सा बैठा देर तक घूँट-घूँट पीता रहा और कई गिलास चढ़ाकर मदहोश हो गया।

अगले दिन वह बहुत देर से उठा। बेहद सुस्ती और काहिली से वह देर तक नाश्ता करता रहा। सादिक बरतन उठाने आया, तो वह उसकी ओर देखे बग़ैर झुके हुए सिर ही से कहने लगा, ''सादिक, तुम्हारे नमाज़ी साहब को कैंसर हो गया है। जब तुम नमाज़ पढ़ा करो, तो उनकी सेहत के लिए भी दुआ किया करो।''

सादिक विस्मित-विमूढ़ रह गया— बिल्कुल निश्चल। उसकी समझ में न आया कि क्या कहे! ख़ास तौर पर जब साहब भी सिर झुकाये बैठे थे। कुछ लम्हों बाद सँभला, मगर साहब की ख़ामोशी देखकर वापस पलटा, तो झुके हुए सिर से आवाज़ आई ''बरतन सँभाल लो तो जाएनमाज़ बिछा देना। मैं भी उस बेचारे के लिए दुआ कर लूँ।''

''जी... इस... वक़्त?'' सादिक कई मंज़िला हैरत से हकलाकर बोला।

दोनों हाथों से मेज़ पर दोहत्थड़ मारकर एकदम उठते हुए चिल्लाया, ''अहमक आदमी, दुआ का कोई वक़्त होता है?''

सादिक भागता हुआ कमरे से निकल गया।

उस दिन के बाद वह कभी-कभार एकाध नमाज़ पढ़ने लगा, मगर उन दिनों जब वह दोस्त के साथ अस्पताल जाता था, उसे ज़्यादा तक़लीफ़ की ख़बर मिलती, या शाम की मुलाक़ात में वह ज़्यादा मायूसी की बातें करता। एक दिन ऐसी ही मुलाक़ात में सादिक ने मेहमान के लिए जाएनमाज़ बिछाई तो मेज़बान भी साथ शामिल हो गया और उसके कन्धे पर हाथ मारकर ख़ुशदिली से कहने लगा, ''तुम नमाज़ियों की दुआओं से तो अल्लाह मियाँ बोर हो जाते होंगे। तौबा, तौबा! दिन में पाँच बार ख़ुदा को वही दुआएँ सुननी पड़ती हैं, मगर हम शराबियों की आवारा दुआ कभी-कभार हौले से आसमान से जा टकराये, तो अल्लाह मियाँ विराइटी ही समझकर उसे कबूल कर लेता है। इसलिए मैं तुम्हारे साथ शामिल नहीं हो रहा, बल्कि तुम मेरे साथ शामिल हो रहे हो। चलो, उठाओ हाथ और बाँधो नीयत।''

दुआएँ चलती रहीं। दुआओं की चीख़-पुकार गाढ़ी होती गयी। मर्ज़ की गिरफ़्त फैलती गयी। तक़लीफ़ के हमलों की शिद्दत बढ़ती गयी। मर्ज़ अपनी जगह कष्टदायक, मगर इलाज़ उससे कहीं अधिक कष्टदायक था। कैमोथैरापी से बाल झड़ने लगे। धीरे-धीरे नाक-नक़्शा और हुलिया बिगड़ने लगा। मन में खिन्नता के मरगूले उठने लगे, मगर मरीज़ बड़ा ही धैर्यवान निकला। दुनिया के सामने न आह करता, न शिक़ायत। कोई तबीयत की पूछता, तो मुस्कराकर कहता, ''अल्लाह का शुक्र है!'' बल्कि एक दफ़ा तो डॉक्टर का इलाज़ भी बन्द कर दिया कि अगर ख़ुदा को यही मंजूर है कि मुझे लाइलाज़ मर्ज़ लग जाए, तो मैं इलाज़ क्यों करवाऊँ, दवाइयों से इज़ाफ़ी तक़लीफ़ क्यों बढ़ाऊँ! बस अल्लाह की रज़ा का स्वागत करते हुए सब्र से मौत का इन्तज़ार क्यों न करूँ, मगर घर वालों के आग्रह पर फिर इलाज़ शुरू हो जाता और वह हँसकर कहता कि अगर तुम लोग अपने आपको धोखा देना चाहते हो तो चलो, मैं भी इस धोखे में शरीक़ हो जाता हूँ। शुरू-शुरू में अचानक ख़बर सुनकर जो उसकी पहली प्रतिक्रिया ख़ुदा से शिकवे की शक़्ल में फट पड़ी थी, उस पर अब उसकी धैर्यवान शख़्सियत पूरे तौर पर हावी हो चुकी थी, लेकिन इस तरह कि ज़बान से तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ न कहता, दिमाग़ सोचों और सवालों में भटकता रहता।

सिर्फ़ अपने शराबी दोस्त से गुफ्तगू का रंग दुनिया भर से अलग था। न रवादारी, न तक़ल्लुफ, न बनावट, न किसी क़िस्म का ढोंग। सिर्फ़ दिल की बात, यह जानते हुए भी कि वह उसे हौसला देने के लिए निरन्तर दिल रखने की कोशिश करता रहता।

''हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम मेरी तसल्ली के लिए कह रहे हो। मैं तुम्हारे पास तुम्हारी बातें सुनने नहीं आता, बल्कि अपनी सुनाने के लिए आता हूँ, क्योंकि दिन भर दुनिया वालों की सुनता रहता हूँ, अपनी सुना नहीं सकता। दुनिया के साथ मुँह बन्द और कान खुले, लेकिन तुम्हारे साथ कान बन्द और मुँह और दिल खुले।''

और अपनी सुनाने में वह अब कभी ख़ुदा से गिला-शिक़वा न क़रता, ''यार, मैं कौन होता हूँ शिक़वा करने वाला? मुझे उसके निज़ाम का क्या पता, जो मैं शिक़वा करूँ। जैसे मर्ज़ी है, चलाये। मैं तो बस उलझन में रहता हूँ कि क्या मैं ख़ुद ठीक चल रहा हूँ। मेरा तो बस अपने ऊपर ही ज़ोर चलता है न!''

इसके बावजूद हैरानी प्रकट करता कि हमें इतनी कम और सीमित अक्ल क्यों दी थी कि हमारी सोचें कभी मंज़िल तक पहुँच ही न पाएँ, बल्कि बन्द गली ही में भटकती रहें।

उसका दोस्त कहकहा लगाकर अपना गिलास उठाता, ''तुम्हारे इन सवालों का जवाब यही गिलास है। जो सोच तुम्हें बन्द गली में भटकाती है, उस सोच को कुन्द और मुअत्तल कर देना ही बेहतर है और इसी में सुकून है।'' फिर वह बड़ा-सा घूँट लेकर कहता, ''यह घूँट बन्द गली में भटकने वाली अक्ल का प्रतिरोध है। हिम्मत वाले ख़ुदकुशी करके प्रतिरोध करते हैं कि यह भटकी हुई ज़िन्दगी वापस ले लो, मगर मुझ जैसे बुज़दिल वक़्ती ख़ुद-फरामोशी ही से प्रतिरोध करते रहते हैं।''

ड्रामों के अन्दाज़ में ऐसे संवाद दोनों अकसर हास्य अन्दाज़ में बोलते रहते और कभी आनन्दित होते, कभी उदास, मगर एक दिन मरीज़ ज़्यादा ही दिल-ग़ीर था। दोस्त के गिलास की तरफ़ इशारा करके कहने लगा, ''यार, मुझे अकसर रात के वक़्त ज़्यादा तक़लीफ होती है। दर्द बेचैन करता है। व्याकुलता से करवटें बदलता रहता हूँ। देर तक जागता रहता हूँ। तब तुम्हारी बातें मेरे कानों में गूँजती हैं और मैं सोचता हूँ कि तुम्हारी तरज़े-ज़िन्दगी ठीक है या मेरी?''

दोस्त ने फिर दिल रखने वाला कहकहा लगाया, ''किन चक्करों में पड़ गए हो, मियाँ। जैसा खमीर, वैसा तरज़े-ज़िन्दगी, और यह खमीर ख़ुदा ख़ुद उठाता है। इसमें मेरा तुम्हारा कोई दख़ल नहीं। वह चाहता, तो हमारा खमीर अदल-बदल भी कर सकता था।''

मगर मरीज़ की तरफ़ से कोई प्रतिक्रिया न थी। वह उलटा गहरी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर तक उसी अर्द्धजागृतावस्था में बैठा रहा। फिर उठकर चला गया।

दिन गुज़रते गये। दोनों दोस्त मिलते रहे। एक, जिसकी ज़िन्दगी पूर्ववत गुज़र रही थी, और दूसरा, जिसकी मौत का दूत उसे ऊँची आवाज़ में बुला रहा था। वह कभी दिल से गहरी बातें करते। कभी ऊपरी-ऊपरी मुँह से और कभी बिल्कुल ख़ामोशी से। कई बार गहरी बातें अर्द्ध-गम्भीरता में और गम्भीर बातें आँसू पीकर करते, मगर डूबने वाले को तिनके के सहारे की ज़रूरत थी। वह सहारा तैरने वाले दोस्त की तरफ़ से बड़ी कामयाबी से मिल रहा था। बिल्कुल एक और एक ग्यारह वाला मामला था और उस साँझी सोच से वे ज़िन्दगी पर तमाशाइयों जैसे तबसरे करते रहते, जैसे ज़िन्दगी के रहस्य समझने की कोशिश कर रहे हों।

मगर ज़िन्दगी किसकी समझ में आती है? ज़िन्दगी देने वाले का उद्देश्य ही यही है कि हम उसे समझ न सकें। बिल्कुल ज़मींदार और कच्चे खेतिहर वाला सम्बन्ध। या पाकिस्तान के हाक़िमों और प्रजा वाला सम्बन्ध कि उनकी आँखें न खुलने दो, वरना ख़तरा बन जाएँगे। इसी सम्बन्ध के कारण एक दिन यों हुआ कि एक मुज़ारा अचानक बेदख़ल कर दिया गया।

सादिक भागा-भागा नमाज़ी दोस्त के घर गया और हाँफते हुए कहने लगा, ''साहब, रात तो ठीक सोये थे, मगर अब उठते नहीं हैं।''

डॉक्टर के साथ भागमभाग वहाँ पहुँचा, तो डॉक्टर ने मुआयने के बाद सिर हिला दिया, ''रात किसी वक़्त हार्ट फ़ेल हो गया है... मुमकिन है, ज़्यादा पी ली हो।''

भागदौड़... चीख़-पुकार... कफ़न-दफ़न... कई दिन तक पास-पड़ोस में इस आकस्मिक मौत की चर्चा होती रही। सादिक ने नमाज़ी दोस्त की मिन्नत-समाजत, खुशामद की कि जब तब यह घर सँभालने वाले अमेरिका से नहीं आ जाते, आप चन्द रोज़ चक्कर लगाते रहें। चुनाँचे वह लगभग हर तीसरे पहर या शाम वहाँ पहुँच जाता। ख़ामोश बैठा सोचता रहता, नमाज़ पढ़ता। उसकी मुक्ति के लिए क़ुरान का पाठ करता और देर तक सादिक से दोस्त की बातें करता रहता।

''बड़े नेक थे जी!'' ऐसी ही गुफ्तगू के दौरान एक शाम सादिक कह रहा था, ''हर एक से नेकी करते थे। शायद इसी लिए ख़ुदा ने उनकी सुन ली। सारी बात मान ली। जिस अन्दाज़ में जाना चाहते थे, वैसे ही गये। मुझसे यही दुआ मँगवाया करते थे कि ख़ुदा चलते-फिरते ले जाए... देख लें, वैसे ही गये।''

दोस्त एक लम्बी आह भरकर सोच में डूब गया।

सादिक पुराना मिज़ाज-शनास था। उसने महसूस किया कि ख़ामोश मेहमान आज ज़्यादा बातचीत पर आमादा नहीं। इसलिए चुपके से खिसक गया। ख़ाली कमरे में अकेला दोस्त सोच में डूबा रहा। पाँच...दस...पन्द्रह...बीस मिनट गुज़र गये। कोई घण्टे भर बाद सादिक वापस आया तो अपनी मौजूदगी का एहसास दिलाने के लिए धीमी आवाज़ में पूछने लगा, ''सर! प्यास लगी होगी। पीने को कुछ ले आऊँ?''

मेहमान का सोच में लुथरा हुआ सिर स्वीकृति में हिल गया। सादिक बड़े सलीके से प्लेट में शरबते-रूहअफज़ा का गिलास रखकर ले आया, जो उसे हमेशा पिलाया करता था, और सामने रख दिया।

चन्द लम्हों बाद झुके हुए चेहरे से आवाज़ उभरी, ''सादिक, यह नहीं, वही लाओ... जो अपने साहब को पिलाते थे।''

सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-110015
मो. - 09312124829

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज़मानत

असद मुहम्मद ख़ाँ

रूपान्तर : हसन जमाल

मैं वकील औन मुहम्मद हूँ। इस वक़्त वकालतनामे पर पन्द्रह साला मुवक्किल के दस्तख़त लेकर अपने दफ़्तर जा रहा हूँ। मुलज़िम मुसम्मी काके की माँ भी बच्चों की जेल तक मेरे साथ मेरी गाड़ी में आयी थी। वो उसे 'बेबे' कहकर पुकारता है और उसे बहुत प्यार करता है।

काग़ज़ात मुकम्मल होने के बाद बेबे क्लिफ़्टन की बस पकड़ने चल दी। उसे अब्दुल्लाह शाह ग़ाज़ी की दरगाह पर पहुँचना था। मैंने कहा भी कि बेबे, बैठी रह, बैठी रह। लोगों को मेरा उसे बेबे कहना अजीब लगता होगा, क्योंकि वो अभी सिर्फ़ बत्तीस बरस की है जबकि मेरा अपना छोटा बेटा सैतीसवें साल में है। ख़ैर, मैंने कहा बैठी रह, बैठी रह बेबे। मैं तुझे दरगाह छोड़ता हुआ निकल जाऊँगा, मगर वो नहीं मानी। कहने लगी, "मैं चली जाऊँगी। आप मेरी वज़ह से टाइम ख़राब मत करो, काके के केस पर काम शुरू कर दो। बहुत वक़्त निकल गया है। इधर जेल में मेरे काके को पाँचवाँ दिन लगा है। यह अच्छी बात नहीं है।"

असल में पुलिस ने काके के ख़िलाफ़ ब्लासफ़ेमी (ईश्वर निंदा) का केस दर्ज़ किया है। मुझे डर है कि लोग उसे जान से न मार दें।

बेबे को अभी यह बात मैंने नहीं बताई है।

हुआ यह था कि काके ने मुहल्ले के पेश इमाम की जलती हुई लालटेन पर गुलेल में पत्थर रख के मार दिया था, तो हुजरे में आग फैल गयी थी जिससे पेश इमाम की नयी वास्केट, एक पीला-सफ़ेद रूमाल और कुछ बरकतों वाले काग़ज़ नष्ट हो गये थे जिन पर रहमतों वाला पाक कलाम छपा हुआ था। इसी वजह से वो लोग बेहुरमती का पर्चा कटवाने में कामयाब हो गये। मगर मुझे यक़ीन है कि आख़िर को सच सामने आएगा और काका बरी हो जाएगा।

ऐन मुमकिन है ख़ुद पेश इमाम पर (जिसका नाम सिराजुद्दीन है) इज़्ज़त लेने का जुर्म साबित हो जाए। कोशिश मेरी यही है कि सच सामने आये... ख़ालिस और पूरा सच।

बेबे और काके ने अपने बारे में और पेश इमाम के बारे में जो कुछ बताया है, लीजिए, वो मैं शुरू से सुनाता हूँ।

बेबे बहुत दिनों की बेवा है। वो ज़्यादा नहीं बोलती और नमाज़ की पाबन्दी करती है। अपने काके के साथ किसी गाँव से आ के वो यहाँ शहर में ग़ैर मुस्लिमों के किसी गर्ल्स स्कूल में चपरासन लग गयी और मेहनत व ईमानदारी से काम करने लगी। वहीं स्कूल वालों ने उसे अपनी कैण्टीन का ठेका भी दे दिया। लो जी, उसकी आमदनी में इज़ाफ़ा हो गया। स्कूल वालों ने चार-पाँच बरस में उसकी दरख़्वास्त मंज़ूर कर ली और उसे यह इजाज़त दे दी कि वो स्कूल स्टाफ़ के अलावा भी गिनती के लोगों के लिए अपने घर से साफ़ सुथरा खाना बना कर ला सकती है जिसे वो लंच के दौरान कैण्टीन के बाहर गेट पर आकर ले जा सकते हैं।

फिर उससे कहा गया कि वो गेट की ओट में ख़ाली जगह में अपने लिए अस्थायी स्टोर जैसा बना ले, जिसका एक ही दरवाज़ा होना चाहिए— बाहर की तरफ़।

यहाँ वो अपने बेटे और कैण्टीन के मुलाज़िम लड़के को बिठा के दोपहर में खाना खिला सकती है। फिर तो बेबे ख़ुद भी यहीं खाना खाने लगी।

अब जो उसकी आमदनी और बढ़ी तो उसने कच्ची आबादी में 80 वर्ग गज़ का एक प्लॉट ख़रीद लिया और दो कमरों का मकान बना लिया। फिर बिजली लगवा ली और एक कुआँ खुदवा लिया। कुएँ में उसके नसीब से मीठा पानी निकल आया, तो उसने पम्प लगवा लिया और घर की दीवार से मिला के एक छोटी टंकी बनवा दी जिसमें वो मुहल्ले वालों के लिए पानी स्टोर करने लगी। सुबह जब बेबे के घर का पम्प चल रहा होता, तो दो चार मुहल्ले वाले सवेरे के ताज़ा पानी से अपनी बालटियाँ भर-भर के ले जाने लगे। बाक़ी पड़ोसियों की दिन भर की ज़रूरत के लिए छोटी टंकी शाम तक भरी रहती।

इस अर्से में बेबे के घर के सामने एक मस्जिद बन गयी थी और एक जवान पेश इमाम कहीं से आके हुजरा बना के रहने लगा था। पेश इमाम ने मुहल्ले वालों की टंकी देखी तो खुश होकर उसने अलहम्दो-लिल्ललाह कहा और एक दिन ठेलेवाले नाना को साथ लेकर, उसे टैक्सी में बिठा के वो कैण्टीन के बाहरी दरवाज़े तक पहुँच गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठेलेवाले नाना एक नर्म मिज़ाज बड़े मियाँ थे जो सस्ते फलों और सब्ज़ियों का ठेला लगाते थे। नाना का कच्चा-पक्का घरौंदा बेबे के मकान से मिला हुआ था। बेबे प्यार से बड़े मियाँ को बाबा कहती थी और काके ने उन्हें नाना कहना सीखा था, इसलिए बड़े मियाँ सब के नाना कहलाने लगे।

तो, नाना ने कैण्टीन पर आ के बताया कि पेश इमाम उन्हें सिफ़ारिश के लिए लाया है। अगर बेबे बाहर की छोटी टंकी से, गली पार कराके, एक नल मस्जिद के वुज़ूख़ाने तक पहुँचा देगी, तो नमाज़ियों के लिए पाकी और वुज़ू का अच्छा इन्तिज़ाम हो जाएगा और बेबे को सवाब मिलेगा।

बेबे ने कहा, ''आप दोनों ने इतनी दूर आने की तकलीफ़ क्यों की? वहीं सुबह घर पर कह दिया होता।'' नाना ने बताया कि पेश इमाम वहाँ सब लोगों के सामने तुम से बात नहीं करना चाहता था। बेबे ने पूछा, क्यों भला? फिर ख़ुद ही बोली, चलो, बिस्मिल्लाह करो। नेक काम में इतने सवाल-जवाब किस लिए? दुकान से पाइप और दूसरी चीज़ें लेती आऊँगी। पलम्बर से कह दूँगी। वो सवेरे आ जाएगा, मस्जिद तक पाइप पहुँचा देगा।

नाना ने टैक्सी में बैठे पेश इमाम को ये सब बतलाया तो वो कहने लगा, जज़ाकअल्लाह! पाइप हम अभी टैक्सी में लेते चले जाएँगे... पलम्बर से भी कह देंगे। बीबी को बोलो, पैसे का बन्दोबस्त कर दे।

बेबे ने इधर मेहमानों के लिए ताज़ा चाय बना ली थी और अन्दर स्कूल में कह दिया था कि वो आधे घण्टे के लिए सामान ख़रीदने नाना के साथ जा रही है।

काके ने नाना और पेश इमाम को चाय के लिए कैण्टीन के स्टोर में आने को कहा, तो पेश इमाम कहने लगा, ''बरख़ुरदार, अगर चाय पिलानी हो तो यहीं गाड़ी में ले आओ। मेरा होटल वग़ैरह में बैठकर चाय पीना मुनासिब नहीं होगा।'' काके को हैरत हुई। उनका स्टोर होटल तो नहीं है, अगर होता तो भी क्या बुराई थी... ख़ैर, उसने दोनों को और टैक्सी वाले को गाड़ी में ही चाय पिला दी।

उधर छींटा मार, तौलिये से हाथ-मुँह पोंछ, कंघे के दो हाथ चला, बेबे सामान ख़रीदने को तैयार होकर बाहर निकल आयी तो पेश इमाम सोच में पड़ गया।

नाना ने पूछा, ''क्या बात है, किस सोच में हो?''

पेश इमाम बोला, ''बेपर्दा औरतें बैठ रही हैं, मेरे लिए मोटर में उनके साथ बैठना मुनासिब नहीं होगा।''

नाना ने पूछा, ''क्यों मुनासिब नहीं होगा?'' पेश इमाम कहने लगा, ''जब आप नहीं समझ रहे हैं तो मेरा बयान करना भी नामुनासिब है!''

बेबे को उसी वक़्त अन्दाज़ा हो गया था कि ये किस कैण्डे का आदमी है, मगर क्योंकि वो अच्छा काम करने निकल रही थी, इसलिए ख़ुद नाना के साथ गाड़ी में पीछे बैठ गयी और पेश इमाम ड्राइवर के साथ वाली सीट पे जा बैठा।

बेबे ने पलम्बरी का सामान ख़रीदवा दिया और वो दोनों वापस चले गये।

पलम्बर ने दिल लगा के काम किया और अगले दिन इशा (रात की नमाज़) के बाद मस्जिद के वुज़ूख़ाने तक पाइप पहुँचा दिया। उस दिन की नमाज़ें पढ़ी जा चुकी थीं, तो पलम्बर ने मश्वरा दिया कि कल फ़ज्र के वक़्त बिस्मिल्लाह करके पम्प चला देना। यह मश्वरा यूँ भी सही था कि पाइप को टिकाने के लिए उसने कहीं-कहीं सीमेण्ट लगाई थी, वो भी रात भर में सेट हो जाती।

बेबे ने नाना को पक्का कर लिया कि वो फ़ज्र के वक़्त बिस्मिल्लाह पढ़ के अपने मुबारक हाथों से पम्प चला देंगे। नाना सीधे-सादे आदमी थे। वो फ़ज्र की अज़ान के बाद बेबे के सेहन में, जहाँ मीटर और स्विच लगे थे, पेश इमाम को लेकर आ गये। उसने पम्प के लिए लम्बी दुआ पढ़ी और बिस्मिल्लाह कहके स्विच खोल दिया। फिर काफ़ी देर तक वो दीदे घुमा-घुमा के जायज़ा लेता रहा और बेबे और काके के लिए दुआ-ए-ख़ैर करता रहा।

दिन ख़ूब निकल आया, तो गली में मोटर रिक्शा की आवाज़ और बच्चों के नारे सुनाई दिए। लोगों ने निकल के देखा कि पलम्बर पर मिठाई का टोकरा लदवाए पेश इमाम खड़ा बेबे के मकान की कुण्डी बजा रहा है। काके ने दरवाज़ा खोला तो किलकारियों मारते हुजूम को चीर कर बेबे को पुकारता हुआ पेश इमाम घर के सेहन में आ गया। बहुत-से हिम्मत वाले बच्चे भी उसकी टाँगों से लिपटे हुए, उसके कपड़े खींचते हुए सेहन में आ गये थे। पेश इमाम ने बहुत दुआएँ पढ़ीं और ख़ुतबे वाला डण्डा (जो वो फ़ातिहा पढ़ने को साथ लेता आया था) घुमाया, मगर सेहन में आ जाने वाले बच्चों ने बाहर जाने से इनकार कर दिया। नाना भी आ गये थे। पेश इमाम को गली में निकलकर बच्चों में मिठाई बाँटनी पड़ी।

बेबे और काके को बहुत-सी मिठाई देने पेश इमाम जब दोबारा घर में आ गया, तो बेबे ने नाना से और पलम्बर और पेश इमाम से कह दिया कि आज इतवार का दिन है, उसकी छुट्टी है। वो सब लोग दोपहर को आ जाएँ और खाना खा लें, मेहरबानी होगी।

बेबे ने दस आदमियों का खाना तैयार किया। मीठा उसने एक रोज़ पहले ईरानी होटल वाले के फ्रिज में रखवाया हुआ था, क्योंकि स्कूल की वजह से बेबे और काके की होटल वाले से जान-पहचान हो गयी थी, तो कैण्टीन की एक दिन की बची हुई चीज़ वो फ्रिज में सँभाल लिया करता था। खाने का वक़्त होने लगा तो काका फ्रिज में रखवाया हुआ मीठा लेने गया। उसने होटल के काउण्टर पर किसी आदमी के साथ पेश इमाम को खड़े देखा।

वो दोनों आदमी पैसे अदा करने के लिए एक दूसरे से तकल्लुफ़ का झंझट कर रहे थे। होटल का मालिक मेज़ पर अपने हाथ रखे बड़ी बेज़ारी से दोनों को ये सब करते देख रहा था। काके ने उसे सलाम किया और दूर से फ्रिज की तरफ़ इशारा किया तो उसने सर हिला दिया कि निकाल लो।

लम्हे भर को पेश इमाम का ध्यान बँट गया। उसने काके को फ्रिज से मीठे का पैकेट निकालते देखा। उसी वक़्त मेहमान ने काउण्टर पर पैसे रख दिए और वो जीत गया। पेश इमाम खिसिया गया। उसने दो रोज़ पहले ही तो काके से कहा था कि उसका होटल में चाय वग़ैरह पीना मुनासिब नहीं है।

दोपहर के खाने पर जब सब लोग खाने पर बैठने लगे तो पेश इमाम ने कंधों पर से कढ़ा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ सफ़ेद रूमाल उतारकर अपने बराबर की जगह को इस तरह झाड़ा जैसे गर्द झाड़ता हो। फिर कहने लगा, ''आओ बरख़ुरदार। यहाँ मेरे पास बैठो।'' ज़ाहिर है काके अन्दर से खाना ला-लाकर मेहमानों के आगे रख रहा था, बैठ कैसे सकता था! बेबे ने खाने के बाद चाय पिलाई फिर वो अन्दर बैठी औरतों से माफ़ी माँग कर दरवाज़े तक मर्दों को रुख़्सत करने आयी। पेश इमाम ने अपने पीले-सफ़ेद रूमाल को घूँघट की तरह सर पर डाल रखा था। तो उसने घर की दहलीज़ पार करने से पहले फिर दुआ पढ़ी और देर तक पढ़ता रहा। उसने बेबे की ख़ुदातरसी, नेकी और परहेज़गारी का बयान करते हुए उसके लिए बड़े सवाब की सिफ़ारिश की, इसलिए कि बेबे ने अपने ट्यूबवेल, मोटर और पम्प से नमाज़ियों के और आम आदमियों के लिए पानी मुहैया कर दिया था। 'आमीन' कहकर और मर्द तो रुख़्सत हुए, मगर पेश इमाम रह गया जो बाहर की टंकी के हर पहलू की जाँच-पड़ताल करता जाता था और टूँटियों को घुमा-घुमा के ख़ुदा की बुज़ुर्गी बयान कर रहा था। आख़िर में उसने बेबे से जाने की इजाज़त चाही, जो फ़ौरन ही मिल गयी। फिर भी जाने से पहले उसने ज़मीन की तरफ़ देखते हुए बेबे को मश्वरा दिया कि अब जबकि उसकी और इस घराने की जान-पहचान हो गयी है, तो ये बेहतर होगा कि काके पेश इमाम से सिपारा पढ़ना शुरू कर दे। बेबे ने कहा, सुब्हानअल्लाह! इससे अच्छी बात क्या होगी, वो काके को भेज दिया करेगी। पेश इमाम कहने लगा, वो ख़ुद आ जाया करेगा। इसलिए कि कहा गया है कि नेक काम सरअन्जाम देने के लिए एक क़दम भी उठाया जाए तो उस पर इतना-इतना सवाब होता है! बेबे ने कहा कि आप क्यों ज़हमत करें, काके ही आ जाया करेगा और वो सलाम करके अन्दर चली आयी।

दूसरे दिन से काके ने पेश इमाम से सिपारा पढ़ना शुरू कर दिया। मगर अभी पढ़ने का वक़्त ठीक नहीं हुआ था। काके कभी तो फ़ज्र की नमाज़ के बाद आधे घण्टे के लिए मस्जिद ही में बैठकर सबक़ लेता और सुना देता था, कभी मग़रिब के बाद। लेकिन ये दोनों वक़्त बहुत तंग थे क्योंकि सुबह दोनों माँ-बेटे को कैण्टीन खोलने की जल्दी होती थी और शाम में काके बहुत थका हुआ होता था तो मग़रिब के बाद उसे नींद के झोंके आते थे। कुछ दिन सिपारे की पढ़ाई सुबह और शाम, वक़्त बदल-बदल के हुई फिर ये गण्डेदार होने लगी। पेश इमाम ने तजवीज़ पेश की कि काके को दिन में ज़रूर वक़्त मिलता होगा तो क्यों नहीं पेश इमाम कैण्टीन पर आ जाया करे। सुना है, स्टोर में कुछ जगह है। बस वहाँ एक तरफ़ बैठ के काके सबक़ ले लिया करेगा। उस वक़्त भी उसने नेक काम सरअंजाम देने के लिए ज़्यादा दूर जाने की महत्ता बयान की और फ़ासले को सवाब के लिहाज़ से फ़ायदेमन्द बताया। तजवीज़ अच्छी थी, मगर बेबे ने सोचा हमारी वजह से बेचारा चलकर या बस से इतनी दूर आएगा इसलिए उसने जवाब में पेशकश की कि दोपहर का खाना पेश इमाम कैण्टीन ही में खा लिया करे, इसलिए कि वक़्त खाने का होगा और काके उस वक़्त फ़ारिग़ भी होता है। पेश इमाम ने पहले तो तजवीज़ की मुख़ालफ़त की, मगर ये मुख़ालफ़त ऐसी थी जैसी ईरानी होटल के काउण्टर पर चाय के पैसे अदा करने के लिए उसका और उसके मेहमान का तकल्लुफ़ भरा झंझट।

पेश इमाम दोपहर में कैण्टीन पर आने लगा। पहले बेबे, काके और कैण्टीन वाला लड़का फ़ुर्सत पाते ही खाना खा लिया करते थे। अब जो पेश इमाम आने लगा तो काके वहीं एक तरफ़ बैठ के सबक़ पढ़ लेता, फिर काके और पेश इमाम और लड़के के लिए बेबे खाना लगा देती। उन्हें खिलाकर पेश इमाम के जाने के बाद वो ख़ुद खाना खा लेती।

बज़ाहिर सब ठीकठाक था, लेकिन पेश इमाम बातों-बातों में मुसलमानों के आपस के बिखराव की वजहें बयान करने लगा था। उसका ख़याल था कि मुसलमान लोग एक साथ बैठ कर खाना खाया करें, तो भाईचारा बढ़ेगा और इस्लाम को दुनिया में सरबुलन्दी नसीब होगी। बेबे उसके ख़याल से पूरा-पूरा इत्तिफ़ाक़ करती थी, लेकिन खाना वह पेश इमाम के जाने के बाद ही खाती रही।

पेश इमाम आमतौर पर खाने के बाद एक लम्बी दुआ करता और चाय ज़रूर पीता था। दुआ में ख़ास तौर पर बेबे की सेहत और उसकी सलामती तलब की जाती। मगर पेश इमाम का बेबे और काके की ज़िन्दगियों में इस तौर दाख़िल होना आख़िरकार उनके ज़ेहनी सुकून को परेशान करने लगा।

एक रोज़ सबक़ लेने, खाना खाने, चाय पीने के बाद काके पेश इमाम को कैण्टीन के दरवाज़े तक रुख़्सत करके जो अन्दर स्टोर में आने लगा, तो पेश इमाम भी पीछे-पीछे चला आया। बेबे ने अभी खाना शुरू नहीं किया था। वो काके और पेश इमाम की तरफ़ सवालिया अन्दाज़ में देखने लगी। पेश इमाम एक कुर्सी खींचकर मेज़ से ज़रा दूर बैठ गया और काके से कहने लगा कि देखो बरख़ुरदार। मुझे तुम्हारे भविष्य के बारे में तुम्हारी माँ से कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं। मुनासिब होगा कि तुम सुकून से बातें करने दो। उस लड़के को भी इधर न आने देना। जाओ शाबाश! फिर वो बेबे से मुख़ातिब हुआ बोला, ''ख़ातून, आप कुछ देर बाद खाना खा लीजिए। कुछ ग़ौरतलब मुआमले हैं जिन पर बात करके मैं फ़ौरी तौर पर जाना चाहता हूँ। जल्दी में हूँ।''

बेटे ने माँ को देखा। उसकी समझ में अभी तक कुछ नहीं आया था। माँ ने इशारे से उसे बाहर जाने को कह दिया। वो बाहर आ बैठा और सोचने लगा कि पेश इमाम ऐसी कौन-सी बात कहना चाहता है? हो सकता है मेरी शिकायत करता हो। पर मैं ठीकठाक पढ़ रहा हूँ, रोज़ का काम रोज़ करता हूँ। और क्या चाहिए? ख़ैर, वो इसी सोच में था कि अन्दर से बेबे ने उसे आवाज़ दे ली। वो पहुँचा तो बेबे मुँह पर हाथ रखे शायद रो रही थी। मगर वो बोली तो अन्दाज़ा हुआ कि रो नहीं रही थी, वो हँसी रोकने की कोशिश कर रही थी।

काके के पहुँचते ही पेश इमाम पुरज़ोर अन्दाज़ में बेबे से कहने लगा, ''ख़ातून। मैं फिर ताक़ीद के साथ कहता हूँ कि बरख़ुरदार का इस वक़्त इस मुआमले से ऐसा कोई ताल्लुक़ नहीं है कि फ़ौरी तौर पर इससे ये बात कह दी जाए।''

बेबे ने मुश्किल से ज़ब्त करके कहा, ''हज़रत मौलाना। आपका ख़्याल दुरुस्त नहीं है। जो तजवीज़ आप पेश कर रहे हैं, अगर मैं उससे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इत्तिफ़ाक़ कर लूँ, तो आप इस काके के बाप बन जाएँगे, इसलिए पहले इस बरख़ुरदार से पूछ लिया जाए कि क्या ये आपको इस हैसियत से क़बूल भी करेगा?... क्यों बेटे?''

पेश इमाम ने किसी को बोलने का मौक़ा न दिया। ख़फ़ा हो के कहने लगा, ''ख़ातून। ये बच्चा क़बूल नहीं करेगा। क़बूल आप करेंगी। हाँ-ना औरत-मर्द के बीच होते हैं।''

बच्चे की समझ में अब भी ज़्यादा कुछ नहीं आया था। बेबे को पेश इमाम की बात पर तर्रारा आ गया। कहने लगी, ''हाँ-ना दो जनों के बीच होते हैं। पहली बात तो ये है। दूसरी बात ये कि मेरा बेटा ही मेरे घर का अकेला मर्द है, तो मैं पहले इसकी राय मालूम करूँगी। आप चुप रहिये। क्यों बेटे? ये पेश इमाम साहब जिन्हें तुम इस वक़्त कुर्सी पे बैठे देख रहे हो, अगर ये हमेशा, यहाँ इस कुर्सी पर... मतलब, अगर ये पूरे के पूरे हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाएँ... तो तुम्हें कैसा लगेगा?'' बेबे ने बेटे से कुछ मुस्कराते, कुछ संजीदगी से ये बात कही थी जो अब काके की समझ में आ गयी थी। उसने उलझ कर सवाल किया— ''क्यों? बेबे ने मुस्करा के पूछा, क्यों क्या मतलब? भई, यहीं कह रहे हैं।''

काके ने अब के तेज़ हो के पूछा, ''मगर ये हमारी ज़िन्दगी में क्यों हिस्सा बटाएँगे?''

काके के हिस्सा बटाएँगे, कहने पर बेबे न चाहते हुए भी हँस पड़ी, फिर हँसी रोक के बोली, ''इसलिए कि ये साहब मुझे गुनाहों से बचाना चाहते हैं...समझो जन्नती बनाना चाहते हैं। इनका ख़याल है कि मैं जो अकेली रह के तुम्हारी परवरिश कर रही हूँ तो ये गुनाह है?''

काके ने पेश इमाम से कहा, ''परवरिश करना गुनाह नहीं होता।''

लाहौल पढ़ते हुए पेश इमाम भन्ना के बोला, ''ख़ातून! एक बहुत अहम मसला आपने बच्चे को खेलने को दे दिया है। आख़िर ये किस तरह की गुफ़्तगू है?''

बेबे ने अब के पूरी तरह संजीदा होकर कहा, ''ये माँ-बेटे की गुफ़्तगू है। आपको पसन्द नहीं है तो चले जाइए।''

पेश इमाम को बहुत बुरा लगा। वो उठा मगर फिर सँभल के बैठ गया और काके से कहने लगा, ''जाओ बरख़ुरदार, तुम बाहर जाओ।''

काके ने उलट के कहा, ''क्यों?''

पेश इमाम ने ऊँचे सुर में कहा, ''मैं कह रहा हूँ, बाहर जाओ। बच्चों के सामने बहुत से मसलों पर बात नहीं हो सकती।''

बेबे अब रुखेपन से बोली, ''सुनिए जी मौलवी साहब। मैंने आपसे जाने को कहा है। अब आप तशरीफ़ ले जाइए और इधर आने की फिर ज़हमत न फ़रमाइए। बस हो गयी पढ़ाई। बच्चा कहीं और पढ़ लेगा।''

पेश इमाम ने आँखें दिखाईं। कहने लगा, ''फिर ज़हमत न फ़रमाइए का क्या मतलब? मैं बच्चे को अल्लाह का कलाम पढ़ा रहा हूँ।''

बेबे को इस अन्दाज़ पर हैरत हुई। कहने लगी, ''नहीं अब नहीं पढ़ा रहे आप।''

उसने फिर आँखें दिखाईं, ''ख़ातून। इसका फ़ैसला मैं करूँगा।''

बेबे उठ के खड़ी हो गयी। काके उसके बराबर जा खड़ा हुआ। कहने लगी, ''तुम अपने होश में तो हो? मैं आख़िरी बार कह रही हूँ कि अब चले जाओ और यहाँ अब न आना। समझे?''

पेश इमाम ने कुर्सी पर बैठे-बैठे गहरी साँस ली जैसे ख़ुद को किसी आज़माइश के लिए तैयार कर रहा हो। फिर फँसी हुई आवाज़ में बोला, ''औरत, तुझे नहीं मालूम कि तू किन शैतानी असर के तहत एक दीनदार आदमी से मुँहमारी कर रही है। ऐ बदनसीब! मैंने तो तेरी भलाई के लिए ये तजवीज़ रखी थी। ख़ुदा जानता है कि इसमें मेरी ख़्वाहिश का दख़ल नहीं था। इस वक़्त मैं जा रहा हूँ मगर मेरी बात पर ठण्डे दिल से ग़ौर करना। ऐ कमअक़्ली। मैं तो...''

बेबे ने उसे आगे बोलने का मौक़ा ही नहीं दिया। जिस कुर्सी पर अब तक बैठी थी, उसने उसकी पुश्त को दोनों हाथों से मज़बूती से पकड़ा और दाँत पीसकर बोली, ''जाता है या दूँ एक?''

''तुझे ये कुर्सी से उठाना महँगा पड़ेगा जहन्नुमी, लानती!'' कहता हुआ पेश इमाम स्टोर से निकल गया।

बेबे बहुत देर तक सन्नाटे में रही। फिर काके से आहिस्ता से कहने लगी, ''ये मुझे पागल लगता है। बिना वजह झिक-झिक करके गया है। ये तुझे कहीं बाहर मिले तो बात मत करना और इस झगड़े का किसी से ज़िक्र मत करना।''

काके ने सर हिला के बेबे से वादा कर लिया। दो दिन कुछ नहीं हुआ। पेश इमाम एक बार काके को बस्ती में नज़र आया। उसने ख़ुद ही नज़रें चुरा लीं। काके ने भी सलाम नहीं किया। तीसरे दिन एक जवान आदमी बेबे को कैण्टीन के दरवाज़े में खड़ा देखकर आगे आया, सलाम करके कहने लगा, ''बीबी। परसों जो हुआ था, बेशक़ बुरा हुआ था। आप कुछ ख़याल नहीं करना। भाई सिराजुद्दीन ने पुछवाया है कि अब तो आपका गुस्सा ठण्डा हो गया होगा?''

काके उसे पहचान गया। ये वही आदमी था जो पैसे देने के लिए उस दिन पेश इमाम के साथ झंझट कर रहा था और आख़िरकार पैसे देने में कामयाब हो गया था। बेबे उसे बोलते सुन रही थी और बस घूरे जा रही थी। उसने जो 'भाई सिराजुद्दीन' कहा, तो ये पेश इमाम का नाम होगा।

लम्हे भर रुक के वो कहने लगा, ''असल में जी वो बड़ा नेक तबीयत आदमी है। कभी दंगा-फ़साद नहीं करता। दीनदार बन्दा है। उधर मुलक में उसके घर वालों का थोड़ा बहुत कारोबार है, खेती की ज़मीन भी है— नहरी... एक भाई है छोटा। माँ है। बाप पुलिस का रिटायर्ड हवलदार है। उसकी बात का बुरा मत मनाना। गरमागरमी में कुछ कह दिया होगा। अब अगर आप फ़रमाओ तो उधर से माँ जी को बुलवा भेजते हैं। वैसे तो बहुत बूढ़ी हो गयी है। इधर ही आप लोग बात कर करा के तय कर लो।''

बेबे ने उसकी ये लम्बी बिखरी-बिखरी तक़रीर बड़े हौसले से सुनी। वो साँस लेने को रुका तो उसने नर्मी से पूछा, ''ऐ भाई, तुम्हारा नाम क्या है?''

वो झेंप कर बोला, ''मेरा नाम भी सिराजुद्दीन है। सब छोटा सिराजुद्दीन कहते हैं। वो बड़ा है, मुल्ला।'' रवानी में वो पेश इमाम का बेतकल्लुफ़ी का नाम बता गया था और अब इस बात पर खिसिया रहा था।

बेबे ने उसी धीमे अन्दाज़ में कहा, ''भाई छोटे सिराजुद्दीन। आप यक़ीनन मुल्ला सिराजुद्दीन के क़रीबी दोस्त होंगे।'' वो बात काट के जल्दी से बोल पड़ा, ''मुल्ला तो जी

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम प्यार से कहते हैं, बड़ा आलिम फ़ाज़िल आदमी है... हाँ जी, मैं उसका बचपन का दोस्त हूँ।''

''ठीक है, तो भाई छोटे सिराजुद्दीन। आप अपने दोस्त बड़े सिराजुद्दीन को समझाएँ। अल्लाह ने उन्हें दीन की समझ और इल्म दिया है। वो अल्लाह का कलाम पढ़ाते हैं तो फिर उसी के मुताबिक़ तौर-तरीक़े भी रखें।''

छोटा सिराज फ़ौरन बोला, ''बीबी। वो बड़े सोहने आदतों का बन्दा है। आप यक़ीन करो।''

''सुनो जी। मुझे बात करने दो।'' बेबे ने डपट के कहा। छोटा सिराज सहम गया। वो बोली, ''सोहने आदतों वाला बन्दा कभी औरतों को धमकियाँ नहीं देता।''

छोटा कहने लगा, ''देखो जी, आदमी से कभी-कभार कोई ग़लती हो ही जाती है। बन्दा-बशर जो हुआ। कुछ ख़याल ना करें आप, मुआफ़ कर दे उसे।''

बेबे बोली, ''अच्छा, तुम उसकी तरफ़ से मुआफ़ी माँगने आये हो? वो हाँ में सर हिला के कहने लगा, ''यही समझ ले आप।''

''तो ठीक है, बेबे ने कहा, मुआफ़ किया मैंने। मगर एक बात अपने मुल्ला सिराजुद्दीन को बता देना कि इस तरफ़ कभी रुख़ न करें। मैंने बात अपने तक ही रखी है। आदमी बने रहे तो आइन्दा भी किसी से ज़िक्र नहीं करूँगी। ठीक है, तुम जाओ...''

छोटा सिराज मुँह खोले बेबे को तके जा रहा था। धीरे से कहने लगा, ''वो तो ठीक है जी, पर मैं उसको जवाब क्या दूँ?'' इस पर बेबे ने जैसे फिर डाँट पिलायी कि कैसा जवाब? वो बोला, ''यही जी रिश्ते की बात!''

बेबे ने मायूसी में सर हिलाया। अफ़सोस के साथ बोली, ''तुम कैसे आदमी हो? मैं कह रही हूँ कि मैं तुम्हारे सिराजुद्दीन की शक़्ल नहीं देखना चाहती और तुम रिश्ते की बात पूछ रहे हो! अरे बन्दे ख़ुदा के, कह देना मुझे नहीं करना उससे निकाह। अब तो खुश हो? अब जाओ। मुझे काम करने दो।''

छोटे सिराजुद्दीन के चेहरे पर लाल रंग की तीखी लहर दौड़ गयी। उसे बेबे के गुस्से की सहार थी, पर वो उसकी हिक़ारत न बरदाश्त कर सका। नथुने फुला के बोला, ''बीबी ओ बीबी! ज़्यादा ऊँचा उड़ने की ज़रूरत नहीं है। जब हम शरीफ़ है तो शरीफ़ हैं। हम से टेढ़ी बात नहीं कर। हाँ!''

और ये सब बक-बका के छोटा सिराज चला गया। बेबे समझी, बात ख़त्म हो गयी। मगर बात ख़त्म नहीं हुई थी।

दूसरे दिन मस्जिद को जाने वाला पाइप उखाड़ दिया गया। बाहर की टंकी से पानी लेने वाले एकदम कम हो गये। जहाँ सुबह-शाम मर्दों, औरतों की भीड़ लगा करती थी वहाँ ये हो गया कि कभी बहुत ज़रूरत में कोई आके बाल्टी भर लिया करता। बेबे के घर मुहल्ले वालों का आना-जाना जैसे बिल्कुल बन्द हो गया। एक दिन नाना ने सुबह ठेला निकालने से पहले गली में आकर बेबे को आवाज़ दी। वो दरवाज़े पर पहुँची तो नाना ने हकला-हकला के कहा कि अब वो उसका सौदा नहीं ला सकेंगे। उसे अब कोई और इन्तिज़ाम कर लेना चाहिए। बेबे ने वजह पूछी तो कहने लगे, बस... अब मुश्किल है। बेबे ने कहा, बाबा। कोई बात नहीं, आपने बहुत ख़याल रखा। अल्लाह खुश रखे। वो मुँह ही मुँह में कुछ कहकर चले गये। उसके बाद नाना ने उनसे कोई सरोकार न रखा। न वो उन दोनों को सुबह जगाते, न टंकी से पानी लेते और न ही बात करते। काके सलाम करता, तो सर झुकाए-झुकाए जवाब दे देते। बेबे एक रोज़ मग़रिब के बाद काके को लेकर उनके दरवाज़े पर गयी। किवाड़ थपथपाया तो पूछने लगे, कौन है? बेबे बोली, मैं और काके आये हैं तो ज़रा ठहरकर बोले कि भई, इस वक़्त जाओ तुम लोग, मैं वज़ीफ़ा पढ़ रहा हूँ। बेबे अन्दर ही अन्दर रोती हुई वापस आ गयी।

एक दिन मुहल्ले की एक बहुत बोलने वाली औरत को रोक कर बेबे ने पूछा कि आख़िर बात क्या है, तो उसने बेधड़क बता दिया कि तुम जो देखते ही देखते झोंपड़ी से पक्के मकान में आयी हो, ये जादू-मन्तर ऐसे ही नहीं हो गया! हमें सब पता है। और लोग पानी इसलिए नहीं लेते कि तुम्हारी 'ग़लत कमाई' की वजह से पानी नापाक हो गया है। बेबे ने अपनी 'ग़लत कमाई' के बारे में पूछा कि वो किस तरह ग़लत है तो औरत भन्ना के बोली, ''बीबी। रहने दो, मुँह मत खुलवाओ... पेश इमाम के एक जानने वाले ने एक बन्दे को रात में चोरों की तरह तुम्हारे घर से निकलते हुए पकड़ा था। दूसरा बाहर खड़ा था, वो शोर सुनकर डपट लिया, नहीं इतने गवाहों की गवाही मिल जाती कि संगसारी में कोई देर नहीं लगती।''

बेबे तो ख़ाली कुर्सी से उठाकर रह गयी थी। मुल्ला सिराजुद्दीन ने उस पर पूरी ताक़त से वार किया था। बाद में किसी दूसरी ने ये तस्दीक़ भी की कि जो आदमी पकड़ा गया था, उसने नाना और पेश इमाम के सामने अपना जुर्म क़बूल किया है। और पेश इमाम कल कह रहा था कि वो मस्जिद के सेहन में खड़े होकर हलफ़ उठाने को तैयार है कि बड़ी सड़क के ईरानी होटल का मालिक तुझे पैसे लिए बिना खूब मिठाइयाँ भेजता है। औरत ने ये भी कहा कि उसमें ज़रा भी जो ग़ैरत हो तो डूब मरे!

बेबे उस रोज़ दीवार पकड़े-पकड़े घर में आयी और लेट गयी। वो सुबह तक बुखार में पड़ी ऊलजलूल बकती रही। काके उसकी पट्टी से लगा बैठा सब सुनता और काफ़ी कुछ समझता रहा।

और अभी फ़ज्र में देर थी जो काके गली में आया। उसने पेश इमाम को अपने हुजरे में लालटेन जलाते देखा। वो गुलेल और एक छोटा पत्थर लेने घर में घुसा और... उसे ये नहीं करना चाहिए था... मगर बाहर आकर उसने पेश इमाम पर पत्थर खींच मारा। हुजरे में आग फैल गयी, वही हुआ जो पहले बता चुका हूँ।

और अब मैं, औन मुहम्मद वकील अपनी तरफ़ से कोशिश कर रहा हूँ कि सच सामने आये और काके बेहुरमती के इल्ज़ाम से बरी हो जाये।

मगर मैं डरता हूँ कि कहीं, किसी दिन जेल के बाहर चार सौ या उससे कुछ कम (या ज़्यादा) ख़ूब गुस्सा दिलाए हुए हथियारबन्द (और बेहथियार) लोग न आ खड़े हों जिन्हें सोहने नबी जी की लायी हुई रहमतों वाली शरीअत की (और सरकमस्टान्शियल एवीडेंस) या तो समझ हो या न हो, तो सवाल ये है कि ऐसे में... काके की जान की ज़मानत कौन दे सकता है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूछो राष्ट्रनिर्माताओं से क्या लाहौर फिर बस पाया *

कृष्णमोहन

सघन अन्धकार के क्षणों में जब दृष्टि कुण्ठित हो जाती है और चेतना विकृत, तब हमारा अन्तर्मन हमारे विवेक की मदद करता है, बशर्ते हम उसकी आवाज़ सुन सकें। अवचेतन से उठी हुई इसी आवाज़ को अनेक रचनाकारों ने पागलों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' के पागल के गीत की पंक्तियाँ हैं—

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया!!
बताओ तो किस-किस के लिए तुम दौड़ गये,
बन गये पत्थर;
बहुत-बहुत ज़्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम;
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम!!

सआदत हसन मंटो की कहानी 'टोबा टेक सिंह' भी ऐसी ही एक कोशिश है। बस फ़र्क़ यह है कि इसका आत्मविस्मृत नायक देश की क़ीमत पर ख़ुद को सुर्ख़रू नहीं करता, उसे काटने और बाँटने वाली रेखा पर दम तोड़ देता है। किन्तु इस मुख्य पात्र तक पहुँचने के लिए कहानी के दूसरे ब्यौरों से गुज़रना ज़रूरी है।

कहानी लाहौर स्थित एक पागलख़ाने में तब घटती है, जब बँटवारे की प्रक्रिया आगे बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक पहुँच जाती है कि मजहब के आधार पर पागलों की नागरिकता तय होने लगती है। इस पर पागलपन की अटपटी सरलता से भरी लेकिन अक्सर विवेकपूर्ण प्रतिक्रिया देखकर हमें यह एहसास होता है कि हमारी आज़ादी का रास्ता अन्ततः आत्मघाती पागलपन तक पहुँचाने का माध्यम बना था, जिसकी ताईद हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने लगभग एक स्वर से की थी। मानो पूरा देश एक विशाल पागलख़ाने में बदल गया हो और चन्द होशोहवास वाले लोगों को पागलख़ाने में क़ैद कर दिया गया हो।

कहानी की शुरुआत पाकिस्तान के बारे में रोचक चर्चाओं से होती है। जब पागलों को पता चलता है कि एक पाकिस्तान नाम की जगह बन गयी है और सभी मुसलमानों को वहाँ रहना होगा, तब वे आपस में उसके बारे में पूछताछ करते हैं। एक मुसलमान पागल का जवाब है, 'हिन्दुस्तान में एक ऐसी जगह जहाँ उस्तरे बनते हैं।' पहली नज़र में यह बड़ा निर्दोष कमेंट लगता है, लेकिन हिन्दी-उर्दू के मुहावरों पर ग़ौर करें तो पाएँगे कि उस्तरे का प्रयोग हमेशा ही नकारात्मक अर्थों में मिलता है, चाहे वह बन्दर के हाथों में हो या फिर उलटा रहकर भी मूँड़ने में सफल होता हो। ध्यान रहे कि उस प्रच्छन्न व्यंग्य का इस्तेमाल मंटो ने अपने ही देश की वर्चस्वी शक्तियों के ख़िलाफ़ किया है।

एक पागल हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की खींचतान से ऊबकर दरख़्त पर जा चढ़ता है और दो घण्टे तक भाषण देने के बाद ऐलान करता है कि वह हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की बजाय वहीं रहना पसन्द करेगा। लेखक की टिप्पणी है कि वह 'और ज़्यादा पागल' हो गया था। अब यह पाठकों पर है कि वे हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के लिए आपस में लड़ने वालों को पागल मानते हैं, या इससे ऊबकर भाग खड़े होने वालों को। इधर एक दूसरा पागल जो बाग़ में बिलकुल अलग-थलग एक पगडण्डी पर टहला करता था, नंग-धड़ंग होकर पूरे बाग़ में चलना-फिरना शुरू कर देता है। पहला पागल विस्तार की समस्याओं से घबराकर आत्मनिर्वासन में चला जाता है जबकि दूसरा अपने संकुचित क्षेत्र को तोड़कर अपने दिए हुए संसार की व्यापकता में प्रवेश करता है। युगव्यापी चुनौतियाँ मानव-मन को इसी प्रकार अलग-अलग लेकिन निर्णायक रास्तों पर बढ़ने को प्रेरित करती हैं। हमारे राष्ट्रनिर्माताओं की चेतना भले ही अपने-अपने कारणों से कुन्द हो गयी हो, ये पागल दो टूक फ़ैसले करते नहीं हिचकते।

मुहब्बत में नाकाम होकर पागल हुआ लाहौर का एक नौजवान हिन्दू वकील यह जानकर दुखी हो गया था कि अमृतसर हिन्दुस्तान में चला गया क्योंकि उसकी महबूबा, जिसने उसे ठुकरा दिया था, अमृतसर की ही है। अब जब तबादले की बात चली है तो वह लाहौर नहीं छोड़ना चाहता, क्योंकि 'उसका ख़्याल था' कि अमृतसर में उसकी प्रैक्टिस नहीं चलेगी। तुझसे भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के। और यह भी दरअसल कहने भर की बात है। लाहौर में उसकी जड़ें हैं। वहाँ से उखाड़कर उसे अगर हिन्दुस्तान भेज दिया गया तो वहाँ के अजनबी परिवेश में वह अपनी विक्षिप्त स्मृतियों से भी हाथ धो बैठेगा। फिर वह केवल जैविक रूप से जीवित रहेगा, स्मृतिहीन जीवन जैसा होता है। बँटवारे के बाद हमारे उपमहाद्वीप का जीवन कुछ-कुछ ऐसा ही है।

*आलोकधन्वा की प्रसिद्ध कविता 'सफ़ेद रात' की एक पंक्ति

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इनके अलावा कुछ क़ातिल भी सज़ा से बचने के लिए पागलख़ाने में भर्ती हैं। इन सबका रंगारंग कार्यक्रम जब माहौल बना लेता है, तब कहानी के मुख्य मात्र बिशन सिंह का प्रवेश होता है। टोबा टेक सिंह का रहने वाला यह सिख किसान पन्द्रह साल पहले जब पागल होकर आया था तो उसके अल्फाज़ थे, 'औपड़ दि गड़गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मूँग दि दाल ऑव दी लालटेन...।' पन्द्रह साल से वह लेटा तक नहीं है। कभी-कभी दीवार से टेक लगा लेता है। जबसे पागलों के तबादले की बात शुरू हुई है उसके अल्फाज़ में 'लालटेन' की जगह पहले 'पाकिस्तान गवर्नमेंट' तथा बाद में 'टोबा टेक सिंह गवर्नमेंट' आ जाता है। वह लोगों से जानना चाहता है कि टोबा टेक सिंह कहाँ है, हिन्दुस्तान में या पाकिस्तान में? उसका पुराना दोस्त फ़ज़लदीन जब इसका जवाब देते हुए लड़खड़ाकर 'हिन्दुस्तान में... नहीं, नहीं पाकिस्तान में' कहता है, तब वह लालटेन की जगह 'पाकिस्तान एंड हिन्दुस्तान ऑव दी दुर फिटे मुँह' कहता है। जब उसे हिन्दुस्तान भेजने के लिए सीमा पर तैनात अफ़सर आख़िरकार बताता है कि टोबा टेक सिंह पाकिस्तान में है तब 'लालटेन' की जगह 'टोबा टेक सिंह एंड पाकिस्तान' आ जाता है।

कहानी की पहली पंक्ति के मुताबिक़, तबादले की यह कार्रवाई 'बँटवारे के दो-तीन साल बाद' हो रही है। अगर इस अवधि को ढाई साल मान लें तो यह 1950 का साल ठहरता है। तब तक बिशन सिंह को पागल हुए पन्द्रह साल गुज़र चुके हैं। यानी वह 1935 में पागल हुआ था। हमारे देश के इतिहास में 1935 का वर्ष 'गवर्नमेंट ऑव इंडिया ऐक्ट' के लागू होने के कारण चमकीले काले अक्षरों में लिखा हुआ है। इसी औपनिवेशिक ऐक्ट के तहत 1937 के चुनाव हुए थे, जिसके बाद बनने वाली सरकार से, ख़ास तौर पर उत्तर प्रदेश में, मुस्लिम लीग को बाहर रखने के लिए नेहरू ने कांग्रेस के दक्षिणपंथी-साम्प्रदायिक नेताओं से हाथ मिला लिया था। इस घटनाक्रम के चलते ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच की दरार अनुल्लँघनीय हो गयी थी और बँटवारे की ठोस बुनियाद पड़ी थी।

ग़ौरतलब है कि एक औपनिवेशिक विधान के लागू होने पर अपनी नींद और चैन गँवा देने वाले बिशन सिंह को एक 'राष्ट्रीय' संविधान के लागू होने के वर्ष में बलपूर्वक भारत बुलाया जाता है और उसे अपनी जान दे देने पर विवश होना पड़ता है। 1935 में शुरू हुई प्रक्रिया 1950 में परवान चढ़ती है। आज यह आसानी से कहा जा सकता है कि यह औपनिवेशिक प्रक्रिया वहीं रुकी नहीं, उत्तरोत्तर तेज़ ही होती चली गयी। हमारे नागरिक जीवन में आज़ादी जिस अनुपात में संकुचित होते-होते आज विलुप्त होने के कगार तक पहुँच गयी है, उसी अनुपात में साम्प्रदायिक बँटवारा फलता-फूलता हुआ अपने चरम की ओर बढ़ रहा है। अयोध्या 1992 और गुजरात 2002 का यही संदेश है, जिसकी रोशनी में हमें 1947 और 1950 की असलियत पर पुनर्विचार करना चाहिए।

बिशन सिंह ने अपनी अन्तश्चेतना में भाँप लिया था कि औपनिवेशिक विधान के तहत बनने वाली सरकार की प्राथमिकताएँ हमारी ज़मीनी हक़ीक़त से कम और ब्रिटिश परियोजना से अधिक प्रेरित होंगी। उसके अवचेतन से उठने वाली बड़बड़ाहट में भी उसकी इस दुश्चिन्ता के स्वर को सुना जा सकता है। उसकी पहली प्रतिक्रिया में 'औपड़ दि गड़गड़' तो उसके मनोक्षोभ को ही ध्वनित करते जान पड़ते हैं, लेकिन 'अनैक्स', 'बेध्यानाँ', 'मूँग दि दाल' और 'लालटेन' सार्थक शब्द हैं। विषम परिस्थिति का सामना होने पर उसकी अन्तर्गुहाओं (मुक्तिबोध का शब्द) से उसकी मातृभाषा पंजाबी अपने ख़ास लबो-लहजे के साथ फूट पड़ी है, जिसमें अनेक्स (anex) भी 'अनैक्स' बनकर घुलमिल गया है। उसकी अपील बेध्यानों यानी असावधान लोगों को अपनी देसी संस्कृति और विचार से जोड़ने की है, मूँग की दाल और लालटेन जिनके प्रतीक हैं। दुनियावी पाबन्दियों से मुक्त होकर उसकी अनुभूति-क्षमता इतनी बढ़ गयी है कि दिन, महीने, तारीख़ का पता भले ही न हो, पर मुलाक़ात के लिए आने वाले परिवारजन का पता उसे चल जाता है। उनके सामने भी वह यही सूत्र दुहराता है। बँटवारे के वक़्त से उसके मुलाक़ातियों का आना बन्द हो गया है, हालाँकि वह बहुत चाहता है कि वे लोग एक बार आयें और वह उनसे सही-सही जान सके कि टोबा टेक सिंह कहाँ है!

तबादले की समस्या दरपेश आने पर थोड़ी देर को वह अपनी पाकिस्तान सरकार से भरोसा जोड़ता है, लेकिन सम्भवत: यह एहसास करके कि दोनों देशों की सरकारें अगर औपनिवेशिक परम्परा की ही वारिस न होतीं तो पागलों के तबादले का तुग़लकी फ़रमान न जारी करतीं, वह इस मामले में भी आत्मनिर्भर होने के ख़याल से 'टोबा टेक सिंह गवर्नमेंट' की घोषणा कर देता है। ध्यान रहे कि पिछले पन्द्रह बरसों से अपने पैरों पर खड़ा रहते हुए उसने मित्रतापूर्ण सहयोग भले ही कभी-कभी लिया हो, लेकिन ख़ुद को किसी पर निर्भर नहीं होने दिया है। होशवालों की बेहोशी को देखते हुए उसने नींद से भी नाता तोड़ लिया है। सूजे हुए पपोटों और फूली हुईं पिण्डलियों के साथ वह अपने अहर्निश अभियान में सन्नद्ध है।

मुश्किल यह है कि टोबा टेक सिंह कहाँ है, इसका पता नहीं चल पा रहा है। फ़ज़लदीन की इस सूचना पर कि उसका परिवार हिन्दुस्तान चला गया, वह ख़ास ध्यान नहीं देता और टोबा टेक सिंह की अवस्थिति के बारे में पूछता है। उसका भ्रामक जवाब सुनकर वह दोनों सम्भावनाओं को क़ायम रखते हुए उसे फटकार देता है। आख़िरकार सीमा पर पहुँचकर जब उसे पता चलता है कि टोबा टेक सिंह पाकिस्तान में ही है, वह हिन्दुस्तान जाने से क़तई इंकार कर देता है। अपना अन्तिम क़दम उठाते हुए वह पाकिस्तान गवर्नमेंट के साथ टोबा टेक सिंह गवर्नमेंट के सहकार की घोषणा करता है, और कोई सूरत न निकलने पर दम तोड़ देता है। मंटो लिखते हैं, 'उधर ख़ारदार तारों के पीछे हिन्दुस्तान था, इधर वैसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान; दरमियान में ज़मीन के उस टुकड़े पर जिसका कोई नाम न था, टोबा टेक सिंह पड़ा था।'

उसका भी नाम लोग भूल गये थे। वह अपनी ज़मीन के नाम से जाना जाता था, अपने मुल्क के नाम से। टोबा टेक सिंह उसका देश था, जिसकी गवर्नमेंट बँटवारे को नकारती थी। इस इंकार की शिद्दत एक ख़ास तरह के जुनून की माँग करती थी, जो किसी भी फ़ैसलाकुन नतीजे पर पहुँचने के लिए ज़रूरी होता है। मंटो में यह जुनून था, और उनके रचे हुए चरित्रों में भी। लाख टके का सवाल यह है कि हमारे अपने दौर में यह जुनून किस हद तक क़ायम है।

21-के, बी.टी.सी. रोड सहोदरपुर, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)
मो.- 09450189802

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

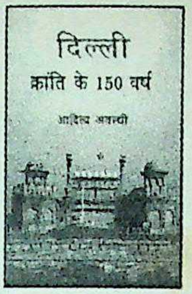

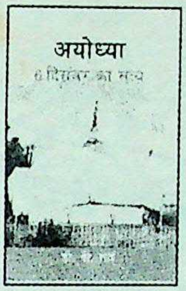

बिल्कुल अभी-अभी की पुस्तकें 2007

स्त्री विमर्श/आधी दुनिया

• प्रेम के साथ पिटाई	लवलीन	150.00
• औरत के लिए औरत (*तीसरा संस्करण*)	नासिरा शर्मा	200.00
• मैं नारी हूं - 1 (*दूसरा संस्करण*)	विष्णु प्रभाकर	200.00
• मैं नारी हूं - 2 (*दूसरा संस्करण*)	विष्णु प्रभाकर	200.00

पत्रकारिता/मीडिया

• संस्कृति, जनसंचार और बाजार	नंद भारद्वाज	200.00
• पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा (*तीसरा संस्करण*)	आलोक मेहता	150.00
• सिंहासन का न्याय (*दूसरा संस्करण*)	आलोक मेहता	250.00

विज्ञान

• नई पेटेंट व्यवस्था और भारत (*दूसरा संस्करण*)	रघुनाथ अनंत माशेलकर	200.00
• भारत के वन्य जीव विहार	शिवानन्द नौटियाल	200.00

राजनीति/इतिहास

• अयोध्या 6 दिसम्बर का सत्य	डी.बी. राय	250.00
• हिंदुत्व बनाम हिंदुत्व	कमलेश्वर	200.00
• दिल्ली क्रांति के 150 वर्ष	आदित्य अवस्थी	300.00

विविध/शिक्षा

• कर लेंगे सब हजम (*कटाक्ष*)	मृदुला गर्ग	200.00
• भारत की प्रमुख नदियां	विनोद कुमार तिवारी	200.00
• भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता	सुभाषिणी पालीवाल	200.00

उपन्यास

• आवां (*पांचवा संस्करण*)	चित्रा मुद्‌गल	500.00
• गिलिगडु (*चौथा संस्करण*)	चित्रा मुद्‌गल	150.00
• मुक्ति	एस. सागर	150.00
• एक टुकड़ा इतिहास	गोपाल उपाध्याय	250.00
• लौटेगा अभिमन्यु	विजय	200.00

कहानी

• मिट्टी से जो छूटा	संतोष तिवारी	150.00
• बचपन (*चौथा संस्करण*)	मधुसूदन आनन्द	150.00
• आखिर क्यों (*तीसरा संस्करण*)	विष्णु प्रभाकर	150.00

भारतीय पौराणिक कथाएं

• पौराणिक शब्दगाथा कोश	वीरेन्द्र शर्मा	400.00
• वेदों की श्रेष्ठ कहानियां (*पुरस्कृत*)	प्रेमाचार्य शास्त्री	150.00
• श्रेष्ठ बेताल कथाएं (*पुरस्कृत*)	महेश भारद्वाज	150.00
• स्वामी दयानंद	कविता वसिष्ठ	100.00
• स्वामी रामतीर्थ	नरेन्द्र वसिष्ठ	150.00

सभी पुस्तकों पर 20% की छूट, विस्तृत सूची पत्र एवं क्रय आदेश के लिए लिखें: फोन : (011) 23282733, 23270715

सामयिक प्रकाशन 3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

आप किसी भी पुस्तक की प्राप्ति के लिए सीधे SMS करें – महेश भारद्वाज 09811607086

SMS

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

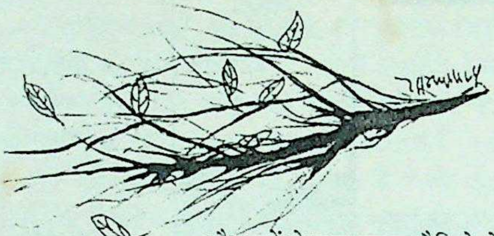

मेरे लिए

सुलतान जमील नसीम

रूपान्तर : खुर्शीद आलम

ज्वालामुखी फटा और लावा बहने लगा।
जैसे एक धमाके ने ईमारत की नींव हिला दी थी तो दूसरे ने दीवारें ढायीं और देखते-देखते ईमारत मलबे का ढेर बन गयी।

वह अपने बिखरे हुए वजूद के उस मलबे में दफ़न होकर रह गयीं। और क़ब्र में होता भी क्या है, अँधेरा क़ैदख़ाना, एकान्त— ऐसा अँधेरा तो उनकी ज़िन्दगी में कभी फैला न था कि रास्ता भी न सुझायी दे। ऐसा क़ैदखाना कि दम घुट जाये मगर साँसों का तार न टूटे और एकान्त की शिद्दत का यह आलम कि वह अपने आपको आवाज़ तक न दे सकें।

आज सुबह जब उनकी आँख खुली तो धूप छप्पर से नीचे उतर आयी थी। और अफ़रोज़ का पलँग ख़ाली था। धूप को देखकर अन्दाज़ा लगाया कि आठ बज चुके हैं, अफ़रोज़ स्कूल चली गयी होगी। इस विचार से उन्हें दुःख हुआ कि आज वह इतनी देर से क्यों उठीं! उस बावली लड़की ने तो चाय भी नहीं पी होगी। चाय का विचार आते ही उनकी नज़रें रसोई की तरफ़ गयीं। चूल्हे में आग जल रही थी और उस पर रखी हुई केतली में पानी उबल रहा था जिसकी भाप केतली की टोंटी से धुएँ की लक़ीर बनकर निकल रही थी। वह मन ही मन मुस्करायी... बेचारी, चाय पीकर जाना चाहती होगी मगर हमेशा की देर से सोकर उठने वाली इतनी सवेरे कैसे जाग सकती थी कि चाय बनाकर इत्मिनान से पीकर जाये... उन्होंने सोचा।

उठीं, चूल्हे पर से केतली उतारकर उसका पानी फेंका और दूसरा पानी लेने के लिए नहानघर की तरफ़ गयीं। घर में एक ही नल था और वह भी नहानघर में। दरवाज़ा भिड़ा हुआ था, उनके हाथ लगाते ही खुल गया और आँखों में बिजलियाँ-सी कौंध गयीं।

अफ़रोज़ नहाने के बाद खड़ी अपना पिंडा पोंछ रही थी।

दरवाज़ा खुलते ही अफ़रोज़ ने पहले तो घबराकर उनकी तरफ़ देखा फिर एकदम उकड़ूँ बैठकर छोटी-सी तौलिये से अपना जिस्म पोंछने लगी।

और जब, फिर भी वह यूँ ही बुत बनी खड़ी रहीं तो अफ़रोज़ ने मिनमिनाते हुए कहा, ''अम्मी, हटिये भी सामने से...!''

तो वह जैसे चौंक-सी पड़ीं। वहाँ से हट गयीं और जाकर अपनी चारपाई पर बैठ गयीं। अफ़रोज़ जब कपड़े पहनकर बाहर निकली तो लजायी-लजायी-सी नज़रों से उनकी ओर देखा और उन्हें बेध्यान पाकर तौलिये से झटके देकर गीले बाल सुखाने लगी।

दिन के उजाले की भाँति अफ़रोज़ का रौशन बदन देखकर उनके सामने कई समस्याएँ रात के अँधेरे की तरह उभर आयी थीं। बहुत से सवाल अफ़रोज़ के शरीर से किरणों की तरह उनके मस्तिष्क में लक़ीरें-सी खींच रहे थे। ऐसे सवाल जिनका जवाब देने के लिए उनको बहुत पहले से तैयारी कर लेना चाहिए थी। मगर वह तो सब कुछ भूलकर मशीन पर ऐसी झुकी थीं कि सुई-डोरे के अलावा उनको कुछ नज़र नहीं आया था। मगर आज, वह अपनी ज़िन्दगी के बखिये उधड़ते हुए महसूस कर रही थीं। दूसरों के जिस्म की पैमाइश के हिसाब से कपड़े सीती रहीं मगर अफ़रोज़ के बदन के बढ़ते आयतन न देख सकीं। अफ़रोज़ की जवानी इतने दबे क़दमों आयी कि वह मशीन की घड़घड़ाहट में उसके आगमन से बिल्कुल बेख़बर रहीं। उनको आज यह महसूस हो रहा था जैसे उन्होंने अफ़रोज़ को पहली बार देखा है। जैसे वह उसे जन्म के बाद भूल गयी थीं और आज वह याद आयी है।

उस दिन और उस वक़्त अफ़रोज़ ने उनसे क्या-क्या बातें कीं और उन्होंने क्या जवाब दिये, यह उन्हें बिल्कुल याद न रहा। उनका दिल और उनका दिमाग़ दोनों उनकी आँखें बन गये थे जिनमें अफ़रोज़ का जवान बदन उनके समस्त सामाजिक सरोकारों के साथ एक सवालिया प्रतीक बना मौजूद था। उन्होंने लाख कोशिश की कि कोई और बात सोचें, ध्यान किसी और तरफ़ ले जायें, विचारों का केन्द्र बिन्दु बदलें, मगर हर सोच की धुरी अफ़रोज़ थी। चलो यूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही सही। अगर आज मेरे मन मस्तिष्क पर अफ़रोज़ की जवानी बारिश बनकर बरस पड़ी है तो मैं भी इतना सोचूँगी इतना सोचूँगी कि बिल्कुल सराबोर हो जाऊँ। बल्कि इस ख़याल में डूब जाऊँ। मगर क़रार की यह राह भी बन्द निकली। उन्होंने अफ़रोज़ की उम्र का हिसाब लगाया तो वह चौदह बरस पूरे कर चुकी थी। इस उम्र में तो उनके लिए न्याज़ साहब से शादी का पैग़ाम मंजूर हो चुका था।

ज़हर का इलाज़ ज़हर है। लोहा लोहे को काटता है, बात से बात निकलती है, चिराग़ से चिराग़ जलता है। अफ़रोज़ की उम्र और जवानी के बारे में सोचते-सोचते उन्हें अपनी बातें याद आने लगीं। अपनी शादी की बात, न्याज़ की असीम चाहत, अफ़रोज़ की पैदाइश और फिर दुर्घटना में शौहर की मृत्यु। मस्तिष्क ने अतीत का वातायन खोला तो हवा के झोंकों की तरह एक शृंखलाबद्ध और क्रम के साथ सारी घटनाएँ आँखों में उतर आयीं। न्याज़ को मरे हुए चार ही साल तो हुए हैं, इस अवधि में क्या-क्या इन्क़लाब नहीं आ गये! अपने बेगाने बने। पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश बन गया। अपने ही वतन के लोग अजनबी ठहरे जब सारे सहारे टूट गये। कैम्प में भुखमरी से बचने के लिए इज़्ज़तों के सौदे होने लगे तो उस बेकसी के आलम में मजीद उनके काम आया। उनकी ख़ाला (मौसी) का वह आवारा-सा लड़का, जो मात्र इस कारण ढाका छोड़कर पश्चिमी पाकिस्तान चला गया था कि उनकी शादी न्याज़ से क्यों हो रही है! मगर उस अफ़रा-तफ़री के दौर में जब अचानक उनको मिला तो ढाँढस बँधी। वह मजीद की आवारागर्दी और कमीना स्वभाव से परिचित थीं। मगर उस प्रतिकूल अवस्था में तो वह उनके लिए अल्लाह की तरफ़ से रहमत बनकर आया था। ढाका में मजीद के चरित्र का यह पक्ष भी उनके सामने आया कि वह अपनी जान जोख़िम में डालकर बेसहारा और पीड़ित लड़कियों को एकत्र करता रहा।

मजीद की तमाम गुस्ताख़ियाँ और बदतमीज़ियाँ उनको बिल्कुल याद न आयीं बल्कि उसका आवारा स्वभाव तो अब उनके काम आया। किस तरह वह उन पन्द्रह-बीस पीड़ित लड़कियों के साथ उन्हें लेकर ढाका से काठमाण्डु पहुँचा और काठमाण्डु से कराची। इस तरह तो शायद न्याज़ भी उनको न ला सकते थे। औरंगी टाउन के एक अर्धपक्का और छोटे-से मकान में उनके रहने का बन्दोबस्त भी मजीद ने कर दिया। उन बेसहारा लड़कियों को तो एक दिन बाद ही वह किसी कल्याणकारी संस्था के सुपुर्द कर आया था।

कराची पहुँचकर मजीद के उन्मत्त स्वभाव ने फिर अँगड़ाई ली और वह अचानक एक-एक, दो-दो महीने के लिए ग़ायब रहने लगा।

हालात इन्क़लाब का शिकार तो हो ही चुके थे। मजीद की अनुपस्थिति के दिनों में जब खाने-पीने की भी मोहताजी होने लगी तो उन्होंने सिलाई का काम शुरू कर दिया। इस तरह दिन में एक वक़्त की रुखी-सूखी रोटी का सहारा हो गया। अपने होश सँभालने से अब तक की घटनाओं को वह स्थितियों की प्रतिक्रिया समझती रही थीं। मगर सबसे बड़ा इन्क़लाब जिसमें घटनाओं और परिस्थितियों का कोई दख़ल न था, ये हुआ कि दस वर्ष की बच्ची जवान हो गयी।

या अल्लाह कोई बात ऐसी भी है जो अफ़रोज़ के ख़याल की धूप के सामने दीवार बन सके?

मजीद भी तो अफ़रोज़ का बहुत ख़याल रखता है। स्कूल भी उसी के आग्रह से भेजना शुरू किया। किताबें भी उसी ने ख़रीद कर दीं और इसके बावजूद वह कभी-कभी लम्बी अवधि के लिए ग़ायब हो जाता है। फिर भी इतना कर देता है कि कहीं किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ता, वरना सिलाई तो बेवक़्त की बारिश की भाँति है, हुई हुई न हुई तो न हुई!

मजीद की मेहरबानियों की ख़ातिर, वह बहुत दिन तक अपने आपको इस बात के लिए तैयार करती रहीं कि वह उसकी हर ऊटपटांग बात सुनकर पी जायेंगी और ... और अधिक आग्रह करे तो मान भी लेंगी। मगर उसने कोई बात की ही नहीं। तो फिर उन्होंने उसको मजीद भाई कहना शुरू कर दिया।

वह अपने मस्तिष्क की राख में परिस्थितियों और घटनाओं की चिंगारियाँ कुरेदती रहीं। मगर अफ़रोज़ के उजले बदन का साया उनके ख़याल से न गया। जब अहसास की आँच मद्धिम हुई तो उनको मालूम हुआ कि अफ़रोज़ स्कूल जा चुकी है। वह उठीं, रसोई का काम समेटा और कमरे में आयीं तो पलँग पर अफ़रोज़ का मैला-सा लिबास पड़ा था जिसे वह उतारकर स्कूल का यूनिफ़ार्म पहनकर गयी थी। उन्होंने उसकी कमीज़ को कन्धों से पकड़कर उठाया तो ऐसा मालूम हुआ जैसे यह उन्हीं की है। एक बार फिर अफ़रोज़ की ख़याल ने क़ैद करके उन्हें उलझनों के कारावास में डाल दिया। अफ़रोज़ जवान हो गयी है, अब उसकी शादी की चिन्ता करनी चाहिए। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि दो-चार तो क्या दस-पाँच वर्ष में भी वह उसकी शादी की तैयारी न कर पायेंगी। फिर आज मजीद भाई से बात करनी चाहिए। अब से शादी की चिन्ता करूँ तो शायद मजीद भाई की मदद के सहारे दो-चार साल में इस ज़िम्मेदारी से निवृत्त हो सकूँ। रिश्ते की तलाश और देखभाल अकेले मेरे बस की तो बात नहीं।

अफ़रोज़ के कपड़े समेटकर उन्होंने अलगनी पर डाले। कंघा उठाकर आले पर रखा। आईना जब सीधा करके रखने लगीं तो न जाने किन

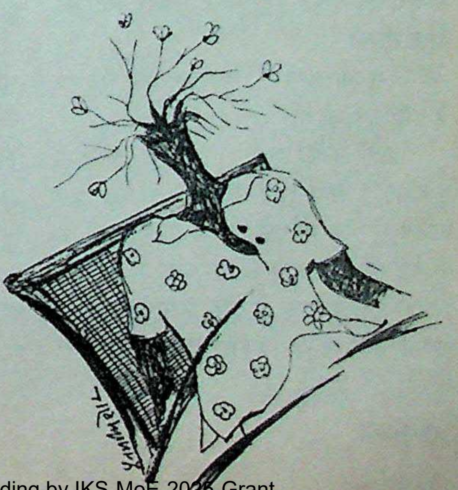

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विचारों के अधीन वह उसे लेकर आँगन में चली आयीं और बड़ी देर तक उसमें अपने चेहरे को देखती रहीं। बुढ़ापे की एक शिक़न भी तो नहीं पड़ी थी। वक़्त का ग़ुबार चेहरे पर छाया हुआ था। निरुद्देश्य वह अपने सर में बहुत देर तक सफ़ेद बाल तलाश करती रहीं। आख़िर उन्होंने अपने पागलपन से उकताकर यह सोचा कि अब से चार साल पहले तक तो शौहर उनकी तारीफ़ करते दीवाने हो जाते थे। लाख मुसीबतें सहीं हों, हज़ार कष्ट झेले हों, मगर इस अवधि में बूढ़ी तो हर्गिज़ नहीं हुई हूँ— तो फिर अफ़रोज़ जवान कैसे हो गयी?

उसी वक़्त मजीद आ गया। उन्होंने अपनी उलझनों में शरीक़ करने के लिए भूमिका बनाई "मजीद भाई, अफ़रोज़ कई दिन से बुर्क़े के लिए कह रही है।"

मजीद ने लापरवाही से कहा, "बनवा देंगे।"

"उसकी क़मीज़ें भी मसक गयी हैं।"

"वह भी बन जायेंगी।" मजीद ने उसी मुद्रा में कहा।

"मगर मजीद भाई, मैं कहती हूँ क्या यह लड़की कुछ दिन और बिना बुर्क़े के गुज़ारा नहीं कर सकती! हमको अब जो कुछ करना तो उसकी शादी के लिए करें।"

"शादी! किसकी शादी? ...अफ़रोज़ की? अरे उसके लिए तो मैं न जाने क्या-क्या सोचे बैठा हूँ।"

वह ख़ामोश रहीं कि मजीद शायद और कुछ कहे।

मगर थोड़ी देर बाद मजीद ने बिल्कुल ही विषय से अलग सवाल कर डाला, "आपा, तुम महीने भर में कितनी सिलाई कर लेती हो?"

उन्होंने आश्चर्य और दुविधा भरे अन्दाज़ में मजीद को देखते हुए कहा, "यही कोई सौ, सवा सौ की!"

"इस आमदनी में क्या तुम दोनों पेट भर कर खा सकती हो?"

"कहाँ मजीद भाई...!" उनके लहजे में कृतज्ञता के साथ दुःख भी सिमट आया, "इस ज़माने में जब महँगाई सर से गुज़र चुकी है, सिलाई की आमदनी से पेट कहाँ भर सकता है! वह तो अल्लाह ने तुम्हें फ़रिश्ता बनाकर भेज दिया है जो यह चाहारदिवारी भी मयस्सर हो गयी। घर में दो बर्तन भी तुम्हारी बदौलत नज़र आ रहे हैं।"

"और अगर मैं हाथ खींच लूँ तब?"

तब याचनापूर्ण नज़रों से मजीद की तरफ़ देखते हुए कहा, "तो भुखमरी की नौबत आ जाये। अफ़रोज़ को स्कूल से उठाना पड़े। मगर मजीद भाई, आज तुम ये सब बातें क्यों...?"

"बात ये है आपा... अब मैं थक चुका हूँ। पन्द्रह साल पहले मैंने ढाका छोड़ा। अपना घर छोड़ा। तब से दिन-रात मेहनत कर रहा हूँ। पहले तो अकेला था, रुखी-सूखी खाकर गुज़ारा कर लेता था। लेकिन तुम लोगों के आने के बाद... मुझे हमेशा फ़िक्र रहती है। मैं चाहता हूँ मेरी फ़िक्रों में कोई शामिल हो। कोई मेरा हमख़याल हो। इसलिए आज ये बातें तुमसे कह रहा हूँ। अगर तुम मेरा साथ दो, मेरे कहने पर अमल करो, तो घर में चार पैसे भी हों और अफ़रोज़... जिसके खाने-पीने के यही दिन हैं, उसकी भी इच्छाएँ पूरी हों। फिर उसका दहेज़ भी जमा हो जाये। किसी बड़ी जगह शादी कराने का भी ज़िम्मा लेता हूँ। बड़े-बड़े दौलतमन्द पड़े हैं कराची में।"

वह बहुत एकाग्र और ध्यान से मजीद की बातें सुन रही थीं। तो क्या इतने दिन बाद मजीद वह बात कहने वाला है, जिसको सुनने का हौसला उन्होंने पाकिस्तान आते ही अपने अन्दर पैदा कर लिया था? लेकिन तब तो मजीद के रवैये ने उस उत्साह को सन्देहास्पद बनाकर अपने लिए मजीद भाई का ख़िताब स्वीकार कर लिया था।

तो क्या इतने दिन बाद...?

अपने छोटे क़द की चाहारदिवारी वाले मकान में उनको मजीद का साया फैलता नज़र आया।

अपना अतीत और वर्तमान... अफ़रोज़ का भविष्य। लम्हों की बारिश, क्षणों का फ़ैसला। उन्होंने बड़े थके से लहज़े में कहा, "जो तुम कहो मजीद... भाई। आज से तो अफ़रोज़ मुझे अपने सीने पर रखा बोझ मालूम होने लगी है। उसकी ख़ातिर... जो कहो तुम..."

"अरे यह बोझ एक दिन में हल्का हो जायेगा..."

"ठीक है।"

"बात ये है, आज मेरी मुलाक़ात एक आदमी से हुई। बहुत बड़ा रईस है शहर का। उसने शायद स्कूल जाते हुए अफ़रोज़ को देखा है। आज ही उसने मुझे बुलाकर अपनी राम कहानी सुनायी— तो भई, मैं तो ज़बान दे आया हूँ।"

"ज़बान?"

"हाँ, मैंने हामी भर ली है।"

"भला मैंने उसे देखा न भाला और तुम..."

"इसमें देखने भालने की क्या बात है! दस हज़ार देने को तैयार है।"

"दस हज़ार ... वह क्यों?"

मजीद उनकी बात उचककर तेज़ी से बोला, "सिर्फ़ एक रात के लिए। अब अफ़रोज़ को राज़ी करना तुम्हारा काम है।"

पहले तो उनकी समझ ही में न आया कि उन्होंने सुना क्या है। यह शब्द हैं या अँगारे हैं! यह मजीद के होंठों ने कोई बात उगती है या ज्वालामुखी के मुख से लावा उबला है। मगर जब समझी तो दिल बैठ गया। ईमारत ढह गयी। आज ही तो उनको अफ़रोज़ की जवानी का एहसास हुआ था और आज ही उस पर बोली लगा दी गयी। पहले अफ़रोज़ को देखकर आँखें रोशनी से चकाचौंध हुई थीं। तो अब मजीद ने इतने अँधेरे उछाल दिये कि दुनिया आँखों में अँधेरी हो गयी। एक धमाके ने उनके ख़यालों को उथल-पुथल कर डाला था तो दूसरे ने ज़मीन फाड़ दी थी।

"क्या सोच रही हो...? दौलत बार-बार दरवाज़े पर दस्तक नहीं देती।"

मजीद के अगर इतने एहसान आड़े न आ गये होते तो उन्होंने उसका मुँह नोंच लिया होता।

मगर जब शब्द ज़बान पर आये तो हिक़ारत व नफ़रत के रास्ते से गुज़र कर आये।

"मुझे... तुमसे... तुझसे यह उम्मीद न थी! तू तो आस्तीन का साँप निकला कमीने... नहीं चाहिए हमें तेरा सहारा... नहीं चाहिए तेरी दौलत। अपने यह शैतानी ख़यालात लेकर निकल जा... अब्भी मेरे घर से..."

उन्हें ख़बर नहीं कि मजीद फिर कब गया और क्या कहता हुआ गया। वे तो आग के घेरे में थीं। सारे वजूद में आग फैली हुई थी। यह बात तो उन्होंने कभी सोची भी न थी।

इस रास्ते की तरफ़ तो उनका ख़याल भटक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर भी नहीं गया था। इधर की दुनिया उधर हो जाये ऐसा मुमकिन ही नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता। ढाका के कैम्प में बीती हुई एक रात मंडराती हुई न जाने कहाँ से वजूद में फैली हुई उस आग के कारागार में चली आयी... वह रात... भूख... पेट के अन्दर दहकते हुए शोले... अफ़रोज़ के होंठों पर जमी हुई पपड़ियाँ... आँखों में अटका हुआ दम... हवा... घुटन... शोले... राख... फैला हुआ हाथ... मुड़े हुए नोट... ओह मेरे ख़ुदा... क्या उस रात की सुबह ये है! सज़ा जुर्म की होती है, मजबूरी की तो नहीं! फिर मेरे साथ, ये सब क्यों... किसलिए...?

उस रात वह पिछले पहर तक रोती रहीं। इज़्ज़त व ईमान की सलामती के लिए दुआएँ करती रहीं। मगर अफ़रोज़ का भविष्य... दुआ के लिए फैले हाथों पर रखा नज़र आता रहा...

एक महीना बीता... कई महीने बीते। अफ़रोज़ ने बार-बार पूछा, ''मजीद मामूँ क्यों नहीं आते हैं! आप मुझे स्कूल क्यों नहीं भेजती हैं... सिलाई भी कम आ रही है। आप मजीद मामूँ को ख़बर तो कीजिए... मुझे बुर्क़ा नहीं चाहिए, मुझे फीस नहीं चाहिए... मगर मुझे खाना तो चाहिए...।''

उस दिन वह बुर्क़ा सर पर डालकर मजीद की तलाश में निकलीं।

जब वह आया तो उन्होंने नज़रें झुकाकर कहा, ''मैं अकेली होती तो ख़ुदकुशी कर लेती... लेकिन बेटी का साथ है। मैं उस जहन्नुम में जाने को तैयार हूँ, जिसका दरवाज़ा तुमने खोला है... जाओ... तुम सौ पचास में किसी से बात कर लो।''

मजीद ने ऐसी नज़रों से देखा जैसे उनके होशोहवास पर शक़ कर रहा हो। फिर चहकते हुए कहा, ''सौ-पचास...! अरे आपा, सौ-पचास तो हम हर रोज़ अफ़रोज़ के सदक़े में उतारा करेंगे।''

उन्होंने पहली बार मजीद की नज़रें में नज़रें गाड़ के तने हुए लहज़े में कहा, ''ग्राहक अफ़रोज़ के लिए नहीं आयेगा।''

''तो फिर...?''

''मेरे लिए!''

पुस्तक केन्द्र

नये प्रकाशन (चयन)

1. सोबती-वैद संवाद (लेखन और लेखक), कृष्णा सोबती : कृष्णबलदेव वैद, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-2, मूल्य : 300 रुपये।
2. दस बरस का भँवर (उपन्यास), लेखक-रवीन्द्र वर्मा, प्रकाशक-वही, मूल्य : 200 रुपये।
3. 1857 : अवध का मुक्ति संग्राम (इतिहास), लेखक- अखिलेश मिश्र, प्रकाशक-वही, मूल्य : 200 रुपये।
4. शुद्धिपत्र (उपन्यास), लेखक-नीलाक्षी सिंह, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-3, मूल्य : 145 रुपये।
5. सनातन बाबू का दाम्पत्य (कहानी), लेखक-कुणाल सिंह, प्रकाशक-वही, मूल्य : 120 रुपये।
6. दूबधान (कविता), लेखक-अनामिका, प्रकाशक- वही, मूल्य : 140 रुपये।
7. खाली कोना (कविता) ले. हरिओम राजोरिया, प्रका. वही, मूल्य : 75 रुपये।
8. क्रमभंग (संस्मरण/ साहित्य-चर्चा) लेखक : नन्दकिशोर नवल, प्रकाशक-शिल्पायन, 10295 लेन नं.1, वेस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32, मूल्य : 225 रुपये।
9. निबन्धों की दुनिया : मुक्तिबोध, प्रधान-संपादक- निर्मला जैन, सं.-कृष्णदत्त शर्मा, मूल्य : 250 रुपये।
10. डायरी : अन्तर्जीवन के साक्ष्य, संपादक हिमांशु जोशी, प्रका.-किताबघर, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-2, मूल्य : 200 रुपये।
11. शेष अखिरी पृष्ठ पर (उपन्यास), लेखक-विलास गुप्ते, प्रकाशक- ज्ञान भारती, 4/14 रूपनगर, दिल्ली-110007, मूल्य : 150 रुपये।

पत्रिकाओं में उल्लेखनीय रचनाएँ

1. पिता के मामा के यहाँ (लम्बी कहानी), लेखक-देवी प्रसाद मिश्र, तद्भव, जनवरी 07
2. कितने शहरों में कितनी बार : दिल्ली (वृत्तांत), लेखक-ममता कालिया, वही।
3. 1857 का मिथक और विरासत : एक पुनर्पाठ, लेखक- वीरेन्द्र यादव, वही।
4. एक दिन मन्ना डे (कहानी), लेखक-कुमार अंबुज, नया ज्ञानोदय, जनवरी 07
5. हाल-चाल (कविता), लेखक- बोधिसत्व, वही।
6. रामवचन भगत (कविता), लेखक- जितेन्द्र श्रीवास्तव, वही।
7. एक कहानी यह भी (आत्मकथ्य), लेखक- मन्नू भंडारी, कथादेश, जनवरी 07
8. सत्यमेव जयते (कहानी), लेखक-मो.आरिफ, हंस, फरवरी 07
9. कच्ची दारू के दिन और वे बस्तियाँ (संस्मरण), लेखक-हरिपाल त्यागी, वही।
10. स्वयं प्रकाश के सठियाने पर (संस्मरण), ले.-रमेश उपाध्याय, संबोधन, जन.-मार्च 07
11. एक कवि का रिटायरमेंट : सन्दर्भ सकलदीप सिंह, ले.-अभिज्ञात, अक्षरपर्व, अक्तूबर 06
12. हिन्दी ग़ज़ल का परिदृश्य (लेख), ले.- ज्ञानप्रकाश विवेक, आधारशिला, वार्षिकांक 2006
13. गली गवाह थी (लम्बी कहानी), ले.-एन्तोन चेख़व, अनुवाद-अजात शत्रु, पहल, पुस्तिका, सम्पर्क-101, रामनगर, आधारताल, जबलपुर-482004, मूल्य : 20 रुपये।
14. अठारह सौ सत्तावन की राज्यक्रांति : विचार और विश्लेषण, लेखक- कर्मेन्दु शिशिर, पहल पुस्तिका, संपर्क-वही, मूल्य : 20 रुपये।

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नयी कहानी की नयी औरत

अली अहमद फ़ातमी

रूपान्तर : अब्दुल मोहयी

नये अफ़साने के इन दिनों क्या विषय हैं और उनकी दिशा और दशा क्या है— इस पर बहुत लिखा जा रहा है। मैंने भी अपने कुछ लेखों में इस तरह की बातें की हैं लेकिन इस वक़्त जी चाहता है कि उस विषय का ज़िक्र करूँ जिसका उर्दू के नये अफ़साने से रिश्ता ज़रा कम ही है। और वह विषय है औरत, दूसरे शब्दों में स्त्री विमर्श। स्त्री विमर्श का ज़िक्र हो और रशीद जहाँ, इस्मत चुग़ताई का ज़िक्र न हो यह मुमकिन नहीं। इन दोनों ने जो कुछ भी लिखा वह उससे पहले तो क्या, बाद की औरतें भी उस अन्दाज़ से लिखने की हिम्मत न कर सकीं। दोनों का मुल्क और समाज और ख़ासकर पुरुष प्रधान समाज से गहरा और सीधा रिश्ता था। वह जितना औरतों के मनोविज्ञान और समस्याओं पर गिरफ़्त रखती थीं कम ज़्यादा उतना ही मर्दों से भी। रशीद जहाँ की कहानी 'सौदा' को सिर्फ़ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित और इस्मत की 'लिहाफ़' को भी इसी श्रेणी का शाहकार कहते हैं लेकिन उस अफ़साने में मर्द किरदार की औरत के प्रति संवेदनहीनता और लापरवाही से कम जोड़ पाते हैं। शिम्मन का किरदार ठोकरें खाकर लाजवाब तो बनता है लेकिन बाप के होते हुए वह यतीम-सा क्यों है? यह समस्या ज़्यादा ग़ौरतलब है और इससे ज़्यादा ग़ौरतलब है इस्मत का पितरस के लफ़्ज़ों में हिम्मत तजरबा, गहरी निगाह, जिसकी वजह से वह घर के अन्दर का ही नहीं लिहाफ़ के अन्दार का माहौल भी पेश करने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं महसूस करतीं। इस्मत को सिर्फ़ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और मुस्लिम औरतों तक सीमित करना मुनासिब नहीं। उन्होंने समाज के विभिन्न विषयों, वर्गों पर बहुत कुछ लिखा। 'जड़ें', 'काफ़िर', 'दो हाथ', 'चौथी का जोड़ा', 'हिन्दोस्तान छोड़ दो' जैसे अफ़साने उनके गहरे समाजी और वर्गीय समझ की बहुत अच्छी मिसालें हैं। इस्मत की वजह से पहली बार हिन्दोस्तान की वास्तविक औरत ने अपना रूप देखा और दिखाया और उसकी वास्तविक समस्याएँ सामने आयीं। हर तरह की औरतें अपनी-अपनी कहानी कहती नज़र आयीं। औरतों के इतने रूप और ऐसे रूप इस्मत से पहले उर्दू अफ़साने में कहाँ थे? शायद इस्मत की हिम्मत का ही नतीज़ा रहा होगा और आगे बढ़कर कृशन चन्दर ने 'कश्मीर की आम औरत', बेदी ने 'पंजाब की औरत' और जीलानी बानो ने 'दकन की औरत' के विभिन्न रूप बड़े दर्दमन्दाना और कलात्मकता से पेश किये। और अगर औरत के इतने तहज़ीबी और सकाफती रंगा-रंग रूप न होते तो शायद कुर्रतुलऐन हैदर हिन्दुस्तान की इसी औरत को इतिहास एवं संस्कृति के हवाले से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ला खड़ा करने में कामयाब न हो पातीं। न ही 'चम्पा' से लेकर 'चाँदनी बेग़म' के हवाले से हिन्दोस्तान की संस्कृति को खंगाल पातीं। कुर्रतुलऐन हैदर ने अपने चिन्तन एवं दर्शन और कलम की ताक़त से औरत के किरदार को एक मर्यादा दी। उसे पुनर्जीवित किया। जात-पाँत और देश-काल की सारी हदें तोड़ दीं।

इस्मत और कुर्रतुलऐन हैदर की महानता, लोकप्रियता, तरक्की और बदलाव ने औरतों के पैर खोले। औरत अफ़सानानिगारों की एक बड़ी संख्या सामने आयी जिसने अपने-अपने अन्दाज़ से सिर्फ़ औरत को ही नहीं देखा बल्कि पूरे समाज को अपनी आँखों में समोया और फिर उस बदलते हुए समाज में बदलती हुई औरत की हैसियत को तलाश करना चाहा। इसलिए इस दौर में भी औरत तरह-तरह के रूप और समस्याएँ लिये अपनी पहचान और रोल तलाश करती रही। और साथ ही उर्दू अफ़साने को मालामाल करती रही। अगर एक तरफ़ कुर्रतुलऐन हैदर औरत को ऊँचाई पर ले गयीं तो दूसरी तरफ़ हाजरा मसरूर, खदीजा मस्तूर, जमीला हाशमी, रज़िया सज्ज़ाद ज़हीर, सालिहा आबिद हुसैन, जीलानी बानो, आमिना अबुलहसन वग़ैरह ने ज़मीन पर निगाहें जमाये रखीं, जहाँ औरत उस वक़्त भी कश्मकश और परेशानी का शिकार थी। अच्छी बात यह हुई कि औरत सिर्फ़ औरत के द्वारा ही नहीं बल्कि मर्द कहानीकारों के द्वारा भी अपने सम्पूर्ण मनोविज्ञान, पसन्द, कला एवं संस्कृति, प्रेम और परेशानी— गरज़ कि हर स्तर पर उर्दू अफ़साने के परिदृश्य में उपस्थित होती रही। उसके मिज़ाज में माँ, बीवी, बहन, तवायफ़, नायिका गरज़ कि हर शक़्ल में उर्दू अफ़साने में औरत अपने पूरे इस्तेज़ाज के साथ तखलीक़ी सफ़र में रवाँ-दवाँ रही और तखलीक़ का यह अमल, यह सफ़र बिलकुल स्वाभाविक था। अगर तहरीक निस्वाँ (स्त्री आन्दोलन) या तरक्की पसन्द तहरीक़ वग़ैरह न भी होतीं तब भी औरत का इन्सानी वजूद और उसकी फितरी तबीयत अपनी अभिव्यक्ति के लिए इससे कम बेचैन न होती क्योंकि समाज और मर्द दोनों औरत के बग़ैर अधूरे हैं और वह इन दोनों के लिए बहुत ज़रूरी है।

फिर क्या हुआ कि नये उर्दू अफ़साने से औरत अचानक ग़ायब हो गयी। क़रीब-क़रीब हर सतह पर। माकूल और संजीदा औरत कहानीकारों की तादाद घट-सी गयी। अफ़सानों में औरत की समस्याएँ ग़ायब हो गयीं और औरतों के किरदार भी तक़रीबन ग़ायब। अफ़साने के मरकज़ी किरदार (केन्द्रीय पात्र) और ख़्याल से लगभग कटी हुई औरत दूर न जाने कहाँ गुम हो गयी जबकि आम ख़्याल है कि उर्दू अफ़साना अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज़्यादातर शक्लों में काफी आगे बढ़ा है। इस बात में भला किसे शक़ हो सकता है कि नया उर्दू अफ़साना अपने शऊर-व-आगही, बेदारी, बारीकबीनी और फन्नी चाबुकदस्ती के ऐतबार से काफी मज़बूत हुआ है। इन दिनों जो नये अफ़साने लिखे जा रहे हैं उनके विषय, उनकी रचना तकनीक, उनकी कलात्मक पेशकश, समाज और सियासत के प्रति उनकी गहरी वाकफियत (जानकारी) और उससे दर्दमन्द जुड़ाव का साफ़ अन्दाज़ा होता है। आज का समाज जिन हालात से दो चार है उसके जो अहम मसाएल हैं— कट्टरपंथ की समस्या, असुरक्षा का एहसास, बिखरते हुए मानवमूल्य, रेज़ारेज़ा होती इन्सानियत, दिशाहीन होती राजनीति, या रिश्वत का जाल, फ़रेब, धोखा, लूट-मार, क़त्ल व ख़ून— यह सब आज के समाज का हिस्सा हैं और अफ़सानानिगारी भी इसी का हिस्सा। इसलिए वह बड़ी शिद्दत, हिद्दत और नज़ाकत के साथ अपने फन और फर्ज़ का इज़हार कर रहा है। लेकिन इस मौजूदा समाज में जिस तरह इन्सान पिस रहा है, कीड़े-मकोड़ों की तरह मर रहा है, औरत भी बराबर से पिस रही है और मर रही है। ऐसा इसलिए भी कि पहले के मुक़ाबले आज के समाज की औरत ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं में बराबर से शरीक़ रही और अब भी बराबर की हिस्सेदार है। ज़िन्दगी के हर मक़ाम पर— घर हो या बाहर, दफ़्तर हो या कॉलेज, अस्पताल हो या रेलवे स्टेशन— औरत हर जगह है। बीते दिनों किसी बहस में हिस्सा लेती हुई एक महिला ने कहा— कल औरत घर में थी, तो एक समस्या थी आज घर से बाहर है तो हज़ार समस्याएँ पैदा हो गयी हैं। आज वह हर जगह मौजूद तो है लेकिन हर मक़ाम पर मर्द से ज़्यादा असुरक्षित, कमज़ोर और शोषित। कुछ तो उसकी अपनी जात की समस्याएँ हैं जो कल भी थीं और आज भी हैं। पैदाइश, तालीम, शादी, जहेज़ और सबसे बढ़कर उसकी इज़्ज़त और मर्यादा की समस्याएँ। कुछ आज के मौजूदा समाज की समस्याएँ हैं जिनसे मर्द भी दो-चार हैं और उससे ज़्यादा औरत; इसलिए कि वह अक्सर अपने देवता समान पति की कहर भरी नज़रों की तेज़ी और अज़ाब का भी शिकार रहती है। औरत कल क़ैद के शिकंजे में थी और आज भी आज़ाद होकर कुछ कम लाचार और बेबस नहीं है। कहीं रिवायत (परम्परा) की मारी हुई, कहीं आधुनिकता की शिकार, कहीं अशिक्षा एक लानत। पढ़-लिखकर और पुरुष प्रधान समाज में दाख़िल होकर मर्द के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ने के मामलों में उसका औरत होना हज़ार लानत की शक्ल अख़्तियार कर लेता है। गरज़ कि समाज के ताज़ातरीन स्क्रीन पर औरत मर्द के बराबर और समस्याओं में उससे ज़्यादा नहीं तो उससे कम भी शरीक़ नहीं।

कहा जाता है कि हर दौर का अपना एक समाज, माहौल होता है और हर समाज, माहौल का अपना एक ख़ास मिज़ाज और मज़ाक और इसी का अक्स अदब के आईने में नज़र आता है। इन दिनों समाज की जो तरक्कियाँ और ख़राबियाँ हैं, उसने रूमान परवर जज़्बे को बहुत दूर कर दिया है। समस्याएँ इतनी गम्भीर और ज़िन्दगी इतनी पेचीदा हो गयी हैं कि ग़ालिब की तरह अपने महबूब की यादों में खोये रहने की अब किसी को फ़ुर्सत नहीं। ख़ुद उर्दू शायरी का माशूक़ रूठ गया है और वह भी अपने आँचल को परचम बनाकर ज़िन्दगी के प्रतिरोधी और इन्तेक़ामी रवैये में बराबर से शरीक़ है। आज की औरत बक़ौल मोहम्मद हसन, प्यार और आम इन्सानी ज़िन्दगी के दर्द व दाग़, ख़्वाहिशों से भरी है। वह भी भटक सकती है; उस पर भी परेशानियों के पहाड़ टूट सकते हैं और इन मक़ामात पर भी उसे दूसरे इन्सानों की तरह देखा और समझा जाना चाहिए। लेकिन क्या उर्दू का नया अफ़साना औरत को यह मोहब्बत, ओहदा और अहमियत दे रहा है? शायद नहीं।

इसका एक मुख़्तसर-सा जवाब तो शायद यह हो सकता है कि आज के नफ़रत और तशद्दुद भरे माहौल में, साम्प्रदायिकता के माहौल में, तेज़-रफ्तार ज़िन्दगी में जब आम इन्सान कीड़े-मकोड़े की तरह मारा या मसला जा रहा है तो ऐसे में क्या मर्द और क्या औरत! बात बड़ी हद तक दुरुस्त भी है, लेकिन जब समस्या आम इंसान और इंसानियत की है तो इसमें मर्द और औरत दोनों ही आते हैं। औरत जिस तरह ज़िन्दगी में बराबर की शरीक़ है, मौत में भी उतनी ही हिस्सेदार। मर्द की तो एक मुसीबत, लेकिन औरत फसाद और आतंक से बची तो जला दी गयी, उससे बची तो उसकी इज़्ज़त लूट ली गयी। घर में शौहर का गुस्सा, दफ़्तर में अफ़सर की कहर ढाती निगाहें। सड़क, रेल, बस वग़ैरह पर शरीफ़ज़ादों की हवस— गरज़ कि समस्या ही समस्या! इस भीड़ और अज़ाबों के इस अन्तहीन सिलसिले ने औरत को जगाया भी है और एक नयी औरत को जन्म भी दिया है। अब वह इन अज़ाबों और दुखों को सिर्फ़ अपना मुक़द्दर नहीं समझ रही है। बल्कि इनके ज़रिये ज़िन्दगी और क़ायनात को समझने की कोशिश कर रही है। वह मर्दों को भी दुखी देख रही है और दुख को ही क़ायनात का मरकज़ महूर पाकर अपने औरत होने का दुख भूल गयी है। इसीलिए अकसर पढ़ी-लिखी औरतें इकहरे क़िस्म के दुख को नज़रअन्दाज़ करके बड़े दुखों को दूर करने की मिली-जुली कोशिश में शरीक़ नज़र आती हैं। कुछ तो और आगे बढ़कर ज़िन्दगी के तबस्सुम के फलसफियाना तसव्वुर में ज़म करके इसे फिक्र व फलसफा का भी रूप दे देती हैं।

उर्दू क्या ज़्यादातर ज़बानों— ख़ासकर हिन्दी के कहानी साहित्य की सूरतेहाल उर्दू के मुक़ाबले ख़ासी अलग है। हिन्दी के कहानी परिदृश्य पर इन दिनों बड़ी-बड़ी महिला कहानीकारों का कब्ज़ा है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृणाल पांडे, ममता कालिया, पद्मा सचदेव, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, नीलाक्षी सिंह वग़ैरह ने इन दिनों हिन्दी कहानी में तहलका मचा रखा है और पुरुष कहानीकारों की नींदें हराम कर रही हैं। ऐसा नहीं है कि ये औरतें सिर्फ़ औरतों के ही समस्या पर लिख रही हैं बल्कि आगे, बहुत आगे जाकर हिन्दोस्तान के विभिन्न आन्दोलन और अलगाववाद, साम्प्रदायिकता, आरक्षण जैसे विषय पर अफ़साने लिखकर अपनी जागरूकता और एक ख़ास चिन्तन एवं दर्शन का सुबूत पेश कर रही हैं। कृष्णा सोबती की कहानी 'ऐ लड़की', नासिरा शर्मा की 'सबीना के चालीस चोर', सुधा अरोड़ा की 'काला शुक्रवार', क्षमा शर्मा की 'दादी माँ का बटुआ', ममता कालिया की 'आपकी छोटी लड़की', अनिता गोपेश की 'टैडी बियर', नीलाक्षी सिंह की 'परिन्दे का इन्तज़ार-सा कुछ' वग़ैरह और भी कहानियाँ हैं। सिंधी, मराठी और पंजाबी में भी और अब तो सूरत यह है कि इन ज़बानों में, यहाँ तक कि दलित साहित्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में भी बाक़ायदा स्त्री विमर्श के नाम के तहत एक दबिस्तान खुल गया है। ममता कालिया ने पूरी सदी की मुमताज़ महिला कहानीकारों की सूची और अफ़सानों को शाया (प्रकाशित) करके एक नयी बहस शुरू कर दी है। 'हंस' और 'पहल' जैसी अहम स्तरीय पत्रिकाएँ स्त्री विमर्श पर पूरे-पूरे अंक और किताबें प्रकाशित कर रही हैं। इन पत्रिकाओं में सिर्फ़ औरतों के अफ़साने या शायरी नहीं है बल्कि शोधपत्र, विचार और बहसों की गूँज है। एक नयी सोच है और औरत की नयी तलाश और नये-नये सवाल भी। मिसाल के लिए अगर मर्द कई औरतों से सम्बन्ध बना सकता है तो औरत क्यों नहीं? शादी अगर एक मुकद्दस सरोकार है तो इस तकद्दुस की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ औरत पर ही क्यों? दलित औरतों के हवाले से तो बाक़ायदा एक आग सुलग रही है जिसकी रोशनी से एक अलग दरवाज़ा रोशन है, जिसके सिलसिले सिर्फ़ स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और जज़्बात तक महदूद नहीं बल्कि तहज़ीब और समाज तक फैले हुए हैं। और साफ़ कह रहे हैं कि औरत अब सिर्फ़ यूज़ ऐंड थ्रो की चीज़ नहीं रह गयी है बल्कि अपना हक़ और आरक्षण की माँग कर रही है। और आधी दुनिया पर कब्ज़ा करने के बारे में सोच रही है। अब वह सिर्फ़ दाल और चीनी की तरह कोई ज़ायकेदार चीज़ नहीं, बल्कि ज़िन्दगी और समाज की एक ऐसी धुरी है जिस पर पूरी क़ायनात टिकी हुई है। पहले औरत फ़ना होने पर इज़्ज़त और फख्र महसूस करती थी लेकिन आज की जागरूक औरत फ़ना से बका (बचे रहना) की तरफ़ सफ़र करने पर अड़ी है। और बका के सारे मोर्चे पर मर्दों के साथ मेहनत, दुख और संघर्ष में बराबर से शरीक़ है। वह अपने जिस्म की नज़ाकत का नहीं, अपनी मेहनत और सलाहियत (विशेषता) का सौदा करना चाहती है। बिखराव में जुड़ाव, दुःख में सुख और समर्पण के नये-नये ज़ायके से आशना (परिचत) हो रही है। ज़ाहिर है कि यह बदलाव और विचार ऐसे ही जन्म नहीं लेते। इसकी पृष्ठभूमि में पूरी दुनिया में औरत का बदलता हुआ तसव्वुर, बदलती हुई तहज़ीब और बदलती हुई आर्थिक और सामाजिक सूरते हाल है। हिन्दोस्तान में महिला लेखिकाओं, शायर और अदीब के अलावा भी मेधा पाटकर, किरण बेदी, अरुंधति राय, शबाना आज़मी, तीस्ता सीतलवाड़, गरज़ कि सोनिया से सानिया तक ने अपनी मेहनत और बलिदान के ज़रिये मंज़र बदलकर रख दिया है। वह दुनिया में फैले हुए बाज़ारवाद के ख़िलाफ़ भी नारे लगा रही हैं। तिजारत और प्रचारवाद के ख़िलाफ़ मुहिम भी चला रही हैं। ज़ुल्म व जब्र के ख़िलाफ़ नफ़रत व बेज़ारी है जिसकी वजह से ज़ेहन में ग़ैरमामूली तब्दीली आयी है। हिन्दी की यह कहानियाँ दुख-करुणा, सब्र-त्याग, प्रतिरोध के नये-नये रूप पेश करती नज़र आती हैं। ममता कालिया ने बड़े विश्वास से कहा— 'इस दौर की कहानी रचना में महिलाओं ने उस तरह कमान सम्भाल रखी है जिस तरह वह दूसरे मोर्चे सँभालती हैं। इस बड़ी स्वीकार्यता के लिए उन्हें लम्बा संघर्ष करना पड़ा। महिला लेखन को आमतौर पर हाशिये का लेखन माना गया। हाशिये और कोष्ठक से निकालकर उसे केन्द्र में लाने के लिए पिछली पीढ़ी की महिला कहानीकारों ने बेहद मेहनत की। आज औरतों का अदब केन्द्र में है। यह दर्जा जागरूकता और होशमन्दी की वजह से मिला है।'

मेहनत तो उर्दू की मौजूदा अफ़सानानिगारों ने भी बहुत की। रशीद जहाँ, मुमताज़ शीर, इस्मत चुग़ताई, कुर्रतुलऐन हैदर के नाम ख़ास तौर से लिए जा सकते हैं। और उर्दू कहानी का समाज भी लगभग वही है जो हिन्दी का है। वही समाज, वही समस्याएँ, वही मर्द। औरत की मोहब्बत और नफ़रत सब कुछ वही। औरतें लिख भी रही हैं। अच्छे ख़ासे नाम भी हैं, जैसे—ज़किया, फरहत जहाँ, कमर जहाँ निगार अज़ीम, तरन्नुम रियाज़, सरवत जहाँ, ग़ज़ाल ज़ैग़म वग़ैरह। इन सबके खुलूस और मेहनत पर शक़ भी नहीं किया जा सकता है और उनके बाज़ अफ़साने मुतास्सिर भी करते हैं और औरत की समस्याओं को नये दृष्टिकोण से पेश भी करते हैं। मैंने उनके नयेपन और ताज़गी के बारे में कई बार लिखा भी है। फिर भी यह स्वीकार करते हुए तकल्लुफ़ तो हो रहा है लेकिन ग़ालिबन सच यही है कि उनमें वह आगही और वसीरत, हरकत और हरारत नहीं है जो हिन्दोस्तान के दूसरे अदब में नज़र आती है। यहाँ अक्सर बस औरत ही नज़र आती है और एकपक्षीय प्रतिरोध की अफसुर्दा-सी पेशकश है जबकि मंज़र पूरे तौर पर मायूसकुन और नकारात्मक नहीं है। यह अफसुर्दगी कभी-कभी ताज़गी में बदलती तो है, लेकिन इसमें कोई बड़ी फिक्र या तहरीक़ नज़र नहीं आती।

बीते दिनों उर्दू के विभिन्न संस्थानों ने औरत के उर्दू अदब पर बड़े-बड़े सेमिनार भी किये लेकिन मालूम के मुताबिक़ यहाँ अकादमिक स्तर की बहसें ज़्यादा रहीं। मर्द आलोचक और बुद्धिजीवी तो स्त्री विमर्श और मानवता के फर्क को स्पष्ट करने में मसरूफ़ रहें और औरतें पुरुष-प्रधान समाज की शिक़ायत करती रहीं। एक महिला ने जोश और जज़्बे में यह मिस्रा पढ़ दिया, 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी!'

प्रोफेसर काज़ी अफ़ज़ल हुसैन ने दिलचस्प बात लिखी है— 'औरत बयान की गिरफ़्त में आ सकने वाली चीज़ नहीं। स्त्री विमर्श के बाज बेहद अहम नज़रियासाज़ों के नज़दीक औरत को ठीक-ठीक बयान करना या उसके गुण और इम्तियाज़ात को मुतअय्यन करना नामुमकिन है।' यह ख़्याल उन्होंने जूलिया क्रिस्टो के हवाले से पेश किया। हालाँकि यह बात मर्द के सिलसिले में भी कही जा सकती है कि इन्सान को पूरी तरह समझ पाना और पेश करना नामुमकिन है। ग़ालिब ने यूँ ही नहीं कहा था—

है आदमी बजाय ख़ुद इक महशरे ख़्याल
हम अन्जुमन समझते हैं ख़िलवत ही क्यों नहीं।

लेकिन विपरीत लिंग की जज़्बाती समझ बहरहाल अपना एक शऊर रखती है। और शायद यही वजह है कि उर्दू फिक्शन के ज़्यादातर अच्छे और बड़े स्त्री किरदार मर्द फनकारों ने दिये हैं। धनिया, लाजवन्ती, सौगन्धी वग़ैरह इसकी मिसालें हैं। ख़ैर यह बहस फिर कभी। इस वक़्त एक और मसरूफ़ आलोचक की बात करके अपनी बात को समाप्त चाहता हूँ। प्रोफेसर अतीक उल्लाह ने बीसवीं सदी में औरत उर्दू-अदब की भूमिका में लिखा है— 'हमारे यहाँ किसी बाक़ायदा तानीसी (स्त्री) तहरीक़ का मक़ाम अमल में नहीं आया और न हमारी ख्वातीन अदीबाओं (महिला साहित्यकारों) में बाहमी सतह पर तालमेल दिखायी देता है लेकिन इतना ज़रूर है कि उनके यहाँ गहरी तानीसी बसीरत (समझ) पायी जाती है।''

अगर गहरी तानीसी बसीरत (स्त्री समझ) है तो वह ज़ाहिर भी होनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए। सिर्फ़ हिमायत या ऐलान काफ़ी नहीं। उर्दू की नयी स्त्री कहानीकारों के यहाँ इसके प्रदर्शन मिल तो जाते हैं। तरन्नुम रियाज़ की 'नायला', ग़ज़ाल ज़ैग़म की 'नेक परवीन', सरवत खान की 'अब्बू' या रामी निगार अज़ीम की 'शामा', कहीं कहीं पुराने अन्दाज़ में ज़किया के रिवायती निस्वानी किरदार जैसे बीबी, खमीरून्निसा भी तरह-तरह से अपने अमल से आज के वातावरण से जुड़ती हैं। लेकिन ये किरदार जुगनू की तरह चमकते हैं और बुझ जाते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं इस चमक में 'समर्पण', 'यह तंग ज़मीन', 'जश्न' जैसी उम्दा कहानियाँ भी जन्म ले लेती हैं, फिर भी स्त्री विमर्श का वह फैला हुआ तसव्वुर, गहरा विज़न, एक ख़ास फ़िक्र व फलसफ़ा (चिन्तन एवं दर्शन) के सन्दर्भ में हयात और क़ायनात के परिदृश्य में औरत के बदलते हुए रूप कम-कम ही देखने को मिलते हैं। इससे ज़्यादा मुतास्सिर करते हैं 'मकान', 'नदी', 'फरात' जैसी नाविलों के निस्वानी किरदार जो मर्दों के ज़रिये रचना किये गये हैं और औरत का मुताहिदाना रूप पेश करते हैं। लेकिन इन्हीं मर्दों के अफ़सानों में औरत की सूरते हाल इसके विपरीत है। इन अफ़सानानिगारों के यहाँ भी औरत की समस्याएँ और किरदार भी कम ही हैं। बक़ौल शमीम हनफी यह बात अपनी जगह दुरुस्त है कि अफ़सानानिगार जीती-जागती ज़िन्दगी और इसी ज़िन्दगी के हर दर्जे, हर जाबिये, हर सतह पर बरतने और समझने की ख़ातिर ज़िन्दगी से एक विस्तृत सम्बन्ध जारी करता है। चाहे भी तो अपने आप को बहुत देर तक ज़िन्दगी की धूप-छाँव के तमाशे से दूर नहीं रख सकता। जब जिन्दगी के नशेब व फराज़, दुख-सुख में औरत कल भी शरीक़ थी और आज तमाम तरह की तरक्कियों और तब्दीलियों में भी वह बराबर से शरीक़ है, तो फिर उर्दू के नये अफ़सानों की धूप-छाँव में औरत अपने ताज़ा तरीन तसव्वुर, जौहर और तेवर के साथ शरीक़ क्यों नहीं? वह दुनिया की तमाम औरतों और हिन्दोस्तान के दूसरे अदब की तरह उर्दू के अफ़सानवी अदब में सरगर्म और क्रियाशील क्यों नहीं? स्त्री विमर्श का वह अंगारा जो मुकम्मल तौर पर पूरी दुनिया के अदब में गर्म है, उर्दू के नये अफ़सानवी अदब में इसकी रोशनी कम-कम क्यों है? क्या यह मौक़ा फिक्र करने का नहीं? औरतों के लिए तो है ही, मर्दों के लिए भी है।

उर्दू अफ़साने की रिवायत बताती है कि औरतों की समस्याएँ औरतों ने तो लिखे ही, इससे ज़्यादा मर्दों ने लिखे और इन्हें लिखना भी चाहिए कि औरत की बेमिसाल मोहब्बत और क़ुर्बानी का लुत्फ़ सबसे ज़्यादा मर्द ही उठाता है। ऐसा फितरी है लेकिन नये उर्दू अफ़साने से तखलीक़ का यह फितरी मौक़ा कहाँ और क्यों रुख़सत हो गया? उर्दू अफ़साने से मुन्नी, इन्दु, लाजवन्ती, सौगन्धी, सुरैय्या, आपा वग़ैरह क्यों रूठ गयीं? उन्हें कौन वापस लायेगा? क्या उन्हें तलाश करने और मनाने की ज़रूरत नहीं या सब कुछ यूँ ही चलने दिया जाये? ज़िन्दगी की बिसात जैसी बिछी है, उसे बिछा रहने दिया जाये या खोई हुई दिशाओं और ताज़ातरीन सूरतों पर भी ग़ौर किया जाये? क्या आप समझते हैं कि उर्दू अफ़साने की तरक्कियों और बुलन्दियों पर सिर्फ़ खुश रहने की ज़रूरत है या उसकी खोई हुई दिशाओं पर भी गौर करने की ज़रूरत है!

229-ए, लूकरगंज, इलाहाबाद-211001 (उ.प्र.)
फोन : 0532-2615507

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उर्दू साहित्यकार

फ़िराक़ गोरखपुरी

की चर्चित कृति

इस संकलन में वे ग़ज़लें हैं जिन्होंने फ़िराक़ को एक ओर मीर और ग़ालिब का समकक्ष और दूसरी ओर ग़ज़ल के रंग और परिवेश को नया रूप देनेवाला क्रांतिकारी कवि बनाया; वे रुबाइयाँ हैं जिन्होंने एक नारी की कमनीय काया के उभार-उतार की नाज़ुक-गहरी रेखाओं को, किशोरी, युवती और सुहागन के रूप और सौन्दर्य की भारतीय छवियों को तथा जीवन-दर्शन के सर्वोच्च शिखरों का स्पर्श करनेवाले चिन्तन को मार्मिक अभिव्यक्ति दी; और वे नज़्में हं जो राष्ट्र के जीवन और नवजागरण के शंखनाद के साथ-साथ फ़िराक़ के जीवन-अनुभवों और व्यापक दृष्टिकोण की दर्पण हैं।

बज़्में-ज़िंदगी : रंगे-शायरी
फ़िराक़ गोरखपुरी
पृष्ठ : 231, मूल्य : 150 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुलज़ार, शहरयार और निदा फाजली

गुलज़ार

मैं जानता हूँ कि सेंध लगती है मेरी नज़्मों में...

मैं जानता हूँ कि सेंध लगती है मेरी नज़्मों में रोज़ ही
और चुराने आता है कोई मेरा छुपा ख़ज़ाना
मैं पिछले मौसम के ख़ुश्क लम्हों को सब्ज़ पत्तों से
ढाँप देता हूँ।

फिर भी कोई...
नक़ब लगाता है मेरे शेरों में
दूर लफ़्ज़ों की आड़ में रखी मेरी बातें
चुराता है और जताता भी है,
ये नक़्श उसके हैं। मैंने उसके लिए कही हैं ये सारी नज़्में!

वो जा चुका, फिर भी जानता है,
कि जब गया था, वो मेरे घर से तो उसकी परछाईं साथ
उठकर नहीं गयी थीं...
वो देखता है,
कहाँ पे रखता हूँ ये करके मैं दिन पुराने
लपेटकर मैं कहाँ छुपाता हूँ रातें जो ख़र्च कर चुका हूँ
कहाँ पे काफ़ूर डाल के बन्द कर के रखता हूँ मैं उदासी।

वो शख़्स सब जानता है... शायद इसीलिए ही...
चुराता रहता है मेरे शेरों से अपना माज़ी
और अपने जुमला हुक़ूक़ महफ़ूज़ कर दिया है!!

मेरे दरवाज़े के नीचे

मेरे दरवाज़े के नीचे
कोई विथ रह गयी, शायद
अँधेरा इस तरह बहकर मेरे कमरे में आता है
कनस्तर गिर पड़ा जैसे सियाही का
या शब, नल खोल कर बैठी है आँगन में
अँधेरा उभर रहा है!!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाव में बहते बहते...

नाव में बहते-बहते इक नज़्म मेरी
पानी में गिरी और गलने लगी
काग़ज़ का पैरहन था,
मेरी तहरीर न थाम सका!

सियाही फैल गयी पहले,
फिर लफ़्ज़ गले, और एक-एक करके डूब गये,
टूटते मिसरों की हिचकी, कुछ दूर सुनाई दी और फिर...
बाक़ी मांदा...
कुछ मानी थे,
कुछ देर किसी तिलछट की तरह,
पानी की सतह पर तैरे और फिर बहते-बहते, आँख से ओझल होते गये!

मुझे बस यूँ नहीं मरना कि सब मरते हुए देखें...

मुझे बस यूँ नहीं मरना कि सब मरते हुए देखें
कि मेरा मुँह खुला हो, धौंकनी चलती हो साँसों की
नली इक नाक में अटकी हुई, दो बाँह की नस में
मशीनों की तरफ़ सब देखते हों, धड़कनों की
लय विलम्बित है...
ये कितनी मात्रा पे चल रही है

मुझे बस यूँ नहीं मरना...
कि एक्सीडेण्ट में कुछ यूँ गिरा जैसे किसी के हाथ से
चिल्लर बिखर जाएँ।
अठन्नी, पैसे, दस पैसे, चवन्नी!
बड़े गुस्से में पूरा नोट कोई फाड़ के जैसे उड़ा देता
है पुरज़ों में

मुझे बस यूँ नहीं मरना...
मुझे कुछ ऐसे उड़ जाना है जैसे हिचकी लेकर ओस उड़ती है
कि जैसे शेर कहते-कहे सकता पड़ गया... बस!
या लिखते-लिखते अफ़साना, सियाही ख़त्म हो जाए!!

ये कैसी उम्र में आकर मिली हो तुम!

ये कैसी उम्र में आकर मिली हो तुम!
बहुत जी चाहता है फिर से बो दूँ अपनी आँखें
तुम्हारे ढेर सारे चेहरे उगाऊँ, और बुलाऊँ बारिशों को
बहुत जी है कि फुर्सत हो, तस्सवुर हो,
तस्सवुर में ज़रा सी बाग़बानी हो!

मगर जानाँ...
इक ऐसी उम्र में आकर मिली हो तुम
किसी के हिस्से की मिट्टी नहीं हिलती
किसी की धूप का हिस्सा नहीं छनता
मगर क्या क्यारी के पौधे पास अपने
अब किसी को पाँव रखने के लिए भी थाह नहीं देते
ये कैसी उम्र में आकर मिली हो तुम?

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने
आम पापड़ की तरह ही तोड़ कर
एक टुकड़ा आसमाँ का रख लिया था।
वो मेरे बीने हुए शीशों के टुकड़ों में
गुम भी हो जाता था अक्सर...
मैं अँधेरे में टिमकते जुगनुओं से ढूँढ लेता था
वो मेरे साथ रहने लग गया था— एक टुकड़ा आसमाँ का
घिर के आ जाते थे जब बादल
भीग जाती थीं किताबें, मेरे बस्ते में
धूप में जब पीठ जलने लगती तो बस्ता टिकाकर नीम के नीचे
हवा करता था उसको
शोर करते थे परिन्दे मेरे बस्ते में
तो सब टीचर मेरे नाराज़ होते थे!

मैं बाहर रख के आ जाता था बस्ता...
टाँग आता था गिलहरी वाले शीशम पर
या कभी अम्माँ के छाबे पर, जो गुड़ के सेव देती थी।
किताबें तो बड़ी होती गयीं सारी—
वज़न बढ़ता गया उनका
मेरा बस्ता पुराना हो रहा था— फट रहा था
न जाने कब, कहाँ पर गिर पड़ा टुकड़ा वो मेरा आसमाँ का
मैं नंगे पाँव चलता हूँ तो पैरों में
बहुत चुभती हैं किरचें आसमाँ की
वो चूरा हो गया है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शहरयार

एक

आँख ख़ुले शादाब-सा इक चेहरा देखूँ।
बीच से तू हट जाए तो क्या-क्या देखूँ॥
आँसू ओस में भीगने वाले ये रस्ते।
मंज़िल तक ले जायें यह सपना देखूँ॥
आँखों पे यह कहर भी नाज़िल होना था।
दिल दीवार का ख़ौफ़ज़दा साया देखूँ॥
इक़ कमज़ोर से लम्हे में यह ख़्वाहिश की।
तुझको अकेला और बहुत तन्हा देखूँ॥
पानी की जिस बूँद से मेरा रिश्ता है।
पानी की उस बूँद को मैं प्यासा देखूँ॥
ऐसी काली लम्बी रात मिली मुझको।
हाँ चाहा था सूरज को ढलता देखूँ॥
मेरे मालिक मुझको इतनी मोहलत दे।
नये सिरे से मैं तेरी दुनिया देखूँ॥

दो

यह सच है सराबों से कुछ दूर था पानी भी।
और प्यास मुख़ालिफ़ थी दरिया की रवानी भी॥
लिखने को ख़तों में यूँ दिल हाल सभी लिक्खा।
हसरत ही रही तुझको कुछ कहते ज़बानी भी॥
तारीक बहुत शब है और वह भी बड़ी लम्बी।
नींद आती नहीं मुझको अब सुनके कहानी भी॥
पूछे तो भला किससे आँखों की ये हैरानी।
इस शहर में रहता था वह दुश्मन-ए-जानी भी॥
चेहरा कोई तुझ जैसा दिखलायी दिया जिस दिन।
उस रोज़ यक़ीं आया होगा तेरा सानी भी॥

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन

गिरती हुई दीवार से जैसे ढले हुए साये।
तुमको याद कहाँ आना था याद कहाँ आये॥

हिज्र की काली लम्बी रात का जादू था ऐसा।
मुझको जागते देखा तो सोये नहीं हमसाये॥

इस सहरा को ख़त्म किया तो एक समुन्दर है।
प्यास क़ाफ़ले से यह कह दो कुछ आगे जाये॥

मुस्तक़बिल के ख़्वाब देखना आदत है मेरी।
दुनिया को कोई समझा दे मुझसे न घबराये॥

है मंज़िल अनजान सक्त में हुक़्म है जाने का।
चाहता था मैं जिस्म सफ़र की आख़री हद आये॥

चार

जागता हूँ मैं एक अकेला दुनिया सोती है।
कितनी वहशत हिज्र की लम्बी रात में होती है॥

यादों के सैलाब में जिस दम मैं घिर जाता हूँ।
दिल दीवार उधर जाने की ख़्वाहिश होती है॥

ख़्वाब देखने की हसरत में तन्हाई मेरी।
आँखों की बंजर धरती में नींदें बोती है॥

ख़ुद को तसल्ली देना कितना मुश्किल होता है।
कोई क़ीमती चीज़ अचानक जब भी खोती है॥

उम्र सफ़र जारी है बस यह खेल देखने को।
रूह बदन का बोझ कहाँ तक कब तक ढोती है॥

पाँच

तेरी जुदाई में क्या-क्या दिखाई देता है।
कहीं पे तू कहीं तुझ-सा दिखाई देता है॥

ज़माना हो गया ऐसे किसी सफ़र में हूँ।
कि अब न मोड़ न रस्ता दिखाई देता है॥

उलझ रही है बहुत मुझसे मेरे पाँव की गर्द।
क़दम क़दम पे तमाशा दिखाई देता है॥

अज़ीब वक़्त सुनो आ पड़ा है सूरज पर।
तुलूअ होता न ढलता दिखाई देता है॥

ये मेरी आँखें नहीं दूसरों की आँखें हैं।
अँधेरा है पर उजाला दिखाई देता है॥

छह

यही इक वहम है जो और कुछ जीने की हसरत है।
कहीं पर है कोई ऐसा जिसे मेरी ज़रूरत है॥

बड़े ऊँचे सुरों में बोलते हैं अब जो सन्नाटे।
मेरे ख़ामोश रहने पर बहुत उनको शिकायत है॥

मज़ा ही और कुछ है दोस्तों जलने पिघलने में।
चलो देखें बदन की धूप में कितनी तमाज़त है॥

अँधेरा जब घना होता है कितना हौल आता है।
तुम्हें क्या इल्म तुमको जल्द सो जाने की आदत है॥

उदासी बाल बिखराए खड़ी है रात रस्तों पर।
तुम्हारे शहर में भी क्या कोई महताब सूरत है॥

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निदा फाज़ली

एक

ये दिल कुटिया है सन्तों की, यहाँ राजा भिखारी क्या
वो हर दीदार में ज़रदार है, गोटा किनारी क्या।
सभी के सामने इक आईना है अपनी सूरत का
उसी सूरत की सबको जुस्तुजू है यारा यारी क्या।
ये काटे से नहीं कटते, ये बाँटे से नहीं बँटते
नदी के पानियों के सामने आरी-कटारी क्या।
उसी के चलने फिरने, हँसने रोने की है तस्वीरें
घटा क्या, चाँद क्या, संगीत क्या वादे-बहारी क्या
किसी घर के किसी बुझते हुए चूल्हे में ढूँढ़ उसको
जो चोटी और दाढ़ी तक रहे, वो दीनदारी क्या।
हमारा मीर जी से मुत्तफ़िक़ होना है नामुमकिन
उठाना है जो पत्थर इश्क़ का तो हल्का-भारी क्या।

दो

बेसन की सौंधी रोटी पर खट्टी चटनी जैसी माँ
याद आती है चौका बासन, चिमटा फुकनी जैसी माँ।
चिड़ियों की चहकार में गूँजे राधामोहन अली अली
मुर्गे की आवाज़ से खुलती घर की कुंडी जैसी माँ।
बान की खुर्री खाट के ऊपर हर आहट पर कान धरे
आधी सोई आधी जागी भरी दोपहरी जैसी माँ।
बीवी, बेटी, बहिन, पड़ोसन थोड़ी-थोड़ी सी सबमें
दिन भर इक रस्सी के ऊपर चलती नटनी जैसी माँ।
बाँट के अपना चेहरा, माथा, आँखें जाने कहाँ गयी
फटे पुराने इक एलबम में चंचल लड़की जैसी माँ।

तीन

मेरी तेरी दूरियाँ हैं अब इबादत के ख़िलाफ़
हर तरफ़ है फ़ौज-आराई मुहब्बत के ख़िलाफ़।
पहले जैसा ही दुखी है आज भी बूढ़ा कबीर
कोई आयात का मुखालिफ़ कोई मूरत के ख़िलाफ़।
क़त्लेदारा, ख़ूने सरमद के अलावा शहर में
कौन है जो सर उठाए बादशाहत के ख़िलाफ़।
तू भी चुप है मैं भी चुप हूँ बात ये सच है मगर
हो रहा है जो भी वो तो है रिवायत के ख़िलाफ़।
मुद्दतों के बाद देखा था उसे अच्छा लगा
देर तक हँसता रहा वो अपनी आदत के ख़िलाफ़।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चार

कोई किसी की तरफ़ है कोई किसी की तरफ़
कहाँ है शहर में अब कोई ज़िन्दगी की तरफ़।
तमाम शहर की शम्एँ उसी से रौशन थीं
कभी उजाला बहुत था किसी गली की तरफ़।
कहीं की भूख हो हर खेत उसका अपना है
कहीं की प्यास हो आएगी वो नदी की तरफ़।
सभी की नज़रों में ग़ायब था जो वो हाज़िर था
किसी ने मुड़ के नहीं देखा आदमी की तरफ़
न निकले ख़ौफ़ से अल्लमा[1] क़ौल से बाहर
यगाना[2] टूट गये जब चले ख़ुदी की तरफ़।

पाँच

ढूँढ़िये फिर कोई जीने का बहाना साहब
लौट के आता नहीं गुज़रा ज़माना साहब।
ज़िन्दगी से बड़ी होती नहीं कोई लैला
क़ैस के दौर में आशिक़ था दिवाना साहब।
घर के आँगन में ही बरगद भी है आईना भी
ख़ुद से मिलने को कहीं दूर न जाना साहब।
धूप तो धूप है, फिर उसकी शिक़ायत कैसी
अबकी बरसात में कुछ पेड़ उगाना साहब।
बादबाँ बाँध के कश्ती को किनारे पे रखो
इक न इक रोज़ तो होना है रवाना साहब।

छह

बनाया था ख़ुद को ज़माने के क़ाबिल
मगर क्या, ज़माना था पाने के क़ाबिल?
मुकम्मल हुई दास्ताँ तो ये जाना
बहुत कुछ था इसमें भुलाने के क़ाबिल।
मुहब्बत नज़र बाँध देती है वरना
हँसी थे बहुत दिल लगाने के क़ाबिल।
हमेशा तो दिल में रहेगा न कोई
ज़मीं ढूँढ़िये घर बसाने के क़ाबिल।
हँसी आज आती है उन हादिसों पर
जो कल तक थे रोने रुलाने के क़ाबिल।

1. डॉक्टर इक़बाल, 2. यगाना चंगेजी

छोटी-सी शॉपिंग

गोटे वाली लाल ओढ़नी
उस पर चोली घाघरा
उसी से मैचिंग करनेवाला
छोटा-सा इक नागरा
छोटी-सी यह शॉपिंग थी
या कोई जादू टोना
लम्बा चौड़ा शहर अचानक
बन कर एक खिलौना
दाढ़ी, पगड़ी
ऊँट छोड़कर
इतिहासों का जाल तोड़कर
अ से अम्माँ
ब से बाबा
बैठा बाँच रहा था
पाँच साल की बच्ची बनकर
जयपुर नाच रहा था।

छोटी-सी हँसी

सूनी-सूनी थी फ़िज़ा
मैंने यूँ ही
उसके बालों में गुँथी ख़ामोशियों को छू लिया
वह मुड़ी
थोड़ा हँसी
मैं भी हँसा
फिर हमारे साथ
नदियाँ, वादियाँ
कोहसार, बादल
फूल, कौंपल
शहर, जंगल
सबके सब हँसने लगे।
इक मुहल्ले में
किसी घर के
किसी कोने की
छोटी-सी हँसी ने
दूर तक फैली हुई दुनिया को रौशन कर दिया है।
ज़िन्दगी में
ज़िन्दगी का रंग फिर से भर दिया है।

201, सनराज़, आरम नगर, वरसोवा,
मुम्बई-400061
मो. -09869487139

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

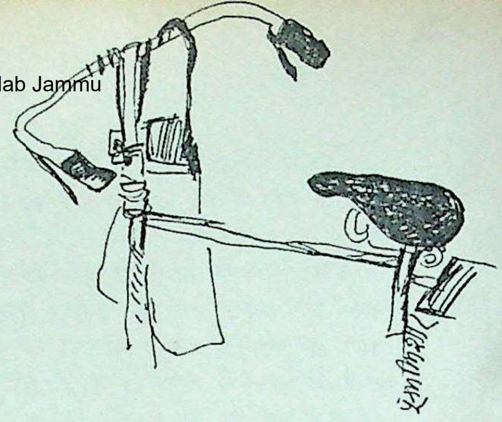

सौदा

सलाम बिन रज़्ज़ाक़

मेरी उम्र चालीस पार कर चुकी है। मैंने अभी तक शादी नहीं की। आगे करने का इरादा भी नहीं है। मैं शादी के इंस्टीच्यूशन पर यक़ीन ही नहीं रखता। समाज में शादी की बड़ी अहमियत है, होगी। धर्म भी इस पर विशेष ज़ोर देता है, देता रहे। मगर मेरा निरीक्षण है कि शादी के नाम पर मर्द के गले में गृहस्थी की रस्सी बाँध दी जाती है ताकि वह कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहे अपने ही घर परिवार के गिर्द। मुझे ऐसा बन्धन मंजूर नहीं। मैं तो एक आज़ाद परिन्दे की तरह डाल-डाल उड़ना चाहता हूँ, पात-पात चहकना चाहता हूँ।

शादी के बिना तो कोई भी रह सकता है, मगर औरत के बिना कोई कैसे रह सकता है! किसी दार्शनिक ने कैसी पते की बात कही है कि ''औरत के साथ ज़िन्दगी बसर करना कठिन है मगर औरत के बिना ज़िन्दगी बिताना उससे भी ज़्यादा कठिन है।'' मैंने भी शादी नहीं की मगर मैं कुँवारा भी नहीं हूँ। औरत हमेशा मेरे अधिकार में रही है बल्कि अधिक स्पष्ट कहूँ तो मेरे उपयोग में रही है।

मैं एक मशहूर कम्पनी में एक ऊँचे पद पर हूँ। पाँच अंकों में वेतन वसूल करता हूँ। शहर के साफ़-सुथरे क्षेत्र में एक उम्दा फ़्लैट है मेरा। एक क़ीमती कार भी है मेरे पास। अकेला आदमी हूँ। दिखने में ठीक ठाक हूँ। जब औरतों को पता चलता है कि मैं कुँवारा हूँ तो वे विशेष रूप से मुझ पर मेहरबान होने लगती हैं। कुँआरी लड़कियाँ तो बस यों समझिए पके फल की तरह टपक पड़ने को बेताब हो उठती हैं। अब गिरीं कि तब गिरीं। पिछले बीस वर्षों में कुछ नहीं तो दर्जन भर औरतें मेरी दोस्त बनीं, ख़ूब घुली मिलीं, ख़ूब गुलछर्रे उड़ाए, और फिर अलग हो गयीं। कई एक ने शादी का आग्रह किया, मगर मैं पहले ही जता देता था कि मैं शादी-वादी के फेर में नहीं पड़ने वाला। साथ रहो, खाओ पियो, मौज मस्ती करो, और अपनी राह लो। कुछ ने मुझे बेहद प्रभावित भी किया। उनसे जुदा होते हुए तक़लीफ़ भी बहुत हुई मगर मैं अपने स्वभाव से मजबूर हूँ। किसी एक औरत से बँध कर रहना मेरे बस की बात नहीं। रह ही नहीं सकता। दूध पीने के लिए गाय पालना ज़रूरी तो नहीं।

पिछले बीस बरस में सिर्फ़ निताशिया थी जिसके साथ मैंने पूरे तीन साल गुज़ार दिए। उफ़! क्या लड़की थी निताशिया। थी तो साँवली सलोनी, बहुत सुन्दर नहीं थी मगर उसका बदन! क़यामत था, क़यामत। कपड़े ऐसे चुस्त पहनती थी कि जिस्म की एक एक गोलाई अजंता एलोरा का नज़ारा पेश करती थी। वह हर रविवार को सुबह फ़्लैट पर आ जाती और रात देर गये तक मेरे साथ रहती। उस दिन मैं होटल जाता न क्लब। पूरा दिन निताशिया के साथ घर ही पर गुज़ार देता। फ्लैट में वह सुबह से शाम तक न्यूड मॉडल बनी मेरे इर्द-गिर्द मँडलाती रहती, और मुझे भी सारा दिन कपड़ों से दूर रखती। संक्षेप में कहूँ तो रविवार के दिन मेरा फ़्लैट जन्नत का नमूना बन जाता और हम दोनों आदम और हव्वा की तरह बेलिबासी का लिबास पहने जन्नत के मज़े लूटते।

निताशिया के प्यार करने के अन्दाज़ भी निराले थे। पहले तो वह किसी बच्चे की तरह मेरे सर में तेल डालती। फिर अपनी नर्म उँगलियों से मालिश करती। मालिश के बाद जबरदस्ती मेरे बदन का मसाज करती। मसाज क्या करती, गुदगुदा, गुदगुदा कर मेरा दम निकाल देती। जब मैं हँस-हँस कर बेहाल हो जाता तो मुझे खींच-खींच कर बाथरूम में ले जाती। शावर के नीचे खूब मल-मल कर नहलाती, तौलिये से बदन का पोर-पोर पोंछती। खाने की मेज़ पर स्वयं मेरी गोद में चढ़कर बैठ जाती और मुझे खाना खिलाती, हाथ से नहीं मुँह से, जैसे कोई गौरिया अपने बच्चों को चुग्गा चुगाती है। बिस्तर पर तो हर पल मछली की तरह तड़पती और फिसलती रहती, उफ! क्या लड़की थी निताशिया।

''चर्र...र ... र...!''

लीजिए ब्रेक न लगाता तो अभी एक्सीडेंट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो गया होता। मैं भूल ही गया कि गाड़ी चला रहा हूँ और मेरे दोनों हाथ निताशिया के कन्धों पर नहीं गाड़ी की स्टैरिंग पर हैं।

तीन महीने हो गये निताशिया मुझे छोड़ कर चली गयी। बहुत रोई थी आख़िरी दिन मुझसे लिपट कर। मेरी आँखें भी भीग गयी थीं। ज़िन्दगी में पहली बार किसी औरत से बिछड़ते हुए मेरे दिल के किसी कोने में कुछ चटखता-सा महसूस हुआ था। उसने तीन वर्षों में मुझे बहुत सुख दिया था। इतना सुख शायद कोई शादीशुदा औरत तीस बरस में अपने मर्द को भी नहीं दे सकती। वह मुझसे शादी करना चाहती थी। कहती थी, ''ज़िन्दगी भर तुम्हारे चरण धोकर पीती रहूँगी। कभी तुम्हें शिक़ायत का मौका नहीं दूँगी। मुझे बीवी नहीं अपनी दासी समझ कर अपना लो।''

मगर मैं भी क्या करता। मेरे हाथ में शादी की लक़ीर ही नहीं है। आख़िरी दिन वह एक पल के लिए भी मुझसे अलग नहीं हुई। सीने से यों चिमटी रही जैसे मुझसे अलग होते ही काफ़ूर बनकर हवा में विलीन हो जाएगी। रो-रोकर मेरा सीना भिगोती रही। जब रोते रोते थक जाती तो दीवानों की तरह मेरे होंठ, कपोल, माथा चूमने लगती। बल्कि सर से पाँव तक पूरे शरीर को बोसों से शराबोर कर देती। सच पूछिए तो उसकी इसी दीवानगी ने शाम होते-होते मुझे परास्त कर ही दिया था। लेकिन एक बात ऐसी हो गयी कि सब कुछ उलटा पुलटा हो गया। मैंने निताशिया को छाती से चिमटाते हुए कहा।

''निताशिया, तुम मुझे बहुत चाहती हो?''

''अपनी जान से ज़्यादा।''

''फिर मेरी एक बात सुनो।''

''कहो।''

''एक सप्ताह बाद तुम्हारी शादी हो रही है?''

''हाँ।''

''तुम शादी कर लो। तुम्हारे शादी कर लेने से हमारी मोहब्बत थोड़ी न खत्म हो जाएगी। शादी के बाद भी हम इसी तरह मिलते रहेंगे। मेरे घर का दरवाज़ा तुम्हारे लिए हमेशा खुला रहेगा। मैं वादा करता हूँ। मैं सिवाय तुम्हारे किसी अन्य औरत की तरफ़ नज़र उठाकर भी नहीं देखूँगा।''

''शटअप...!'' वह इतने ज़ोर से चीख़ी कि पूरा फ्लैट गूँज उठा। फिर टप्पा खाई गेंद की तरह मेरी गोद से उछल कर खड़ी हो गयी। यानी शादी किसी और से रचाऊँ और हवस तुम्हारी पूरी करूँ। तुमने आज मेरी मोहब्बत को गाली दी है। मेरे प्यार के मुँह पर थूका है। मुझे नहीं पता था कि तुम इस क़दर ज़लील इंसान हो। बल्कि तुम तो इंसान ही नहीं हो। मैं तुम्हारे साथ सोने की बजाय किसी कुत्ते के साथ सो जाती तो ज़्यादा अच्छा होता। ''यू सन ऑफ़ दि बिच्... ब्लडी स्वाइन...'' वह गालियाँ दे रही थी, गालियाँ देते देते रोती जा रही थी और रोते-रोते कपड़े पहन रही थी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि वह यकायक इस क़दर ख़फ़ा क्यों हो गयी। आख़िर मैंने ऐसी कौन-सी बात कह दी... जो वह अपने आपसे बाहर हुई जा रही थी। इससे पहले कि मैं परिस्थिति को समझता, समझ कर उसे समझाने की कोशिश करता, वह कपड़े पहन कर अपनी बिकनी मेरे मुँह पर मारती हुई बोली, ''लो इसे ज़िन्दगी भर चाटते रहो... तुम इसी लायक हो।'' और दरवाज़ा खोल कर फ्लैट के बाहर निकल गयी। मैं तो कई मिनट तक नंगधड़ंग बिस्तर पर अचेत पड़ा रहा। मेरी सोचने समझने की शक्ति ही समाप्त हो गयी थी। तीन महीने बीत गये। उस दिन के बाद से मेरी निताशिया फिर कभी नहीं मिली। उफ़। क्या लड़की थी निताशिया। वह तो ख़ैर मुझे जी जान से चाहती ही थी। अब सोचता हूँ तो मुझे ऐसा लगा लग रहा है शायद मैं भी उससे प्यार करने लग गया था। इसीलिए तो उसके चले जाने के बाद से मेरे भीतर औरत की इच्छा ही जैसे मर गयी थी। वह जो हर घड़ी खून में तरंगें उठा करती थीं अब दूर दूर तक उनका पता नहीं था। तबियत पर एक अनाम-सी उदासी छाई रहती, कहीं भी दिल न लगता। मैं दफ़्तर से सीधा घर आ जाता। मुँह हाथ धोने के बाद टीवी खोलकर बैठ जाता और देर रात तक ऊट-पटांग प्रोग्राम और सड़ी बुसी फ़िल्में देखता रहता और जब नींद आती वहीं लुढ़क कर सो जाता। रविवार का दिन तो क़यामत की तरह गुज़रता। निताशिया की याद से दिल बेचैन हो जाता और मैं दीवानों की तरह कमरे में घण्टों टहलता रहता, कभी उसकी बिकनी को अपने चेहरे पर मलता, कभी अपने सीने से लगाता।

कभी-कभी मेरे आँसू भी निकल आते। अगर कोई मुझे उस हाल में देख लेता तो निस्संदेह ही पागल समझता। मैं भीतर से इतना बुझ गया था कि लोग जब ठहाके लगा रहे होते मुझे मुस्कराना भी दूभर मालूम होता। तभी एक ऐसी घटना हो गयी कि मेरे मद्धिम पड़ते चिराग एक बार फिर लौ देने लगे। एक रविवार ही का दिन था। चिनचोली से अचानक रोशन अली आ गया। आप रोशन अली को नहीं जानते। बड़ा बाकमाल आदमी है। वह पहले मुम्बई में ही रहता था। मेरी उसकी कॉलेज के ज़माने से दोस्ती थी। बड़ा दिलफेंक ढीठ और बातूनी व्यक्ति था। लड़कियों को तो चुटकियों में पटा लेता था। कॉलेज के ज़माने में तो उसकी एक ही समय में कई-कई गर्ल फ्रेंड्स हुआ करती थीं। वास्तव में मुझे भी लड़कियों की लत उसी की सोहबत में पड़ी थी। बल्कि पहली बार पवन पुल पर जमना बाई का गाना सुनने मुझे वही ले गया था। और उसकी प्रेरणा पर ही पहली बार मैं औरत के जिस्म की लज़्ज़त से परिचित हुआ था। कॉलेज से निकलने के बाद रोशन अली किसी कारोबार में लग गया, अलबत्ता कभी किसी बार या होटल में तो कभी किसी गाने वाली के कोठे पर उससे मुलाकात हो जाती थी। उसी ज़माने में वह मुम्बई से चिनचोली रहने चला गया। पता चला उसने वहाँ एक होटल और बहुत बड़ा फ़ॉर्म हाउस बनवाया है। शुरू-शुरू में वह मुझे कभी-कभी फ़ोन कर लिया करता था। उसने फ़ोन पर ही बताया था कि अब उसने लम्पटपन और इधर-उधर मुँह मारना छोड़ दिया है और एक शरीफ़ आदमी की तरह सिर्फ़ अपनी विवाहित बीवियों से ही परितुष्ट है। वह अक्सर मुझे चिनचोली आने के लिए आमन्त्रित करता रहता और मैं अपनी व्यस्तता का बहाना बनाकर टालता रहता। उस रोज़ क़रीब सात आठ बरस बाद उसे यों अचानक अपने सामने देखकर मैं हैरान रह गया था। थोड़ी देर के लिए तो मैं उसे पहचान ही नहीं सका। उसका पूरा हुलिया ही बदल गया था। पहने वह क्लीन शेव रहता था और उसके बाल सलीके से जमे रहते और अधिकतर वह रंगीन शर्ट और जीन्स आदि पहने रहता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मगर अब उसके चेहरे पर खिचड़ी दाढ़ी उग आयी थी। सर के बाल आधे से ज़्यादा उड़ चुके थे और पेशानी तालू से जा मिली थी। आँखों पर सुनहरी फ्रेम की ऐनक थी और शरीर पर क्रीम कलर की कीमती सफारी था। वह कुछ-कुछ मोटा भी हो गया था। कुल मिलाकर उसका व्यक्तित्व ख़ासा रोबदार लग रहा था। मुझे अपनी ओर अजनबी नज़रों से घूरते देखकर उसने डपट कर कहा। ''यार। घूर क्या रहे हो? पहचान नहीं पा रहे हो क्या? अरे घामड़ मैं रौशन अली हूँ, रोशन अली।''

मैंने तपाक से उसे गले लगाया और चहक कर बोला, ''यार! अचानक इस तरह, बिना ख़बर किये, बिना फ़ोन किये। और फिर तुम्हारा हुलिया। पहले देवानन्द लगते थे अब एक दम से अनुपम खेर लग रहे हो।''

''मेरा तो खैर हुलिया बदला है। मगर तुम ने अपना यह क्या हाल बना रखा है? कुछ लेते क्यों नहीं?''

उसके इस विज्ञापनी रिमार्क पर हम दोनों ही हँस दिए। मैंने हँसते-हँसते ही कहा। ''मुझे क्या हुआ है? मैं बिलकुल ठीक हूँ।''

''क्या ख़ाक ठीक हो। यह उतरा हुआ चेहरा, आँखों के गिर्द गड्ढे, बढ़ा हुआ शेव। पूरे देवदास लग रहे हो देवदास, दिलीप कुमार वाले देवदास।''

फ़िल्मों से उपमाएँ गढ़ना हमारी पुरानी आदत थी।

''छुट्टी का दिन है। रिलेक्स कर रहा हूँ यार।''

''बको मत। मेरी सुब्ह कह रही है तेरी रात का फ़साना। मुझे आदम फुकनिया ने फ़ोन पर सब बता दिया है।'' आदम फुकनिया हमारा कॉलेज का साथी था। चरस की सिगरेटें फूँकना और कोठों के चक्कर लगाना उसकी दिनचर्या में शामिल था। घर जायदाद विरासत में मिली थी इसलिए रोज़ी-रोटी की चिन्ता नहीं थी उसे। रोशन अली कह रहा था।

''एक निताशिया के चले जाने से इतना ग़म खाने की क्या ज़रूरत? मैंने तुम से बहुत पहले कहा था। औरत और बस की चिन्ता मत करो। एक छूट गयी तो दूसरी आती ही होगी... कहा था?''

निताशिया का नाम आते ही मैं एकदम से चुप हो गया।

''देखा दुखती रग पर उँगली रखते ही कैसा चेहरा उतर गया।''

''ऐसा कुछ नहीं है तुम जानते हो इधर की उधर करना आदम फुकनिया की पुरानी आदत है।''

''आदम को मारो गोली, मगर तुम्हारी यह उड़ी-उड़ी रंगत बता रही है कि समथिंग इज़ रांग विद यू। चलो मेरे साथ चिनचोली की खुली हवा में कुछ दिन रहोगे तो सब भूल जाओगे।''

रोशन अली से सहानुभूति के बोल सुनकर मेरे भीतर कुछ पिघलने-सा लगा। मगर मैंने चेहरे पर कोई भाव आने नहीं दिया। फीकी हँसी-हँसकर बोला, ''आऊँगा किसी दिन। मगर अभी नहीं। दफ़्तर में आजकल बहुत काम है।''

रोशन अली ने मेरी बात सुनी अनसुनी कर दी और एक आँख दबा कर बोला, ''निताशिया को भी भूल जाओगे। ऐसे नज़ारे हैं वहाँ।''

मैंने अनमनेपन से कहा, ''नहीं यार! पता नहीं क्यों अब इस चूहा बिल्ली के खेल से जी ऊब गया है।''

''तो फिर मेरी तरह कोई परमानेंट बंदोबस्त कर लो।''

''ओ नो। शादी तो ख़ैर करनी ही नहीं है।''

''तो फिर क्या करोगे? संन्यास ले लोगे?''

''नहीं ऐसी बात नहीं। बस एक फेज़ आया है। इससे निकल जाऊँ तो सोचूँगा।''

''मेरी बात सुनो। यह फेज़ एक औरत के कारण आया है। तुम्हें एक औरत ही इस फेज़ से निकाल सकती है। अगर तुम कहो तो इसका बंदोबस्त हो सकता है।''

''मगर मैंने कहा न... मैं शादी...''

''शादी की बात नहीं, औरत की बात है। सिर्फ़ औरत। जो बीवी की तरह तुम्हारे साथ रहे, मगर बीवी होने का दावा न करे। बोलो यस...''

''ऐसी औरत कहाँ मिलेगी यार।'' मैंने बेकसी की हँसी हँसते हुए कहा।

''मिलेगी। तुम हाँ करो। कल ही ऐसी औरत का बंदोबस्त हो जाएगा।''

मैं अचानक गम्भीर हो गया, ''यार रोशन। दरअसल मैं ऐसी ही औरत चाहता हूँ। माशूकाओं के नाज़ उठाते-उठाते थक चुका हूँ मैं। मुझे अब सचमुच ऐसी ही औरत चाहिए जो दिन में एक नर्स की तरह मेरा ख़्याल रखे और रात को बिस्तर पर आक्टोपस की तरह मुझसे चिपटी रहे।

''मगर तुम पर अधिकार न जताये।'' रोशन अली ने दरमियान में मेरी बात काटते हुए कहा।

''हाँ मुझ पर अधिकार न जताये। इसके बावजूद मैं उसे वह सब दूँगा जो उस का अधिकार है।'' मैंने आगे बात पूरी कर दी।

''मैं समझ गया। तुम्हें मिल जाएगी ऐसी औरत। मगर इसके लिए कुछ दाम खर्च करने होंगे।''

''दाम?''

''हाँ''

''कितने?''

''वह तो औरत पर निर्भर है?''

''कोई झमेला तो नहीं।''

''कैसा झमेला। यह दुनिया एक बाज़ार है। यहाँ हर चीज़ बिकाऊ है।''

''कुछ दिन सब्र करो। मैं तुम्हें फ़ोन कर दूँगा।''

रोशन अली मुझे सब्र का उपदेश देकर चला गया। क्या वाक़ई उसे ऐसी औरत मिल जाएगी जैसी मैं चाहता हूँ। एक नाजुक आकृति कल्पना में उभरने लगी जिसके चिह्न खासे धुँधले थे।

दूसरे दिन आदम फुकनिया मिल गया। मैंने पहले तो उसे खूब फटकार सुनाई कि रोशन अली को मेरे और निताशिया के बारे में बताने की क्या ज़रूरत थी। उसने हमेशा की तरह मेरी बात को चरस के धुएँ में उड़ा दिया। जब मैंने उसे बताया कि रोशन अली घर आया था और उसने मुझसे कोई औरत दिलाने का वादा किया है तो आदम फुकनिया उछल पड़ा। बोला, ''अगर उसने वादा किया है तो ज़रूर पूरा करेगा। तुम नहीं जानते बहुत पहुँचा हुआ व्यक्ति है वह। मैं गया था न दो साल पहले उसके फ़ार्म हाउस पर। क्या ठाठ हैं यार उसके। और औरत। औरत तो वहाँ गाजर मूली से ज़्यादा सस्ती है। देखना वह अपना वादा पूरा कर के रहेगा।''

मैं कुछ नहीं बोला, कुछ दिन और गुज़र गये। रोशनी अली ने जाने के बाद कोई फ़ोन नहीं किया। लेकिन जाने क्यों मुझे विश्वास था उसे ऐसी औरत ज़रूर मिल जाएगी। जब भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसा विचार आता दिन के किसी अनजान कोने में एक महताबी-सी छूटती। निताशिया की याद अब काफी धुँधला गयी थी। उसकी शादी हो चुकी थी और वह अपने पति के साथ अमेरिका चली गयी थी। निताशिया के जाने के बाद दो तीन भूतपूर्व महबूबाओं ने अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं मगर मैंने कोई दिलचस्पी नहीं ली। सच पूछिए तो एक ही प्रकार का खाना खाते खाते उकता गया था मैं। सोचा रोशन अली को फ़ोन करूँ। मगर फिर ख़्याल आया कि खामखा उतावलापन दिखाना उचित नहीं। अगर प्रबन्ध न हुआ हो तो उसे भी शर्मिंदगी होगी। आशा निराशा की कशमकश में डेढ़ दो महीने गुज़र गये। रोशन अली के वादे पर से विश्वास उठने लगा था कि अचानक कल सुबह रोशन अली का फ़ोन आया। उसने बताया कि ''तुम्हारी मर्ज़ी की औरत मिल गयी है और मैं उस औरत के साथ मुम्बई गोवा रोड पर अपने फ़ार्म हाउस में तुम्हारा इन्तेज़ार कर रहा हूँ।''

साथ ही उसने यह भी कहा कि एक लाख रुपये का चेक भी लेते आना। मगर चेक पर किसी का नाम मत लिखना। मैंने तुरन्त तैयारी शुरू कर दी, एक लाख के बेरर चेक लिखा। बैंक से कुछ रुपये निकाले। दफ़्तर में छुट्टी के लिए फ़ोन कर दिया। और आज सुबह गाड़ी लेकर रोशन अली के पते पर रवाना हो गया। रोशन अली ने कहा था कार से लगभग चार घण्टे में चिंचोली पहुँच जाओगे। चिंचोली पहुँचकर किसी से भी 'आराम घर फार्म हाउस' पूछ लेना। चिंचोली से सिर्फ पन्द्रह मिनट का अन्तर है। मैंने घड़ी देखी बारह बज रहे थे। मैं सुबह नौ बजे चला था। तीन घंटे हो गये थे। एकाध घंटे में चिंचोली पहुँच जाऊँगा। एक बार पुन: एक अनजाना अनदेखा स्त्री शरीर कल्पना में उभरने लगा। निगाहों में एक धनक सी खिंचने लगी। कभी तस्वीर इतनी धुँधली कि केवल एक आकर्षक परछाईं के सिवा कुछ नज़र न आता। कभी इस कदर स्पष्ट कि हर अदा मन को लुभाती-सी लगती, लहू में जलतरंग से बजने लगे। स्टैरिंग पर उँगलियाँ थिरकने लगीं। होंट अपने आप सिकुड़ने लगे और मुँह से सीटी की आवाज़ किसी फ़िल्मी धुन में ढ़लती चली गयी। वैसे तो मैं हमेशा खुश रहने की कोशिश करता हूँ मगर इस वक़्त मेरी खुशी उत्थान पर थी। मेरी कार तो सड़क पर दौड़ रही थी मगर मेरी आत्मा आकाश में उड़ रही थी। मैंने मस्ती भरी नज़र से अपने चारों तरफ़ देखा। मौसम भी मेरी तरह मस्त हो गया था। आकाश पर बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े धीरे-धीरे यों तैर रहे थे जैसे असंख्या जोड़े बाँहों में बाँहें डाले फ़्लोर डांस में व्यस्त हों। हवा कभी गालों में थपथपाती, बालों से अठखेलियाँ करती गुज़र रही थी। सड़क की दोनों ओर पेड़ों का सिलसिला-सा चला आया था। जिनकी फुंगियाँ आपस में सर जोड़े कानाकानी सी करती प्रतीत हो रही थीं। पेड़ों के उस पार दूर तक धान के खेत ही खेत दिखाई दे रहे थे। फसल खड़ी हो रही थी मगर पौदों में अभी बालियाँ नहीं आयी थीं। हवा के झोंकों के साथ पौधे लहलहाते हुए एक तरफ़ को यों झुक जाते जैसे किसी की अदृश्य उँगलियाँ उनमें कंघी कर रही हों। अगर कोई अन्य समय होता तो मैं कुछ देर रुक कर उस दिलकश दृश्य का आनंद अवश्य लेता मगर उस वक़्त शीघ्रतातिशीघ्र 'आराम घर' पहुँचने का विचार हर दृश्य से अधिक आकर्षक था।

चिंचोली पहुँच कर किसी से 'आराम घर' का पता पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ी। दाईं तरफ़ सड़क के किनारे ही एक बड़ा-सा बोर्ड लगा था जिस पर 'आराम घर' लिखा था। और तीर का निशान बना था। मैंने बिना किसी से पूछे दाईं तरफ़ गाड़ी मोड़ दी। यह एक अधपक्की पतली-सी सड़क थी। जिसकी दोनों तरफ़ सरकंडों और करवंदों की झाड़ियाँ उगी हुई थीं। कहीं कहीं जामुन और काजू के पेड़ भी नज़र आ जाते थे। सड़क हर दो चार फलांग के बाद एक ओर को मुड़ जाती थी। अर्थात कोई हैलीकॉप्टर से सड़क को देखे तो उसे यों लगता जैसे एक बड़ा लम्बा सा साँप झाड़ियों के बीच से रेंगता जा रहा है। और मेरी लाल रंग की टोयटा... वह तो बिल्कुल ही पारस मणि जैसी नज़र आती। रोशन अली के अनुसार वाकई पन्द्रह बीस मिनट के बाद ही मेरी कार 'आराम घर' के गेट पर खड़ी थी। हॉर्न की आवाज़ सुनकर चौकीदार ने जालीदार फाटक खोला और सलाम करके एक तरफ़ को हट गया। मैं कार अन्दर लेता चला गया। सामने बँगले का पोर्च नज़र आ रहा था। कार जैसे ही पोर्च में दाखिल हुई मैं कार का दरवाज़ा खोल कर नीचे उतर आया। रोशन अली ने आगे बढ़कर तपाक से हाथ मिलाया, ''ख़ुशामदीद। रास्ते में कोई दिक्कत तो नहीं हुई?''

''बिल्कुल भी नहीं?''

''चलो मुँह हाथ धो लो... खाना लग गया है।''

खाने की मेज़ पर सिर्फ हम दोनों ही थे। मैंने कनखियों से इधर उधर देखा मगर मुझे वहाँ सिवाय उस नेपाली बटलर के कोई दिखाई नहीं दिया जो दौड़ दौड़ कर हमें गर्म गर्म फुलके खिला रहा था। खाने के बाद रोशन अली मुझे ड्राईंगरूम में बिठाकर यह कहता हुआ अन्दर चला गया कि ''तुम थोड़ी देर आराम कर लो मैं अभी हाज़िर होता हूँ।''

मैं ड्राईंग रूम में डनलप के नर्म सोफ़े पर पसर कर बैठ गया। चार घण्टे की ड्राइविंग से कुछ कुछ थकान महसूस हो रही थी। जिस पर खाना भी कुछ ज्यादा हो गया था। मेरी आँखें खुद बखुद मूँदने लगी। फिर पता नहीं मुझे कब झपकी आ गयी।

नींद में भी अजीब धुकड़ पकड़ चलती रही। कभी घुँघरुओं की आवाज़ आती और 'बीस साल बाद' की वहीदा रहमान छम्छम् भागती हुई दिखाई देती। कभी किसी गाने की आवाज़ आती और 'महल' की मधुबाला झूले पर झूलती नज़र आती। तभी किसी आहट से मेरी आँख खुल गयीं। सामने रोशन अली खड़ा मुझे गौर से देख रहा था।

''मेरा ख़्याल है। तुम थक गये हो। आज यहीं मेरे गेस्ट हाउस में रुक जाओ। कल सुबह चले जाना।''

मैंने कलाई की घड़ी की तरफ़ देखा। साढ़े तीन बज रहे थे। ''नहीं भाई। रात में रुकने का सवाल ही नहीं, कल एक ज़रूरी मीटिंग अटैंड करनी है। मुझे तुम चार बजे तक विदा कर दो तो अच्छा है।'' फिर मैंने झिझकते हुए कहा। ''मैं... वह... एक लाख का चेक भी ले आया हूँ।''

''अरे, चेक की कोई बात नहीं। वह तो मिल ही जाएगा। पहले माल तो देख लो।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रोशन अली ने आँख दबाते हुए कहा।

यद्यपि मैं औरत को सर पर बिठाने वालों में से नहीं हूँ। तथापि जाने क्यों उस वक़्त रोशन अली का औरत को माल कहना अच्छा नहीं लगा। शायद इसलिए भी कि वह जो कोई भी हो निकट भविष्य में मेरी संपत्ति बनने वाली थी। मेरे माल को कोई और माल कहे मैं यह कैसे गँवारा कर सकता था। इतने में भीतरी कमरे का दरवाज़ा खुला। एक औरत धीरे-धीरे क़दम उठाती हमारी तरफ़ बढ़ रही थी। वह काली शलवार कमीज़ पहने हुए थी और काला दुपट्टा जिस पर सुनहरी रंग की गोंट थी, उसके गले में पड़ा था। उसका रंग खुलता हुआ था जो काले रंग के लिबास में अधिक खिल उठा था। उम्र पचीस तीस के आस-पास होगी, मगर बदन का कसाव लिबास की बंदिशों से बगावत करता नज़र आ रहा था। चेहरे के नक्श ख़ासे लुभावने थे। उसके गले और हाथ में कोई आभूषण नहीं था। अलबत्ता कानों में दो बूंदे लटक रहे थे। जिनके मोती दो जुगनुओं की भाँति झिलमिल झिलमिल कर रहे थे। वह हमारे सामने आकर खड़ी हो गयी, उसकी पलकें झुकी हुई थीं। मगर आँखें सूजी हुई थीं। यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह भीतर सो रही थी अथवा रो रही थी।

मैंने रोशन अली की ओर देखा। वह मुझे ध्यान से देख रहा था। मानो मेरा मनोभाव जानने की कोशिश कर रहा हो। उसने आँखों ही आँखों में पूछा, ''कैसी है?'' मेरे दिल की धड़कन तेज़ हो गयी थी। मैंने भी मुँह से कुछ कहने की बजाये आँखें झपका कर अपनी पसन्द व्यक्त कर दी। औरत कुछ पल रुकी रही। फिर रोशन अली का इशारा पाकर उलटे कदमों से लौट गयी।

मैंने जल्दी से अपना ब्रीफ़केस खोला और एक लाख रुपये का चेक रोशन अली की ओर बढ़ाता हुआ बोला, ''तुमने नाम लिखने के लिए मना किया था।''

''हाँ...'' उसने चेक लेते हुए कहा। यह एक लाख रुपये एक तरह से बानों का महर भी है। और कन्यादान भी। यह रक़म उसके नाम पर बैंक में जमा कर दी जाएगी।

''कौन बानो?'' मैंने चौंक कर पूछा।

''वही जो अभी आयी थी।''

''ओहो। मगर यह बानो है कौन?''

''तुम्हें आम खाने से मतलब हैं, पेड़ गिनने से क्या फ़ायदा?''

''फिर भी... जिसके साथ एक ही छत के नीचे रहना हो। उसके बारे में कुछ तो जानकारी चाहिए।''

''हूँ...'' रोशन अली ने एक लम्बी हुंकारी भरी। फिर बोला, ''बानो... मेरी बीवी थी।''

''क्या?'' मुझे जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो।

''थी... अब नहीं है। मैंने उसे तलाक़ दे दिया है। तुम जब तक उसे रखना चाहो रखो। जब छोड़ दोगे मैं वापस रख लूँगा। कोई परेशानी की बात नहीं।''

रोशन अली इतने इत्मीनान से यह सब कह रहा था जैसे वह अपनी बीवी का नहीं बल्कि किसी सेंकेंडहैंड कार का सौदा कर रहा हो। मैंने हकलाते हुए कहा, ''मगर तुम ने ऐसा क्यों किया रोशन अली! कोई दूसरी औरत भी तो मिल सकती है।''

''बानो भी तो औरत ही है।''

''मगर मुझे यह ठीक नहीं लग रहा है।''

''क्या ठीक नहीं लग रहा है। मेरा बानो को तलाक़ देना या उसे तुम्हारे हवाले करना।''

''यार रोशन अली! समझने की कोशिश करो। वह तुम्हारी बीवी है।''

''है नहीं थी... चाहो तो तुम भी उसे बीवी बना कर रख सकते हो। मगर उसके लिए महर अलग से देना होगा।''

वह पल भर को रुका फिर जल्दी से बोला, ''खैर यह तुम्हारा ज़ाती मामला है कि तुम उसे किस तरह रखना चाहते हो। मेरा उसमें दखल देने का कोई इरादा नहीं।''

रोशन अली की बातें सुनकर मुझे तो जैसे साँप सूँघ गया था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि रोशन अली से क्या कहूँ। मैं अजीब चिन्ता में था। मेरी ज़िन्दगी में कई औरतें आयीं और गयीं मगर इस प्रकार की सौदेबाज़ी से वास्ता नहीं पड़ा था। मैं सोच भी नहीं सकता था कि रोशन अली इस प्रकार का लेन-देन भी कर सकता है। जी में आया मना कर दूँ मगर दूसरे ही क्षण बानो की आकर्षक काया और सुन्दर चेहरा आँखों में घूम गया। मुझे मौन देख कर रोशन अली बोला, ''अगर तुम मेरी बातों से सहमत नहीं हो तो तुम अपना चेक वापस ले सकते हो।''

''न... नहीं, ऐसी बात नहीं...'' मैंने जल्दी से कहा।

''फिर क्या बात है?''

''तुमने मुझे कनफ्युज्ड कर दिया है रोशन अली! मैं फैसला नहीं कर पा रहा हूँ।''

''मैंने तुम्हारे मिजाज़ का ख़्याल रखते हुए बानो का चुनाव किया था। तुम जैसी औरत चाहते थे, मुझे यकीन है बानो उस पर खरी उतरेगी। वैसे आगे तुम्हारी मर्ज़ी।''

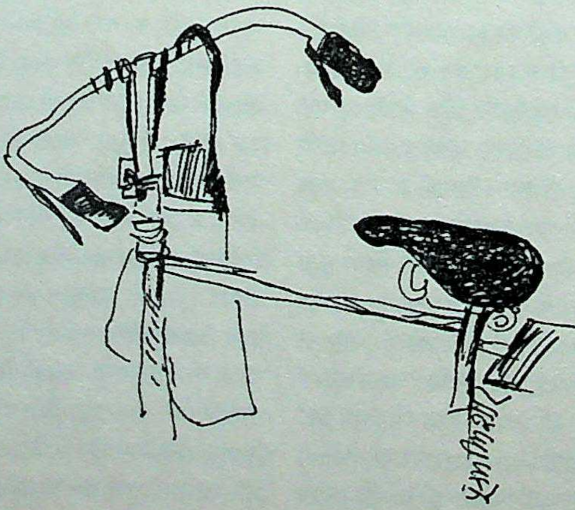

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रोशन अली उठ कर अन्दर जाने लगा। उसके माथे पर बल पड़ गये थे। मैं लपक कर उसका रास्ता रोकता हुआ बोला, ''तुम तो नाराज़ हो गये।''

''फिर क्या करूँ। मैं तुम्हारी मदद करना चाहता हूँ। और तुम फिज़ूल में बहस किये जा रहे हो।''

''अच्छा बाबा... मुझे मन्जूर है बस।'' मैंने मुस्कराते हुए उसके दोनों काँधों पर हाथ रख दिये।

''तुम पर कोई दबाव नहीं।'' उसकी नाराज़गी क़ायम थी।

''कह दिया ना मुझे मंजूर है। आय एम सॉरी...।''

''उसके होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गयी।''

''तुम रुको मैं बानो को लेकर आता हूँ।'' रोशन अली अन्दर चला गया मैंने उस से माफ़ी तो माँग ली थी मगर मेरे अन्दर अब भी एक उथल पुथल मची हुई थी। बचपन में तितलियाँ पकड़कर माचिस की डिबिया में बन्द करने का शौक था मुझे। जब कोई तितली डिबिया में घुट कर मर जाती तो मैं बहुत दुखी होता और प्रतिज्ञा करता कि अब कोई तितली नहीं पकड़ूँगा। मगर फिर कहीं से कोई रंगीन तितली उड़ती हुई आती और मैं उसके पीछे भागने लगता। इस वक़्त भी कुछ वैसी ही विचित्र सी मन:स्थिति से दो चार था। मैं उसी उधेड़बुन में बेचैनी से टहलने लगा। अचानक एक कोंदा सा लपका। मुझे रोशन अली के शब्द याद आये, ''तुम जब तक उसे रखना चाहो रखो। जब छोड़ दोगे मैं वापस रख लूँगा।''

''धत् तेरी की... इतनी साफ़ बात मेरी समझ में क्यों नहीं आई। यकायक मेरा सारा भ्रम समाप्त हो गया और मुझे ऐसी राहत महसूस हुई मानो सख़्त घुटन की स्थिति में ठंडी हवा का झोंका भीतर आ गया हो।''

इतने में रोशन अली बाहर निकला। उसके पीछे बानो भी थी। उसके कंधे से एक छोटा शोल्डर बैक लटक रहा था। और सीधे हाथ में एक पिंजरा झूल रहा था। पिंजरे में एक पहाड़ी मैना विकलता के साथ गोल गोल घूम रही थी। दोनों मेरे क़रीब आये। मैं मैना को गौर से देख रहा था। रोशन अली बोला, ''बानो की बहुत चहेती है। उसके साथ ही रहेगी। कोई ऐतराज़ तो नहीं?''

''नहीं... इसमें क्या ऐतराज़ हो सकता है।'' मैंने जल्दी से कहा और बानों की तरफ़ मुड़ा वह मैना को देख रही थी। हम तीनों बाहर निकले। रोशल अली मेरे क़रीब आया और फुसफुसाता हुआ बोला, ''इत्मीनान रखो तुम्हें मायूसी नहीं होगी।''

फिर उसने मुड़ कर बानो के कंधे पर हाथ रख दिया। मैं समझा रोशन अली इस आखिरी लम्हे में कुछ भावुक हो जाएगा। आख़िर बानो उसकी बीवी थी। मगर उसके चेहरे पर कोई मलाल नहीं था। बानो ने एक बार गरदन उठाकर उसकी तरफ़ देखा फिर पर्स से काला चश्मा निकाल कर आँखों पर चढ़ा लिया। मैं समझा शायद वह अपने आँसू छुपाना चाहती है। मगर उसका चेहरा भी एकदम सपाट था। मैं हैरान था कि उसका पति उसे दूसरे मर्द के हवाले कर रहा था। उसका सौदा हो रहा था। वह बेची जा रही थी। मगर वह बिल्कुल अनजान दिखाई दे रही थी। जैसे सारी कारवाई किसी और के साथ हो रही हो। मैं दरवाज़ा खोलकर गाड़ी में बैठ गया। बानो चुपचाप मेरी बगल में आकर बैठ गयी। मैना का पिंजरा अपनी गोद में रख लिया। मैंने गाड़ी स्टार्ट की और हाथ उठा कर रोशन अली को 'अलविदा' कहा। रोशन अली भी हाथ हिला रहा था। मगर बानो ने एक बार भी मुड़ कर उसकी तरफ़ नहीं देखा। वह पिंजरे पर मुँह रखे मैना को पुचकार रही थी। पति पत्नी का यह रिश्ता मेरी समझ से बाहर था।

चिंचोली तक कच्ची-पक्की सड़क का फ़ासला तय करने के बाद हम मुम्बई गोवा रोड पर आ गये। मैंने घड़ी देखी, पाँच बज रहे थे। अगर कहीं रुके बिना सफ़र जारी रखा जाये तो नौ बजे तक मुम्बई पहुँचा जा सकता था। मैंने कार की रफ़्तार बढ़ा दी और चोर नज़रों से बानो की तरफ देखा। वह मैना के पिंजरे पर झुकी हुई थी और मैना पिंजरे में लटकते झूले पर उलटी-लटकी झूल रही थी। उसका दुपट्टा उसकी गरदन के गिर्द लिपटा हुआ था। ढलते सूरज की रोशनी में उसका चेहरा दमक रहा था और कानो में पड़े बुंदे दो चिंगारियों की भाँति सुलग रहे थे। आँखों पर काला चश्मा उसी तरह लगा हुआ था। मैंने उसे अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए कहा, ''बड़ा प्यारा परिन्दा है। कहाँ से खरीदा था?''

''उसने गरदन तिरछी करके मेरी ओर देखा, फिर पिंजरे पर झुक गयी। मुझे उसकी खामोशी अच्छी नहीं लग रही थी। मैंने थोड़ा लगावट से कहा, ''क्यों तुम मेरा नाम भी नहीं पूछोगी बानो?'' मगर उसकी खामोशी में कोई फ़र्क नहीं आया। वह उसी तरह पिंजरे पर झुकी रही। मुझे अपनी हतक महसूस होने लगी। मैंने आवेश में आकर कार की रफ़्तार बढ़ा दी। अब कार हवा में बातें कर रही थी। सामने सड़क पर एक गड़रिया पशुओं का रेवड़ हाँके लिए जा रहा था। रास्ता तंग था इसके बावजूद मैं रफ़्तार कम किये बिना आगे निकल गया। बानो पिंजरे के साथ मेरी गोद में आ गिरी। मैना पिंजरे में बुरी तरह फड़फड़ाई और शोर मचाने लगी। मैंने रफ़्तार कम नहीं की। बानो फिर सीधी होकर बैठ गयी, बोली अब भी नहीं। अलबत्ता आँखों से चश्मा उतार लिया। मैंने झुँझला कर जोर से ब्रेक लगाये। गाड़ी चरचराती हुई सड़क के किनारे रुक गयी, बानो एक हाथ से पिंजरे को सीने से लगाये दूसरे से हैंडल थामे बैठी थी। मैंने चीख कर कहा।

''तुम बोलती क्यों नहीं? क्या तुम गूँगी हो?''

उसने घायल निगाहों से मेरी ओर देखा। मैना निरन्तर शोर मचा रही थी। वह कुछ देर उसे पुचकारती रही। फिर अचानक पिंजरे का दरवाज़ा खोल कर मैना को बाहर निकाला। उसे दोनों हाथों से थाम कर अपने चेहरे के करीब लाई। उसे चूमा और दूसरे ही क्षण खिड़की से बाहर हवा में उछाल दिया। मेरे मुँह से आनायास निकला।

''यह क्या किया?''

वह खिलखिला कर हँस पड़ी। और दूर फ़िज़ा में उड़ती मैना को देखती रही। जो अब धीरे-धीरे एक लरज़ता बिन्दु बनती जा रही थी।

11/9, एल.आई.जी. कालोनी
कुर्ला (पश्चिम), मुम्बई-400070
मो. 09322511897

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

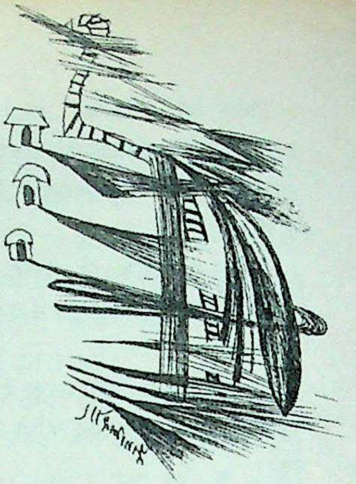

आसमान ही आसमान

अब्दुस्समद

जैसे तेज़ रफ़्तार जेट उड़ते-उड़ते अचानक रुक गया हो हवा में बिलकुल। या फिर कोई बहुत तेज़ रफ़्तार गाड़ी या फिर दादा जी की समझ में नहीं आ रहा था कि उन्होंने कौन सी ऐसी बात कह दी है। एक आम सी बात कही थी उन्होंने अपने विचार के रूप में दूर-दराज़ वाली बात अगर कोई थी भी तो उनके दिल की थी। कोशिश तो उन्होंने पूरी की थी कि दिल की बात जबान पर न आये लेकिन...

वही अपनी अनुभवी और बूढ़ी आँखों से दूसरों की आँखें पढ़ने की कोशिश करते रहे। पता नहीं किन-किन आँखों में उनके लिए क्या-क्या चीज़े वर्णित हो रही थीं। वह ख़ानदान के बुजुर्ग थे और उनका सम्मान करने पर सब लोग मजबूर थे। जो चीज़ें भी उनके लिए वर्णित हो रही थीं वह एहसासात और आँखों की चाहारदीवारियों के भीतर....

मामला शायद परम्परा का था कि जो बात उन्होंने अपने विचार के रूप में कही थी, उसने सारे घर की सोच की रफ़्तार को...... । यह सोचकर बिलकुल यह बात उन्होंने जबान से नहीं निकाली थी कि वह एक तेज़ रफ्तार जेट को अचानक, बिलकुल अचानक रोक देंगे।

उन्होंने सारी उम्र अपने आपको बहुत समेटकर रखा। हमेशा यह कोशिश की कि वह किसी पर बोझ न बनें, बल्कि सभी के लिए लाभ कमाने का माध्यम बने रहें। इस सिलसिले में उन्हें आग के कितने दरियाओं को पार करना पड़ा, इससे सिर्फ़ वही परिचित थे सारी पीड़ा उनके व्यक्तित्व तक सीमित... किसी को पता भी नहीं चला और वह अमूल्य नगीने की तरह अपने ख़ानदान में जुड़े रहे। हर समस्या का निदान उनके पास था, समस्या चाहे भावनात्मक हो, मनावैज्ञानिक हो, कानूनी हो या फिर आर्थिक। भला ऐसे बुज़ुर्ग का कौन नहीं मान करेगा? होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात कहा जाता है कि रोनी में सारा टैलेन्ट दादा जी का आया है। दादा जी भी इस बात को मुस्कराकर जैसे स्वीकार करते। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने रोनी जैसा कोई कारनामा अंजाम नहीं दिया था। उनके समय में शिक्षा का इतना महत्त्व कहाँ था और फिर उन्हें नौकरी भी कौन सी करनी थी! उनकी ज़मींदारी और ज़मीनें इतनी फैली हुई थीं कि उन्हें ढंग से सँभालना किसी स्टेट को चलाने से कम था क्या?

एक छोटे-मोटे से स्टेट को चलाने के लिए हज़ारों-लाखों शिक्षित समाज से मंथन किये हुए क्रीम लग जाते हैं, फिर भी वह स्टेट ऊपर वाले के सहारे ही चलता है। यहाँ अकेले दादा जी ने भारी-भरकम डिग्रियाँ प्राप्त किये बिना अपनी ज़मीनों का यों बन्दोबस्त किया हुआ था कि आज दुनिया के चप्पे-चप्पे पर उनके बेटे, भतीजे, पोते, नाती, दामाद फैल गये थे। दादा जी ने अपने आप ही एक ठिकाना बना लिया। उनके बाल-बच्चे चाहे विश्व के जिस प्रान्त में हों, आते अपने ठिकाने ही की ओर। वे जहाँ भी रहें उनका रुख दादा जी की ओर होता। रानी तो उनके शरण और देख-भाल ही में पली-बढ़ी थी। उसके पहलूदार व्यक्तित्व में जहाँ कहीं भी कोई कमी होती, उनका विशेष परिश्रम और अनुभवी दृष्टि उसे पूरी कर देती। पहले तो वह अपनी क्लासों में फ़र्स्ट आती गयी। फिर पूरे स्कूल में प्रथम आयी, फिर राज्य और देश स्तर पर उसकी बुद्धिमानी के फूल खिले। अख़बारों में उसकी तस्वीरें छपीं। मीडिया वाले उसका साक्षात्कार करने घर आये। बहुत से संगठनों एवं संस्थाओं ने अपने तौर पर उसे सम्मानित किया। उसने अपने इन्टरव्यू में अपने अथक परिश्रम के अलावा दादा जी के मार्गदर्शन की भी चर्चा की। जो लोग उत्साह के साथ उससे मिलने आते, वे दादा जी के चरण छुये बिना नहीं रहते। ऐसा बुज़ुर्ग उन्होंने सुना न देखा।

एक विदेशी हवाई कम्पनी ने विश्व स्तर पर प्रतियोगिता प्रायोजित करवायी, जिसमें सफलता प्राप्त करने वाले छात्र-छात्रा विदेशी यूनिवर्सिटियों में कम्पनी के खर्च पर उच्च शिक्षा प्राप्त करते फिर उन्हें कम्पनी ही में आकर्षक तनख्वाहों पर रख लिया जाता। एक निर्धारित समय के बाद वह आज़ाद हो जाते। रोनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतियोगिता में बैठी और अपने देश की एकमात्र सफल उम्मीदवार के रूप में चयनित हुई। फिर सारे देश में उसकी क्षमता और योग्यता का डंका बज गया।

''अब रोनी विदेश जाकर अपने देश का नाम रोशन करेगी...''

''ये उम्र और ये कारनामे!''

''हो तो ऐसी... दादाजी की मेहनत और निगरानी''

''सब अपनी जगह पर। लेकिन टैलेन्ट तो लड़की का ही है...''

''भई, टैलेन्ट तो अपने देश में गली-गली जंगल झाडू की तरह फैले हुए हैं, दादा जी की तरह काट-छाँटकर उन्हें कोई आकर्षक बना दे तब ना! वह तो उस लड़की का भाग्य है।'' तरह-तरह की बातें, लेकिन सब में एक बात कॉमन दादा जी का नाम।

रोनी के जाने की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से शुरू हुईं। कपड़े-लत्ते, किताबें, पासपोर्ट, वीज़ा आदि-आदि। घर के लोगों को जहाँ उसके जाने की खुशी थी, वहाँ उनके दिल उसकी जुदाई में बैठे भी जा रहे थे। पराई ज़मीन, पराया आसमान अजनबी माहौल और समाज और उसमें यह नन्हीं-सी जान लेकिन जब वह रोनी की रोशन आँखों में सफल भविष्य की असाधारण चमक देखते तो सब कुछ भूल जाते। उसके चेहरे पर आने वाले अजनबी माहैल की एक हलकी-सी किरण भी नहीं थी। सिर्फ़ जिज्ञासा ही जिज्ञासा। सवालों की एक अन्तहीन लड़ी और आँखों में जलती बुझती एक जोत-सी जवाबों की।

उस दिन सभी लोग दादा जी के कमरे में एकत्र हुए। उनकी तबीयत कुछ नासाज़ सी थी। लोगों को पता था कि यह सब रोनी के जाने का प्रभाव है। दादा जी उसे चाहते बहुत थे न...!

''वहाँ के मौसम का, टेम्प्रेचर आदि का पता लगाया है ना। इसके कपड़े-वपड़े?''

दादा जी ने पायताने रखे कम्बल को ऊपर कमर तक खींचते हुए अचानक पूछ लिया।

''सब तैयारियाँ पूरी हैं... स्वेटर, ट्रॉउज़र...''

रोनी के पिता ने सारी चीज़ों के नाम गिना दिये। दादा जी के चेहरे पर संतोष की एक हल्की सी झलक प्रकट हुई फिर दूसरे ही क्षण लुप्त हो गई। वह शून्य में घूरने लगे, पता नहीं वह क्या सोच रहे थे।

''वहाँ की यूनिवर्सिटियों के बारे में सारी जानकारियाँ?'' थोड़ी देर के बाद उन्होंने फिर पूछा।

''वीडियो कैसेट देखा है।....चिन्ता की कोई बात नहीं बहुत अच्छी यूनिवर्सिटी है स्टूडेन्ट बहुत फ्री रहते हैं उन्हें फोन करने और फोन रिसिव करने की पूरी आज़ादी है।''

''और क्या आज़ादी है?'' दादा जी ने जैसे बेख़्याली में पूछ लिया।

''सब तरह की। स्टूडेन्ट घुटन महसूस नहीं करते। किसी प्रकार की कोई रोक-टोक नहीं, यही कारण है कि...''

रोनी के पिता पर वीडियो कैसेट का बहुत प्रभाव था और वह बहुत ही उत्साह में वहाँ की वकालत कर रहे थे। उनका वाक्य पूरा होने से पूर्व ही दादा जी ने अर्थपूर्ण अन्दाज़ में उनकी ओर देखा। वह शायद और कुछ बोलना चाह रहे थे, उनके अन्दाज़ से तो यही लग रहा था। सब प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी देर के बाद दादा जी ने धीरे से पूछा, ''वहाँ लड़के-लड़कियाँ आपस में मिलते होंगे...। साथ-साथ रहते होंगे?''

''यहाँ कौन सी लोहे की दीवारों के बीच रहते हैं पिताजी?'' रोनी के पिता को दादा जी की सादगी पर हँसी-सी आ गयी।

''हाँ लेकिन'' दादा जी कुछ कहते-कहते रुक गए।

''लेकिन?''

सब की उत्सुकता और बढ़ गई। पता नहीं दादा जी क्या कहना चाह रहे थे।

''यहाँ लड़की रात में तो घर आ जाती है!''

बस यही एक बात थी जो ऊपर से उतर कर आचनक फैली कि...

दादा जी ने इतनी बड़ी बात कह दी......?

रोनी का रोते-रोते बुरा हाल हो गया। सभी हैरान थे। घर का माहौल बहुत खुला था और सबकुछ दादा जी की आँखों के सामने था। फिर उनके भीतर की वह कौन सी फाँस थी!

रोनी के जाने का समय बहुत निकट था, लेकिन दादा जी के एक वाक्य ने आगे के समय को पता नहीं पीछे खींचकर कहाँ गुम कर दिया था!

घर में सबकुछ सबकी मर्ज़ी से होता लेकिन हर एक बात में दादा जी की सहमति और अनुमति प्राप्त कर ली जाती। सबकी सन्तुष्टि भी हो जाती और वह सब अपने आपको ज़िम्मेवारी से मुक्त भी महसूस करते। घर का जो माहौल था वह दादा जी के सामने था, इसलिये वह पूरे समाज में एक बहुत ही स्वतंत्र विचार व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किये जाते थे। लेकिन अभी जो उन्होंने बहुत धीरे से अपने तौर पर सिर्फ़ अपनी संतुष्टि के लिये एक बात कही तो पूरी की पूरी गाड़ी उलटी पटरी पर खड़ी हो गयी।

वास्तव में उनसे इस समस्या पर खुलकर बात तो नहीं की जा सकती थी। उनके एक संकेत मात्र से चारों तरफ़ अजीब-अजीब तस्वीरें उगने लगी थीं। उनके भीतर उतरने का प्रयास किया जाता तो पता नहीं कौन-सी अपरिचित और विचित्र दुनिया उनके सामने आ खड़ी होती। वर्तमान स्थिति में वह बर्दाश्त करने में सक्षम थे या नहीं, उन्हें खुद सन्देह था।

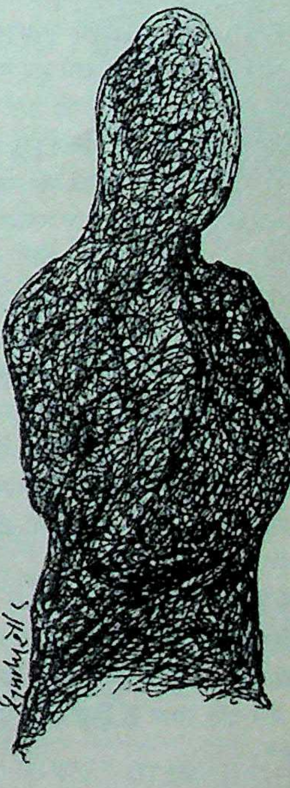

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रोनी के जाने की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। उसे तो बस विमान में ले जाकर बैठा देना ही शेष था। अगर दादा जी बहुत पहले अपनी बात कह देते तो शायद विमान की सीढ़ियों और रोनी के बीच दूरी बहुत बढ़ जाती। अब तो बस यह कि विमान सामने खड़ा था, उसकी सीढ़ियाँ भी लगी हुई थीं, जाने वाला मुसाफ़िर अचानक जंगले में बन्द हो गया था और जंगले की चाभी...?

दादा जी भी अपने कमरे में क़ैद ही होकर रह गये थे। उनके सवालों के जवाब तो सब दे देते, लेकिन उनसे कोई कुछ पूछता नहीं था। वस्तुत: उनके मान-सम्मान में कोई अन्तर नहीं आया था। लेकिन परदे के पीछे जो कुछ हो रहा था वह दादा जी की अनुभवी और ज़माना-परख आँखों से ओझल कैसे रह सकता था! उनकी लम्बी उम्र में शायद पहली बार ऐसा कुछ हो रहा था। इस तरह की स्थिति को रोकने की भाग-दौड़ ही में तो उन्होंने अपना सारा जीवन बिता दिया था।

स्थिति दिन ब दिन गम्भीर होती जा रही थी। दादा जी ने भी कुछ नहीं कहा था। दूसरी ओर भी लोगों के पास कहने को कुछ नहीं था। एक अजीब अविश्वसनीय स्थिति अचानक तारी हो गई थी। ऐसे में भैया जी ठहरे हुए पानी में अचानक एक ईंट के छपाके की तरह प्रकट हुए। भैया जी दादा जी की बिलकुल कार्बन कॉपी थे। उन्हीं की तरह अनुभवी और ज़माना-परख, ऊँच-नीच को अच्छी तरह समझने वाले और राह में आने वाली बहुत सारी देखी-अनदेखी रुकावटों को अन्दर-अन्दर पाटते हुए जैसाकि दोनों के बीच कई पीढ़ियों का अन्तराल था लेकिन जब दोनों साथ बैठते तो बिलकुल दोस्त मालूम होते। वास्तव में वह रोनी को विदा करने आये थे और यह भी मात्र संयोग कि वह आजकल इन इलाक़ों में मौजूद थे वरना वह तो विश्व भ्रमण... उनके पैरों में तो ख़ुद ही भँवर बँधे होते।

उन्होंने तुरन्त भाँप लिया कि दुल्हन मंडप में बैठी है और मूहर्त का समय निकला जा रहा है। उन्होंने तत्काल कुछ नहीं किया तो वह फिर शायद आने वाले समय के दादा जी कभी नहीं बन सकेंगे।

''दादा जी इस बात से आपका मतलब?''

दादा जी और उनके बीच संवाद की कोई समस्या नहीं थी।

दादा जी चौंक उठे। इस सीधे वाक्य के लिए वह तैयार नहीं थे। वैसे भी उन्होंने कौन-सी ऐसी बात कही थी जिसके एक या कईअर्थ हों।

''मतलब कि क्या? मैंने तो बस एक बात।''

''आपके मुँह से बेमतलब बात? ये कैसे हो सकता है दादा जी, हम तो आपके मुँह से निकल हुए एक-एक शब्द को मोती की तरह महत्त्व देते हैं...''

भैया जी के बात करने के अन्दाज़ से दादा जी चुप से हो गये, बात तो उनके दिल की थी ही, अलबत्ता उनसे कहीं कोई चूक ज़रूर हुई थी...

थोड़ी देर ख़ामोश रहने के बाद उन्होंने धीरे से कहा।

''बेटा मैंने कोई अनुचित बात तो नहीं कही। लड़की अभी पूरी तरह बालिग हुई नहीं, बाहर का माहौल उनकी संस्कृति, आपस में उनका खुलकर मिलना-जुलना।''

भैया जी ठहाका मारकर हँस दिये ''आप भी कमाल के हैं दादा जी। मैं तो आपको बहुत स्वतंत्र विचारों वाला समझता था, लेकिन आप तो''

''स्वतंत्र विचार का तो मैं हूँ बेटा लेकिन अपनी संस्कृति की जड़ों को कैसे भूल जाऊँ, जो गहरी बहुत गहरी होती चली गई हैं।''

''मेरे प्यारे दादा जी, अपने देश के अनगिनत लोग दुनिया में फैले हुए हैं। आप समझते हैं उन्होंने अपनी जड़ों को भुला दिया है ?'' भैया जी भी शायद कमर कस के आये थे।

''मेरे कहने का ये मतलब नहीं पुत्तर। दरअसल मेरे कहने का मतलब है कि जवानी नई-नई जवानी बिलकुल अंधी होती है। और जब उस पर कोई रोक-टोक नहीं हो तो तूफ़ान बन जाती है। मैं डरता हूँ तो बस इस बात से कि कहीं शीशे पर बाल........''

इतने दिनों का तनाव बाहर हुआ तो उन्हें जैसे राहत-सी मिली। वह निढाल से हो गये। उनकी पेशानी और मूँछों पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें उभर आई थीं।

''दादा जी...! दुनिया कहाँ से कहाँ निकल गयी और आप हैं कि...इसका मतलब है कि हम ज़माने की गति से अपनी गति को मिला नहीं सके।'' भैया जी के परिपक्व भाषण पर दादा जी की भँवें काँप सी गयीं। उन्होंने सवालिया लेकिन खुरदुरी निगाहों से उस बच्चे की तरह देखा जो उचक-उचककर अपने साथ चलते हुए बड़े आदमी के कान छूने का प्रयास कर रहा हो। जवाब में भैया जी ने एक ठहाका लगाया, जिसकी कोई तुक दादा जी की समझ में नहीं आई। वह उनके उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे।

''अपनी संस्कृति सर-आँखों पर। अपनी जड़ें बहुत मजबूत। लेकिन दुनिया अब मेरी और आपके इतिहास की मुट्ठी में बन्द नहीं रही। ये दुनिया अब विज्ञान की है दादा जी। अब हमारा स्तर देखिए न दादा जी, ये दो इन्च की चमड़े की ज़बान है न...'' भैया जी ने अपनी जीभ को निकालकर यों दिखाया जैसे किसी बच्चे को कुछ समझाने के लिए दिखाया जाता है। दादा जी टुकर-टुकर देखते रहे।

''इस ज़बान से हम चौबीस घंटों में कितने झूठ, कितनी ग़लत बातें कहते हैं, फिर भी यह ज़बान काली तो नहीं पड़ती और हम इसे काटकर तो नहीं फेंक देते!'' भैया जी पता नहीं कितनी देर तक भाषण देते रहे। दादा जी ने तो उनके पहले ही वाक्य पर यह निर्णय कर लिया था कि उनके पास अपनी बात वापस लेने के सिवा कोई चारा नहीं।

भैया जी कोई और नहीं, उनका अपना ख़ून थे। रोनी का भी ख़ून...और शायद भैया जी को भी पता था कि घर के सारे लोग दादा जी के कमरे के बाहर अपने कान लगाये खड़े थे। इसलिए जब वह दादा जी को अन्दर गुमसुम छोड़कर बाहर आये तो उनकी बात ज़मीन से उठकर, सरों से उठकर, छतों और कोठों से उठकर आसमान तक फैल चुकी थी, जिस तरह दादा जी की बात...

अन्तहीन फैले आसमान में रोनी का विमान मात्र एक छोटी-मोटी चिड़िया ही तो दिख रहा था!

अध्यक्ष, उर्दू परामर्शदात्री समिति
बिहार सरकार, राजभाषा विभाग, पटना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राष्ट्र की सभी भाषाओं के साहित्य के विकास को समर्पित एक संकल्प

रेमाधव
शब्द कला के संगी

हमारे प्रकाशन से प्रकाशित कुछ नवीनतम आकर्षण

विविध

चीनी यात्री सुंगयुन (यात्रा-वृत्तान्त)	:	जगन्मोहन वर्म्मा
संसार में निर्मल वर्मा (अन्तिम साक्षात्कार)	:	सम्पादक : गगन गिल
ओ रे माँझी (फिल्मकार विमल राय का संसार)	:	प्रहलाद अग्रवाल
यूरोप के स्कैच (यात्रा-वृत्तान्त)	:	रामकुमार
ठग (सामाजिक इतिहास)	:	श्रीपान्थ
हरम (सामाजिक इतिहास)	:	श्रीपान्थ
नारी का मुक्ति-संघर्ष (स्त्री-विमर्श)	:	डॉ. अमरनाथ
स्त्रीलिंग निर्माण (स्त्री-विमर्श)	:	मल्लिका सेनगुप्त
आजादी की बस्ती (संस्मरण)	:	मनोरमा दीवान
कृष्णद्वैपायन व्यास (चरित्र विश्लेषण)	:	नृसिंहप्रसाद भादुड़ी

उपन्यास

देवरानी-जेठानी की कहानी (हिन्दी का पहला उपन्यास)	:	पं. गौरीदत्त (सं. पुष्पपाल सिंह)

कहानी-संग्रह

हिन्दी कहानी का पहला दशक	:	सम्पादक : डॉ. भवदेव पाण्डेय
मेरी प्रिय सम्पादित कहानियाँ	:	कमलेश्वर
मेरी प्रिय सम्पादित कहानियाँ	:	राजेन्द्र यादव
मेरी प्रिय सम्पादित कहानियाँ	:	अवधनारायण मुद्गल
मेरी प्रिय सम्पादित कहानियाँ	:	ज्ञानरंजन
मेरी प्रिय सम्पादित कहानियाँ	:	रवीन्द्र कालिया
कथा-समग्र	:	रामकुमार
कथा-समग्र	:	दूधनाथ सिंह

शीघ्र प्रकाश्य कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

स्कूप (विभाजन से वर्तमान तक की अन्तर्कथाएँ)	:	कुलदीप नैयर
नवाज शरीफ की कहानी उनकी जुबानी (पाकिस्तानी प्रधानमंत्री के तख्तापलट की अन्तर्कथा)	:	सुहेल वड़ाएच
ध्रुवसत्य (उपन्यास)	:	द्रोणवीर कोहली
अधूरी इबारत (उपन्यास)	:	हरिपाल त्यागी
सफर (उपन्यास)	:	विजय
आकाशचम्पा (उपन्यास)	:	संजीव

रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

सी-94, सेक्टर-63, नोएडा-201301 (उ.प्र.) फोन : 0120-2401804 फैक्स : 0120-2401803

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

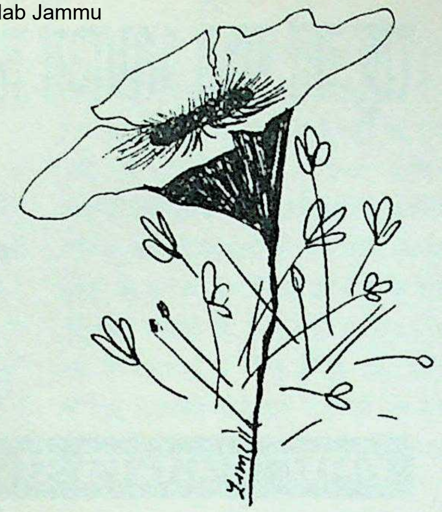

कटखनी

शाहिद अख़्तर

आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी! परवीन कसमसाई, एक दो बार करवट बदली, फिर सीधे होकर आँखें खोल दीं। कुछ लम्हों बाद जब निगाहों से नींद का खुमार कुछ कम हुआ तो अँधेरे कमरे में हल्की-सी रोशनी का एहसास हुआ। गर्दन को आहिस्ता से घुमाया, चाँद की रोशनी खिड़की के झीने पर्दे से छनकर अन्दर आ रही थी। सर के ऊपर पंखा तेज़ी से घूम रहा था। उसी रफ़्तार से दिमाग़ में ख़्यालात गर्दिश कर रहे थे। दो-तीन मिनट तक वह चक्कर काटते हुए पंखे को देखती रही, फिर जाने क्या सोचकर हौले से मुस्कराई। नज़र बायीं ओर गयी तो तीनों छोटी बहनें बेख़बर सो रही थीं। रूबीना और शाहीना अभी दो दिन पहले ही अपनी ससुराल से कुछ दिनों के लिए रहने आयी थीं! दोनों के दो-दो बच्चे थे! गोद वाले तो माँओं की छातियों से चिपके हुए थे, पर पाँच साला महविश और जुबैर बाहर आँगन में नानी के पास लेटे हुए थे! परवीन की सबसे छोटी बहन सना जो अब चौदहवें में लगी थी, सबसे किनारे हाथ-पैर पसारे दुनिया जहान की फ़िक्रों से आज़ाद सोई हुई थी। वह सोचने लगी, क्या कभी इतनी गहरी नींद उसे भी आयी है?

कुछ क्षणों तक वह उन्हें ग़ौर से देखती रही। चेहरे पर आते-जाते रंग मन:स्थिति प्रकट कर रहे थे। एक गहरी साँस लेकर उसने निगाह फिर से छत पर केन्द्रित कर दी। गर्मी तेज़ी से बढ़ रही थी। ऐसे में बिजली का कई-कई घण्टे ग़ायब रहना शान्ति भंग करने में और सहायक सिद्ध होता। यद्यपि आधी रात के बाद मौसम थोड़ा बेहतर हो जाता लेकिन परवीन के अन्दर उमस और घुटन वैसी की वैसी ही रहती। उठकर किवाड़ के पास रखी सुराही से कटोरे में पानी निकाला और गट-गट करके पी गयी। कटोरे पर कल की कलई करवाई थी, जिसकी वजह से वो अँधेरे में भी चमक रही था। पानी पीने के बाद कटोरे को उलट-पलटकर देखती रही फिर वापस आकर चारपाई पर लेट गयी। शक़ हुआ कि प्यास अभी बुझी नहीं है। उसे और पानी पीना चाहिए था पर अब दोबारा उठने की इच्छा न हुई। सोचा कि अगर थोड़ी देर नींद और न आयी तो उसे उठना ही पड़ेगा। दिमाग़ में चलती हुई हवाएँ कभी सरसराती हुई गुज़र जातीं और कभी आँधियों का रूप धारण कर लेतीं। हज़ारों तस्वीरें फ़िल्म के दृश्य की भाँति ओवरलैप हो रही थीं। एक कसक... एक चुभन... बेचैनी... और तमाम ज़िन्दगी एक नाकाम इंसान होने का एहसास सबसे अधिक पीड़ा देता— होश सँभालते ही जिनसे पाला पड़ा था और अब तो वह मुक़द्दर बन गया था। हर चीज़ की आदत डाल ली थी उसने परन्तु अच्छी बुरी आदतों के फ़ायदे-नुकसान बहुत होते हैं।

रात के इस हिस्से में उसकी कठिनाइयाँ और बढ़ जातीं और ऐसा अक्सर होता, बल्कि रोज़ ही। अर्धरात्रि के पश्चात उसकी आँख खुल जाती और फिर देर तक नींद से झगड़ा होता। जाने कहाँ-कहाँ की बातें... कब की बातें... विचारों में गुम रहना। हालाँकि यह सब दिन में भी जारी रहता, पर रात को बात और होती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात में किसी काम की उलझन नहीं होती, सारा दिन तो घर-गृहस्थी में ख़ुद को इतना व्यस्त रखती। रात में वह पूरी तरह स्वतन्त्र होती जितना चाहे सोचे, जितना चाहे उदास हो। कोई देखने-सुनने वाला नहीं, और तो और मोण्टी भी व्यवधान उत्पन्न नहीं करती।

कहने को तो मोण्टी एक मुर्ग़ी थी लेकिन परवीन से उसका सम्बन्ध और तरह का था। उसके अतिरिक्त ये भेद मोण्टी को मालूम हो तो हो, अन्यथा कोई नहीं जानता। गाल के नीचे रखे हुए हाथ के पसीजने का एहसास हुआ तो उसने हाथ निकाला। पंखे की तेज़ हवा रुख़सारों से टकराई तो कुछ ताज़गी-सी लगी। बचपन की तस्वीर एक बार फिर आँखों के सामने लहरा गयी।

आठ बरस की दुबली पतली-सी लड़की, दो चोटियाँ बाँधे हुए। कान में चाँदी की बालियाँ। मेंहदी लगे हाथ। क्या वक़्त था! उन दिनों हर समय हाथों में हिना लगी रहती थी। कैसी-कैसी शरारतें करती थी! कितनी मस्त रहा करती थी! शुरू से ही वह बहुत अल्हड़ सी थी। अम्मा को उसकी शोख़ियाँ बिल्कुल पसन्द नहीं थीं। बात-बात पर उसे फटकारतीं, लेकिन उस पर किसी बात का असर न होता। वही करती जो उसके जी में आता। तले ऊपर की तीन बहनें उसे बाज़ी कहती थीं मगर जहाँ तक उसे याद था वह उनकी बाज़ी नहीं बल्कि माँ बनी हुई थी। अम्मा ने पैदा करने के अलावा और भी कुछ किया था, उसे याद नहीं। उनका गू-मूत तक वही करती और ये सब करने के बावजूद चेहरे पर कभी शिक़न नहीं आयी। बहनों से उसे मोहब्बत भी थी। सुबह ज़ल्दी उठकर तीनों को मदरसे के लिए तैयार करना... नाश्ता...झाड़ू...बर्तन...वग़ैरह निपटाना। अम्मा सिर्फ़ हंडिया चढ़ातीं। रोटी पकाने की ज़िम्मेदारी भी उसी पर थी। गर्मियों में मिट्टी के चूल्हे के सामने सेर भर आटे की रोटी पकाते वक़्त वह निढाल-सी हो जाती। पूरा बदन पसीने में भीगा होता। जम्पर जिस्म से ऐसे चिपकता जैसे आटा तवे पर। पंखे के सामने बैठकर जब हवा खाती तो लगता जैसे अनार फूट रहे हों। कितनी कम उमर से सब कुछ सँभाल लिया था उसने! वह ग़ौर करती कि उसकी तमाम सहेलियों के घरेलू हालात उससे बहुत भिन्न थे पर उसी के साथ ऐसा क्यों हो रहा था! इसका उत्तर वह कभी तलाश नहीं कर पायी।

परवीन को शादियों का भी बहुत शौक़ था— चाहे गुड़िया गुड्डे की हो या किसी इंसान की। उसकी खुशियाँ छिपाए नहीं छिपतीं। बस मालूम भर हो जाए कि फलाँ की शादी है। दुल्हन की क्या तैयारियाँ होंगी जैसी वह स्वयं करती! सबसे अधिक परेशानी कपड़ों के चयन में होती। ये तय करना कठिन होता कि कौन से ज़्यादा ख़ूबसूरत लगेंगे, हालाँकि गिनती के सूट थे इसके बावजूद यह बड़ा दुश्वार मरहला था।

एक बार अम्मा की चौथी का ग़रारा निकाल लिया। अम्मा अगरचे बकस पर से बकस हटाते हुए उसे देखती रही थीं पर उन्हें अन्दाज़ा तब हुआ जब वह पहनकर उनके सामने आ खड़ी हुई "अम्मा देखो कैसा लग रहा है?"

"ये ग़रारा चमकाने के लिए किसने कहा था तुझसे?" आधे घण्टे तक वह बड़बड़ाती रही थीं। वह रुआँसी हो गई थी।

जोशोख़रोश में उसके बाद भी कोई कमी नहीं आई। थोड़े अन्तराल के बाद फिर वही सब शुरू हो गया। हाँ ये ज़रूर किया कि इस बार अम्मा की नज़र न पड़े। बार-बार ख़्याल को झटकती मगर हर बार लगता जैसे उसी की शादी हो। शर्म-ओ-हया के गहने विचारों को और मज़बूत करते। अम्मा के ताने बदस्तूर जारी थे। उसने भी तय कर लिया था कि प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करेगी। बेपरवाही का ऐसा मुज़ाहिरा करती कि अम्मा को शक़ होने लगता जैसे वह किसी और से कह रही हों। अम्मा को पराजय का एहसास होता तो वह और ज़ोर से चीख़ने लगतीं।

अम्मा की अपेक्षा अब्बा से उसे भय लगता। अब्बा और उसके मध्य एक अज्ञात-सी दूरी थी जिसे काफ़ी दिनों तक तो वह समझ ही नहीं सकी। हालाँकि उन्होंने कभी फूल की छड़ी भी उसे नहीं छुआई थी।

शाहीना के बच्चे के रोने की आवाज़ से विचारों का तारतम्य टूटता। तुरन्त ही शाहीना की आँख खुल गयी। उसने थपकी देकर पुनः सुलाने का प्रयास किया। थोड़ी देर बाद दोनों सो गये।

परवीन पानी की तलाश में हिरनी की तरह मरुस्थल में भटकने लगी। शादी-ब्याह में नाचने के लिए किसी के कहने की प्रतीक्षा नहीं करती। ढोलक पर थाप पड़ी और वह खड़ी हो गयी। जब तक थककर चूर चूर न हो जाती थिरकती ही रहती। उसके बाद दुल्हन के पास जा बैठती और आँखों में आशा की किरण जलाए निहारती रहती। उसके ज़ेवर, कपड़े, बनाव-सिंगार। उस रात बड़ी मुश्किल से ही सो पाती। ज़रा-ज़रा देर में करवट बदलती। रह-रहकर दुल्हन का सुर्ख़ जोड़ा आँखों में लहरा जाता, झूमर और टीका बहुत बेचैन करता। अपनी शादी का अरमान उम्र के साथ बढ़ता ही रहा, अन्तर केवल इतना हुआ था कि यह बात किसी से कह नहीं सकती थी, वरना पहले तो उठते-बैठते रट लगाए रहती थी कि मेरी शादी करो नहीं तो मैं भाग जाऊँगी। सब उसकी बातों पर हँसते। यहाँ तक कि अम्मा भी बिना मुस्कराए न रह पातीं। परिस्थितियाँ अब कुछ और थीं। अम्मा को उसके इरादों की भनक तक लग गयी तो रंडी और छिनाल के नाम आगे पीछे जुड़ जाएँगे। आत्मा की इच्छाओं के आगे शरीर के तक़ाज़े बहुत छोटे साबित हुए। माँ-बाप की इज़्ज़त व मान रखना पहली प्राथमिकता थी और उसे बस इतना याद रह गया था।

अब्बा की मिल की नौकरी... छोटी-सी तनख़्वाह और छः लोग खाने वाले। आमदनी का और कोई और स्रोत नहीं। दाल-रोटी ही किसी तरह चल रही थी।

सरकारी स्कूल के होते लड़कियों ने मैट्रिक तक शिक्षा भी प्राप्त कर ली। एक सूट सिलता तो सब मिलकर पहनतीं। रूखी-सूखी खाने के बावजूद परवीन की उठान ऐसी थी कि जो देखता एक बार चौंकता ज़रूर था। लड़कों की नींदें ही उड़ गयी थीं। कइयों ने इश्क़ का लंगर फेंका लेकिन वह घाट से नहीं खुली। परचे, पुर्ज़ियाँ भी हाथ आयीं पर उसकी सेहत पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

वह गोरी तो नहीं थी पर रंग साफ़ था। तीखे नैन नक़्श, गदराया हुआ बदन। पन्द्रह की होते-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होते तक साढ़े पाँच फिट के ऊपर। उसे देखकर घर की माली हालत का कोई अन्दाज़ा नहीं लगा सकता था। दर्पण के सामने जब भरी-भरी कलाइयों को ग़ौर से देखती तो ख़ुद से शरमा जाती... खनकती हुई रंगीन चूड़ियाँ! हथेलियों में ख़ूब रची हुई मेंहदी!... और तो और ख़ुद उसमें देखने की ताव न रहती। अपने संयम पर उसे आश्चर्य होता। वह ऐसी क्यों हैं? क्रोध भी आता पर उससे भी क्या होना था। चेहरे पर उदासी का प्रतिवाद का एक शब्द किसी ने नहीं सुना। किसी को क्या ख़बर ज़िन्दगी कितनी मुश्किल है! उसकी अपेक्षा बहनों की विचारधारा एकदम विपरीत थी। वो पलटकर जवाब ही नहीं देतीं, बराबर से ज़बान भी चलातीं, बल्कि इस बहाने सारा आक्रोश व्यक्त कर देतीं। शायद इसीलिए अम्मा उनसे नहीं उलझतीं।

क्या वक़्त था वो भी... मस्त हिरनी की तरह कस्तूरी की सुगन्ध में कुँलाचे मारती और झरनों के संगीत की तरह गूँजती। किसकी नज़र लग गयी उसे! सब कुछ कितना बदल गया! हर चीज़ में परायेपन का एहसास होता है अब। काश उसकी मुर्दा तमन्नाएँ क़ब्र से निकलकर रात में भी डराना छोड़ दें। बरसों पुराने गुड्डे-गुड़ियाँ, जिनकी शादियाँ उसने बड़ी धूम से की थी, अब तक सुरक्षित रखी थीं। अजीब खेल है ये भी, वह सोचती। जब कभी अकेली होती उन्हें निकाल बचपन की यादें कर ताज़ा करती। कई बार आँखें नम भी हो जातीं, मगर फ़ौरन दुपट्टे से उन्हें पोंछ डालती।

अनगिनत सवाल थे उसके पास जो रात दिन उसे परेशान करते। अपने आपको विश्वास दिलाना कठिन हो जाता। क्या सचमुच अब्बा को एक ऐसा लड़का नहीं मिला जिसे उसका हाथ थमा देते! कम ही सही मगर शरीफ़ लोग हैं तो अब भी। एक जगह बात पक्की भी हो गयी थी। कितनी ख़ुश थी वह उन दिनों! टूटी-फूटी तैयारियाँ शुरू हो गयी थीं कि अचानक कानाफूसी होने लगी। वातावरण एकदम बदल गया। उसे बहुत डर लगा। शाहीना ने तभी उसे बताया कि अब्बा ने बात ख़त्म कर दी। अपनी आँखों से शराब पीते हुए देखा था उसे। वह दिन था और आज का दिन। परवीन के नसीब में दोबारा वह घड़ी नहीं आयी। कहीं अम्मा ने जानबूझ कर तो ऐसा नहीं किया! उन्हें भय हो कि मेरी वजह से उनकी जो आर्थिक सहायता हो रही थी उस पर प्रतिबन्ध लग जाएगा। नहीं, कोई अपनी औलाद के लिए ऐसा नहीं कर सकता। ख़ुद ही आरोप लगाती और ख़ुद ही रद्द करती। ठीक है ख़ानदान में उनके जैसा कोई ग़रीब नहीं, पर क्या दुनिया जहान में भी कहीं कोई एक ऐसा आदमी नहीं बना था जिस पर अब्बा की नज़र पड़ती! मोहल्ले के जाने कितने अब भी उससे शादी करने को तैयार थे। घर की चाहारदीवारी में रहकर उसे मालूम है पर अब्बा को कुछ नहीं मालूम। किससे माँगे इन सवालों के जवाब? जिनके पास जवाब हैं वह तो नज़रें चुराते फिरते हैं!

देर तक एक ही करवट लेटने की वजह से कुछ उलझन-सी हुई। एक दीर्घ श्वास खींची... लबों में हल्की-सी जुम्बिश हुई। बहनें अब तक गहरी नींद में सो रही थीं। किसी खपरैल पर बिल्ली के कूदने की आवाज़ आयी। कुछ पलों के बाद गली से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ अतीत की प्रतिध्वनि में व्यवधान उत्पन्न करती। उठकर उसने फिर पानी पिया। माचिस जलाकर घड़ी देखी। बहुत रात हो गयी थी, बल्कि सुबह होने में अब ज़्यादा देर न थी। उसे सो जाना चाहिए, उसने सोचा। फजिर की अज़ान से उसकी व्यस्तता फिर से शुरू होने वाली थी। थके हारे क़दमों से बिस्तर की तरफ़ आयी। लेटने से पूर्व निर्णय किया कि अब कुछ नहीं सोचेगी और चारपाई पर ढेर हो गयी। काफ़ी देर तक आँखें बन्द किए पड़ी रही, मगर नींद का दूर-दूर तक पता नहीं था। हारकर उसने आँखें खोल दीं।

गुड़ियों की शादियों का सिलसिला बन्द ही हुआ था कि मुर्ग़ी पालने का शौक़ पैदा हो गया। मोहल्ले के अधिकतर घरों में मुर्ग़े, मुर्ग़ियाँ और पालतू जानवर मौजूद थे। पहली बार दो चूज़े ख़रीदे थे उसने। हालाँकि लेने का कोई इरादा नहीं था मगर वे इतने प्यारे लगे कि वह ख़ुद को रोक न पायी। और भी कई लोगों ने ख़रीदे थे। ख़ाली समय में उन्हें गोद में सँभाले बैठी रहती। मख़मली परों पर हाथ फेरती तो गुदगुदी-सी होती लेकिन एक हफ़्ते में ही दोनों अल्लाह को प्यारे हो गये। उसने दोबारा ख़रीदे, मगर इस बार ये शर्त भी शामिल थी कि मादा होने चाहिए। ये बाद में मालूम हुआ कि इनकी शिनाख़्त इतनी आसान नहीं। बहरहाल बड़े जतन से बराबर वाली रशीदा ख़ाला से कह कर मँगवाए थे। उनके मियाँ के एक फ़ार्म वाले से गहरे सम्बन्ध थे। पिंजरे की व्यवस्था पहले ही कर ली थी। काकुन और बाजरे के लिए सना को दौड़ाया। बच्चों की चीं-चीं की आवाज़ उसे बहुत अच्छी लगती थी।

तीसरे दिन रात के आख़िरी पहर चूज़े के शोर से उसकी आँख खुल गयी। वह बुरी तरह चीख़ रहा था। फुर्ती से उठकर बत्ती जलायी। पिंजरा खुला हुआ था और उसमें से एक चूज़ा ग़ायब था। उसका दिल धक से रह गया। हाथ डालकर उसे बाहर निकाला। वह भय से थर-थर काँप रहा था। परवीन को आश्चर्य हुआ कि बिल्ली ने कितनी ख़ामोशी से काम दिखा दिया था। उसकी नींद तो आहट में खुलती थी! एक नन्ही-सी जान उसकी वजह से गयी थी। वह स्वयं को उसका अपराधी समझने लगी। देर तक मन उदास रहा। बकस से कपड़ा निकाला और एहतियात से बच्चे को लपेटा। देर तक उसे सहलाती-चुमकारती रही। अन्ततः वह शान्त हो गया, मगर थरथरी यथावत बनी रही। आधे घंटे बाद दरवाज़ा तार से बन्द करके पिंजरा मचान पर रख दिया और बत्ती बुझाकर लेट गयी।

सुबह आँख खुली तो सबसे पहले नज़र पिंजरे की तरफ़ गयी। बच्चा कोने में गर्दन झुकाए बैठा था। चीं...चीं... का स्वर ग़ायब था। उसे जिज्ञासा हुई। बच्चे को उसने बाहर निकाला। इससे पहले कि कुछ प्रयास करती, दस मिनट के अन्दर उसने भी दम तोड़ दिया। इस बार वह अपने आँसू नहीं रोक पायी। तीन दिन में इतना लगाव हो गया था कि इतने साल ग़ुजर जाने के बाद भी वह उसे नहीं भूल पाई थी और तब ही से अण्डे खाने छोड़ दिए, वरना उससे पहले वह अण्डे बहुत शौक़ से खाती थी। इस घटना के बाद कई बरस तक वह चूज़ा पालने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का साहस नहीं जुटा सकी थी।

अभी साल भर पहले एक मादा चूज़ा रशीदा ख़ाला दे गयी थीं। उसने बहुत मना किया पर वह ज़बरदस्ती छोड़ गयीं "ये नहीं... मरेगा... मेरा दिल बोलता है और मैंने इसका नाम मोण्टी रख दिया है।" प्रारम्भिक ख़तरों से चूँकि वह निकल चुका था, शायद इसलिए वह तैयार हो गयी।

फ़जिर से पहले रोज़ की तरह मोंटी ने अज़ान देनी शुरू की तो परवीन की आँख खुल गयी। नींद यद्यपि पूरी नहीं हुई थी मगर उसके उठने का समय हो गया था और आज तो जुमा था। तभी उसे याद आया मुर्ग़ी अज़ान नहीं देती।

जुमे को उसका काम और बढ़ जाता। सबको नहाना होता। कपड़े धुलते। सफ़ाई-सुथरायी सो अलग। पिंजरे की तीली निकाल कर मोण्टी को बाहर किया। प्राकृतिक आवश्यकताओं से निपटकर वज़ू किया। मोण्टी अभी तक बाहर नहीं गयी थी, उसे हैरत हुई। पहले तो वह कुछ ठिठकी... क्या हो गया... इसे? गो कि एक हफ़्ते से कुछ सुस्त दिखाई दे रही थी पर उसने तवज्जो नहीं की, लेकिन इस वक़्त वह बीमार-सी लग रही थी। परवीन का आश्चर्य और बढ़ गया। शाहीना और रूबीना के बच्चे भी पास आकर खड़े हो गये। तभी परवीन को याद आया कि तीन रोज़ से अण्डे भी तो नहीं दिए। ऐसा पहली बार हुआ था। मुर्ग़ियों के बारे उसकी जानकारी बहुत कम थी। नमाज़ का वक़्त निकला जा रहा था। मोण्टी को अपने हाल पर छोड़कर वह अन्दर चली गयी।

मुसल्ला लपेटकर दरवाज़े पर लटकाया। बावर्चीख़ाने में जाकर चाय का पानी चढ़ाया। रूबीना और शाहीना बच्चों को मुँह धुला रही थीं। अब्बा कमरे में बैठे तिलावत कर रहे थे। चाय की एक प्याली वह अब्बा के पास तिपाई पर रख आयी। उन्होंने नज़र उठाकर परवीन को देखा। उसे लगा जैसे वह कुछ कहना चाह रहे हों पर ऐसा नहीं हुआ। घरेलू काम या किसी ज़रूरत के अलावा अब्बा से कोई संवाद नहीं होता। वह भी हाँ हूँ में जवाब देती पर अब उसे उन पर दया आने लगी थी। उसका जी चाहता कि वह उन्हें विश्वास दिलाए, उन्हें बता दे कि उसे शादी नहीं करनी है। आप क़तई मुज़रिम नहीं हैं। वग़ैरह-वग़ैरह! मगर इतना हौसला कहाँ था कि अब्बा के सामने मुँह खोलती! अब्बा का मुरझाया शर्मसार चेहरा देखकर उसकी हमदर्दी बढ़ती ही जा रही थी। जुमे की नमाज़ से पहले नयी मस्जिद में मौलवी साहब का बयान शुरू हुआ। वह आटा गूँथ रही थी। रूबीना वग़ैरह कमरे में बच्चों के साथ टीवी देख रही थीं। उसने कहा अज़ान होने वाली है, टीवी बन्द कर दो। कमरे में ख़ामोशी छा गयी। सारे लोग बाहर निकल आये। परवीन ध्यान केन्द्रित कर बयान सुनने लगी, "गर्मी, यहाँ क्या गर्मी है! जहन्नुम की गर्मी का तसव्वुर कीजिए।" इससे ज़्यादा होगी, हौले से बुदबुदाई थी वह। हाथ धोकर कुण्डा नेअमत ख़ाने में रखा और रसोई से बाहर निकल गयी।

थक हारकर जब रात को बिस्तर पर गयी तो फिर वही उधेड़बुन। अब तो ख़ैर उसके रिश्ते आने ही बन्द हो गये थे। तीस साल की उम्र में लड़की का रिश्ता आमतौर से इस तबके में नहीं आता। अब अगर आ भी जाए तो क्या फ़ायदा! वह साफ़ इंकार कर देगी। अब तो उसने सब्र कर लिया है। उम्मीद का कोई चिराग़ रोशन नहीं था अब। तमन्नाएँ दम तोड़ चुकी थीं। उमंगों का रंगीन क़ाफ़िला तो बहुत पीछे छूट गया था। बनने-सँवरने का शौक़ जाने कब का ख़त्म हो गया! अब तो आईने के सामने जाते हुए भी डर लगता है। ख़ुद को पहचानने में दुश्वारी होती कि ये कौन-सी परवीन है! इतनी कमज़ोर, दुबली-सी, पिचके हुए गाल। रंग भी कितना धीमा हो गया था! आँखों के किनारे स्याह हल्के पड़ गये थे।

पिछले पाँच सालों से वह एक बुटीक के लिए कपड़े सिल रही थी और अब तो इतना व्यस्त कर लिया था ख़ुद को कि कुछ और सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। इस बहाने वक़्त तो कटता ही, पैसे भी मिलते। अब तो आमदनी हज़ारों में पहुँच गयी थी। जोड़े आसमान पर तय होते हैं, इस बात पर से मुद्दत हुई यक़ीन उठ चुका था। हालाँकि अब पहले से ज़्यादा मज़हबी हो गयी थी मगर रूबीना और शाहीना की शादी के मौक़े पर वह कोई रिस्क नहीं लेना चाहती थी। यही कारण था कि हर मामले में महती भूमिका उसी की थी। शायद ये उसी के अथक प्रयासों का परिमाण था कि दोनों बहनें अपने घरों की हो गयी थीं। उसे ख़ौफ़ था कि कहीं बहनों का हाल भी उसके जैसा न हो। बचपन से उनकी माँ तो वह ख़ुद को ही समझती आयी थी। रिश्ते तलाश करने से लेकर शादी ब्याह की तमाम ज़िम्मेदारियाँ उसी ने अंजाम दीं। अम्मा-अब्बा सिर्फ़ बुज़ुर्गी से बातचीत करने तक आगे रहे। इससे अधिक का उसने अवसर ही नहीं दिया।

शादी के बाद अब्बा से उसकी दूरी और बढ़ गयी, अलबत्ता अम्मा के व्यवहार में आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तन आया था।

परवीन बहनों के ख़्याल से भलीभाँति परिचित थी, इसी वजह से डर भी लगता। उसे अच्छी तरह मालूम था कि बहनों की विचारधारा उसके बिल्कुल विपरीत थी। रूबीना तो मोहल्ले के एक लड़के के फेर में आ भी गयी थी। जैसे ही उसे ख़बर लगी, किस किस तरह से उसे समझाया था। ख़ानदान की इज़्ज़त की दुहाई दी थी और ये विश्वास दिलाया था कि यथाशीघ्र तुमदोनों की शादी करेगी। आज ग़ौर करती है कि उस वक़्त अगर न रोका होता तो? अब्बा दोस्तों के साथ बाहर बैठ सकते थे इतने सुकून से? किसी को कानोंकान ख़बर नहीं लगने दी।

अब्बा रातों को उठ-उठकर ख़ून के आँसू रोते हैं। ये भेद परवीन को नहीं मालूम। वह किस दुःख से गुज़र रहे हैं, परवीन को भनक तक नहीं लगी। जिस आदमी पर चार जवान लड़कियों का बोझ हो वह शरीफ़ हो या न हो, मगर चैन की नींद तो नहीं सो सकता। लड़कियों से वह बताएँ भी क्या और लड़कियाँ जानें भी तो कैसे? ग़रीबी के बारे में सोचना और निर्धनता व अभाव के जीवनयापन में बहुत अन्तर है। परवीन की सवालिया निगाहों से वह इसीलिए बचना चाहते थे, हालाँकि रात दिन उसके बारे में सोचते रहते। ख़ामोश रहकर काम में मसरूफ़ रहने वाली परवीन का किस क़दर शोर सुनाई देता, ये वह ही जानते। रातों को जाग-जागकर ख़ुदा के हजुर गिड़गिड़ाए मगर कुछ न हो सका।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी-कभी परवीन पर ग़ुस्सा भी आता कि क्यों ये सब कुछ सहन कर रही है! अपनी मर्ज़ी से ही कहीं कुछ कर ले। बीबी के सामने जब ये ख़्याल रखा तो वह देर तक मियाँ का मुँह तकती रही। यह बात परवीन के दिमाग़ में भी कई बार आयी। जवानी की चौखट पर क़दम रखते ही चाहने वालों की भीड़ उसके आगे पीछे थी। उस वक़्त हालात कुछ और थे। इशारों से चिराग़ जलते थे। कौसे कुज़ह से रंग लिया कुछ नूर चुराया तारों से, ऐसी कशिश थी कि शिकारी ख़ुद शिकार हो जाया करते। अब सोचती है तो सब कुछ कितना अजीब लगता है जैसे किसी और की बात हो! हरचन्द कि उसने कभी किसी में संजीदगी नहीं दिखाई, पर सब कुछ बहुत अच्छा लगता था।

तमाम दिन का हिसाब किताब रात सोते समय लगाती। आशिक़ों की शरारतें बड़ी ख़ुशगवार लगतीं! जी चाहता कि ये सिलसिला यूँ ही चलता रहे। उम्र की इस मंज़िल में भी सब कितना दिलचस्प लगता! आज भी जब सोच लेती है, शरीर में सिहरन की दौड़ जाती है। क्यों किसी का दामन थाम नहीं लिया? अब अपने फ़ैसले पर हाथ मलने से क्या फ़ायदा! जिस गाँव जाना नहीं उसके कोस गिनने से क्या हासिल होगा?

माँ-बाप का विश्वास न तोड़ना अगर विजयी घोषित करता तो देह की आरज़ू का गला घोंटना पराजय का एहसास कराता। बदन का कसाव लाख ढीला पड़ गया हो परन्तु उसके जो तकाज़े थे वो तो अब भी उतने ही सख़्त थे। देह सुख का सम्बन्ध तो आयु पर निर्भर है और उसकी उम्र अभी ऐसी नहीं जहाँ तस्बीह और मुसल्ला ही जीवन का प्रतिफल हो। हालाँकि ध्यान बँटाने की बहुत कोशिश करती। टीवी वग़ैरह भी देखना इसीलिए छोड़ दिया था। पर ख़्यालों से रिहाई ऐसे कहाँ मिलती है!

ख़्यालों से छुटकारे की अपेक्षा अल्लाह के सामने भी प्रश्नचिह्न लगाती। उसकी दुआ प्रार्थना यदि वह स्वीकार कर ले तो उन एलीमेंटस का क्या करे जो आदम और हव्वा की मिट्टी में शामिल है! 'औरतें तुम्हारी खेती हैं' ये कहने की उसे क्या ज़रूरत थी। कैसी ऊट-पटांग बातें सोच डालती है वह भी कभी-कभी! अपने आप से झगड़ती, पर सवाल जवाब का सिलसिला किसी तौर नहीं रुकता।

कुछ ज़मीनें पथरीली और बंजर भी होती हैं। उन पर खेती की कल्पना सम्भव नहीं। शायद वह भी एक ऐसी ही उजाड़, वीरान, बंजर ज़मीन का टुकड़ा है। अपने आपको हर तरह से सान्त्वना देती, पर सब बेकार। भोर होते ही ज़िन्दगी की तर्ज़ बदल जाती। कोई शक़ भी नहीं कर पाता कि रात किस तरह गुज़री है। आँखों के पपोटों पर सूजन के कई बहाने उसके पास थे। घर की आर्थिक स्थिति अब पहले जैसी नहीं थी। उसका काम बहुत अच्छा चल रहा था। सना को भी अपने साथ लगा लिया था। रिक्त समय में उससे भी मदद लेती। कई बाहर वालियों से भी सिलवाने लगी थी। हफ़्ते के रोज़ खाने में ख़ास तौर से एहतमाम होता! आजकल शाहीना और रूबीना के आ जाने से बड़ी रौनक़ हो गयी थी। नयी-नयी चीज़ें पक रही थीं— कभी खिचड़ी, कभी निहारी। बिरयानी भी कई तरह से पकाई जा चुकी थी।

अब्बा को लेकर उसकी चिन्ताएँ पहले से अधिक बढ़ गयी थीं। वह अब्बा को हँसते-मुस्कराते हुए देखना चाहती थी। ख़ुशी और ग़म के कितने अवसर आये पर अब्बा की मोहब्बत कभी जोश में न आयी। सम्मान में उसकी गर्दन भी झुकी रही। सारी शिक़ायतें उसने वापस ले लीं। भाग्य का लिखा समझकर सबकुछ बर्दाश्त करने की आदत डाल ली। जब धार्मिक और सामाजिक बैरियर तोड़ने की उसमें ख़ुद हिम्मत नहीं थी तो किसी और को दोष क्यों दे?

नाश्ते के बाद रशीदा ख़ाला लपकती झपकती आयीं और एक साँस में कह गयीं कि बच्ची कोई हंडिया पकाई हो तो दो। शाम को लौकी-गोश्त पकाया था। रात को सहन में छींके पर लटका दिया पर कमबख़्त सड़ गया। गर्मी भी तो बेतहाशा पड़ रही है। दरअसल मौलवी साहब को आज जल्दी जाना है।

"अरे खाला तो इसमें इतने परेशान होने की क्या बात है! भिण्डी पकाई है अभी दिए देती हूँ।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "पर पहले मोण्टी के लिए मुझे नुस्खे बताएँ?"

"क्या हो गया है इसे?" उत्सुकता से उन्होंने मोण्टी की तरफ़ देखा। ज़रा-सी देर में ख़ाला को उसने विस्तार से बता दिया। सुनते ही वह बोलीं, "मुई... कुड़क हो गयी है। अण्डे तो तुम लोग हज़म कर गयी होगी। अब इसे किसी मुर्ग़े के पास छोड़ो।" परवीन का मुँह खुला का खुला रह गया। थोड़ी शर्मिन्दा भी थी कि कहाँ से कहाँ ख़ाला का छेड़ दिया!

"फुर्ती से आगे बढ़ उन्होंने मोण्टी का एक पर तोड़ा और उसके नथुनों में घुसेड़ दिया। "ये क्या कर रही हैं?" परवीन का आश्चर्य स्वाभाविक था।

"तुमको जब कुछ मालूम नहीं है तो चुप रहो। मेरी तो आधी ज़िन्दगी यही सब करने में ग़ुजरी है। पर न डालती तो मुई कटखनी हो जाती। अब सुबह को बाहर छोड़ देना। बाक़ी बातें अभी आकर बताती हूँ। ज़रा ये निकल जाएँ।" तभी उनका बेटा बुलाने आ गया।

"ऐ बच्ची मुझे तो सब्ज़ी दो, मैं चली।" परवीन ने उठकर रकाबी में सब्ज़ी दी। वह चली गयीं। उसने मोण्टी को ग़ौर से देखा। देर तक देखती रही। कुछ सोचकर आहिस्ता से मुस्कराई फिर सर को झटका दिया, जैसे ख़्यालों से छुटकारा इसी तरह मिलता है।

कई महीने से वह देख रही थी कि अब्बा मग़रिब की नमाज़ पढ़ने के लिए निकलते तो फिर ईशा के बाद ही घर आते। जल्दी से खाना खाते और चारपाई उठाकर बाहर निकल जाते। गर्मी भर वह बाहर ही सोते। जगह की तंगी मुख्य कारण था। सर्दियों में मजबूरी होती पर गर्मियों में गली-मैदान चारपाइयों, खटोलों से भरा होता।

अम्मा के व्यवहार में असाधारण परिवर्तन पहले ही आ चुका था। अब खुलेआम तारीफ़ें करतीं, "कहाँ होती हैं ऐसी लड़कियाँ आज के ज़माने में! बड़ी ज़्यादतियाँ की हैं मैंने अपनी परवीन पर। ख़ुदा मुझे माफ़ करे।" जहाँ बैठतीं परवीन की चर्चा करने लगतीं। उसकी आँखों में आँसू तैर जाते। अम्मा पर उसे तरस आने लगता। उनके सर में तेल लगाकर कंघी करती, हालाँकि अपने बारे में वह अब किसी से कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं सुनना चाहती थी। अब सारा ध्यान सना पर केन्द्रित था। उसके विवाह की पूर्ण व्यवस्था हो चुकी थी। वह सना को एम.ए. कराना चाहती थी ताकि उसकी शादी किसी पढ़े-लिखे घर में हो सके।

पहली और आख़री औलाद के दरिम्याँ क्या क़िस्मत ही इतना अन्तर पैदा करती है! सना को देखकर वह अक्सर ये बात सोचती।

सहेलियों से शादी-ब्याह का ज़िक्र छिड़ता भी तो उसके नुक़सान गिनवाने बैठ जाती। दोस्तों को हैरत होती कि परवीन वाक़ई इतनी बदल गयी है या हमें गुमराह कर रही है! मगर उसकी बातों से तो नहीं लगता कि वह झूठ बोल रही है। वैवाहिक जीवन के प्रति उसके सपने एवं चाहत मात्र लड़कपन की शरारतें भर थीं।

अब तक उसकी सब सहेलियों की शादियाँ हो चुकी थीं। सबके पास कई-कई बच्चे थे मगर परवीन से दोस्ती आज भी वैसी थी जैसी पन्द्रह साल पहले। जब वो मायके आतीं तो समय निकालकर परवीन से मिलने ज़रूर आतीं। किसी को क्या पता वह किन ज़जीरों में क़ैद है! हर किसी के लिए जीवन का अर्थ एक समान तो नहीं होता। हर किसी को कुछ कार्य इच्छा के विरुद्ध भी करने होते हैं। कुछ काम ऐसे होते हैं, जिन्हें करने को जी चाहता है पर नहीं हो पाते। बहुत कुछ अधिकार क्षेत्र में नज़र आता है पर होता कुछ भी नहीं। इसी का नाम ज़िन्दगी है। ताज्जुब है ऐसी ज़िन्दगी की भी लोग तमन्नाएँ करते हैं।

क्षणिक आनन्द के लिए माँ-बाप को हमेशा का दु:ख देने का साहस अगर वह जुटा लेती तो ये समस्या कब की समापत हो चुकी थी। मोण्टी और उसमें हज़ार समानता हो पर अन्तर भी तो है।

रोज़ की भाँति सवेरे उठकर उसने मोण्टी का पिंजरा खोला और ज़बरदस्ती उसे बाहर निकाला। पर्दा हटाकर उसे गली में छोड़ दिया। इससे पहले कि वह पलटती, एक चितकबरा मुर्ग़ा जाने कहाँ से तेज़ी से भागता हुआ आया और मोण्टी के ऊपर चढ़ गया। उसकी कलग़ज़ी चोंच में दबाई और बस... सरकश व ज़िद्दी मोण्टी ने हथियार डाल दिए। इतना आसान होता है ये सब! वह सोचने पर विवश थी। इतना-सा भी विरोध नहीं। पर्दे की आड़ में ठगी-सी खड़ी रह गयी।

राहगीर आ जा रहे थे। वह तुरन्त दरवाज़े से हट गयी। अन्दर आने पर मन बड़ा उचाट-सा रहा। किसी काम में जी नहीं लगा। दो घण्टे बाद मोण्टी घर में दाख़िल हुई। उसकी हालत एकदम बदल गयी थी। ऐसी ताज़ादम नज़र आ रही थी कि इससे पहले शायद कभी इतनी ख़ुश दिखाई दी हो। पक...पक...पकाक की आवाज़ से सरमस्ती झलक रही थी। परवीन के चेहरे पर लकीरें गहरी होती जा रही थीं।

एक माह तक मोण्टी ख़ुश व ख़ुर्रम रही। पाबन्दी से अण्डे देती रही पर महीने भर बाद एक बार फिर वही मस्ला खड़ा हो गया। सारी अकड़ फूँ भूल गयी। एक कोने में ढेर हो गयी। परवीन को इसी दिन का इन्तज़ार था। उसने तय कर रखा था कि अब वह उसे आइन्दा बाहर नहीं जाने देगी। उदास मोण्टी को देखकर उसे खुशी हुई। कहीं न कहीं जज़्बों को तस्कीन मिल रही थी।

कई दिन इसी तरह गुज़र गये। उसने घर वालों को बता दिया था कि इसे बाहर न जाने दें। पिंजरा खोला जाता तो चौखट का दरवाज़ा पहले बन्द किया जाता। मोण्टी पिंजरे से बाहर निकलती तो भी नीम मुर्दा-सी एक कोने में पड़ी रहती। कभी कभी पिंजरे के तारों पर चोंच से ज़र्ब लगाती। सुबह की बाँग से जो शोर शराबा पैदा होता था वह भी बन्द हो गया। खाना-पीना भी लगभग छोड़ दिया था। ज़ोर ज़बरदस्ती करने पर कुछ दाने चुग लेती या पालक की कुछ पत्तियाँ कुतर लेती।

हफ़्ते भर बाद एक दिन पिंजरा खुलते ही वह बाहर निकल आयी जैसे पहले से तय किए बैठी हो। परवीन उस वक़्त रोटी पका रही थी। मोण्टी उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। उसने थोड़ा-सा आटा खिलाना चाहा। आशा के बिल्कुल विपरीत मोण्टी ने इतनी ज़ोर से चोंच मारी की वह दम बख़ुद रह गयी। उँगली पर ख़ून छलक आयी था। मोंटी पलटकर फुर्ती से पिंजरे में घुस गयी। परवीन चलकर उसके पीछे आई। ख़ून टपकती उँगली उठाकर बोली,

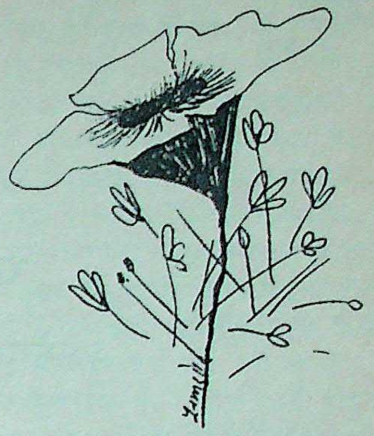

''कटखनी कहीं की! चाहे जो कुछ कर, अब बाहर नहीं जाने दूँगी।'' कहकर कमरे में जाकर उसने पट्टी बाँधी और फिर से काम में व्यस्त हो गयी।

रात के आठ बजे थे। रूबीना और शाहीना सुबह ही ससुराल वापस गयी थीं। एकदम से सन्नाटा हो गया था। परवीन घरवालों के साथ बैठी खाना खा रही थी। अम्मी ने कहा, ''बिटिया दाल में नमक कुछ कम है।''

''तो क्या करूँ! ख़ुद पका लिया करें।'' लगभग चीख़ने का सा अन्दाज़ था उसका। अम्मी-अब्बा फटी-फटी आँखों से उसे तके जा रहे थे। उन्हें यक़ीन नहीं हो रहा था। आज पहली बार ये लहजा और ये तेवर दिखाई दिए थे। कौर हाथ में पकड़े वह हैरत से परवीन को देखे जा रहे थे और वह लगातार बोले जा रही थी। बरसों का रुका हुआ बाँध अचानक टूट पड़ा था, ''बहुत कर लिया मैंने चाकरी! अब और मुझसे न होगा। मैं भी इंसान हूँ। आख़िर मेरे भी कुछ अरमान हैं, कुछ ख़्वाहिशात हैं...।'' कूँ.. कूँ...पक...पक...पकाक...! बिल्कुल अस्वाभाविक तौर पर पिंजरे के अन्दर से मोण्टी का स्वर गूँजा। वह ठहरकर उसे देखने लगी। मोण्टी पिंजरे की जाली पर चोंच से आक्रमण किये जा रही थी।

पोस्ट बॉक्स न.-1067
हेड पोस्ट ऑफिस, नबावगंज
कानपुर-208002

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

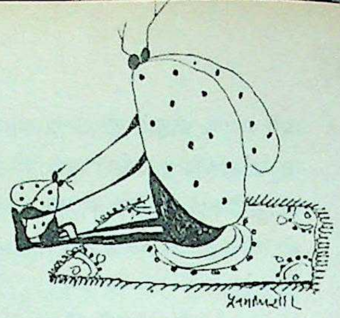

पाप

शमोएल अहमद

उसका दिमाग़ सन्न से रह गया...
पाँव तले से ज़मीन खिसक गयी...

ढाई लाख का गबन...?

वह सिर थामकर बैठ गया। मिनटों में ख़बर आग की तरह फैल गयी कि एकाउंट्स क्लर्क मुहम्मद शरीफ़ ने ढाई लाख का गबन किया।

किसी को यक़ीन नहीं आया कि यह काम मुहम्मद शरीफ़ का है। लेकिन कम्पनी के लेज़र-बुक में उसका नाम दर्ज था और कैशरोल में प्राप्तकर्त्ता की जगह उसका दस्तख़त मौजूद था। मैनेजर के सामने कैशरोल खुला पड़ा था। मुहम्मद शरीफ़ कमरे में दाख़िल हुआ तो मैनेजर ने चश्मे के अन्दर से घूरकर देखा, "दस्तख़त तो आपके हैं...?"

दस्तख़त उसी के थे।

मैनेजर का लहजा सख़्त हो गया, "आपको एक हफ़्ते की मुहलत दी जाती है। रक़म जमा कर दें वरना...।"

मुहम्मद शरीफ़ पर लरजा तारी हो गया... काटो तो बदन में लहू नहीं था। किसी तरह लड़खड़ाता हुआ मैनेजर के कमरे से बाहर निकला तो अमले ने उसे घेर लिया।

"ये सब कैसे हुआ...?"

शरीफ़ की जुबान चुप थी। एकाउन्टेंट ने कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा, "शरीफ़ कुछ बताओगे...?"

शरीफ़ रुआँसा हो गया। उसके मुँह से बमुश्किल निकला, "रक़म मैंने नहीं ली।"

"हमें यक़ीन है।" एकाउन्टेंट ने कंधा थपथपाया।

"ये उस कैशियर की कारस्तानी है।" किसी ने कहा तो शरीफ़ ने चेहरा दोनों हाथों से छिपा लिया और फफक-फफककर रो पड़ा।

शरीफ़ के आँसू थमे तो उसने विस्तार से बताया कि नलिनी कंस्ट्रक्शन वालों ने ढाई लाख का ड्राफ़्ट भेजा था जिसकी निकासी बैंक से होनी थी। उस दिन कैशियर छुट्टी पर था। मैनेजर ने ड्राफ़्ट उसके हवाले किया था। लेकिन किसी वजह से वो उस दिन बैंक नहीं जा सका था और दूसरे दिन कैशियर छुट्टी से वापस आ गया था। कैशियर ने ये कहकर ड्राफ़्ट ले लिया था कि लेखा में समायोजन कर लेगा।

"और उसने गबन कर लिया?" एकाउंटेंट बोला।

शरीफ़ ने हाँ में सिर हिलाया।

"लेकिन तुमने कैशरोल पर दस्तख़त क्यों किये?"

"उसने कहा कि अथॉरटी लेटर मेरे पास है। दस्तख़त भी मुझे ही करना चाहिए।"

"और तुमने कर दिया?"

"मैं क्या जानता था उसकी नीयत में फतूर है...?"

"उसने बैंक वालों से मिलकर किसी तरह ड्राफ़्ट कैश करा लिया और तुम फँस गये!"

"लेकिन बैंक में उसका दस्तख़त तो होगा?"

"उससे क्या हुआ? उसने रक़म निकाली और तुमको दे दी। अथॉरटी लेटर तुम्हारे नाम है। प्राप्तकर्त्ता की जगह तुम्हारा दस्तख़त मौजूद है!"

"अब क्या होगा?" शरीफ़ फिर रुआँसा हो गया।

"रक़म तो देनी पड़ेगी...!"

शरीफ़ की आँखों तले अँधेरा छा गया।

अमले को यक़ीन था कि गबन कैशियर ने किया है। मुहम्मद शरीफ़ को सभी जानते थे। वह ईमानदार और निरीह आदमी था और सिर्फ़ अपने काम से मतलब रखता था। लेकिन कैशियर से पूछताछ मुश्किल था। वह इस्तीफ़ा देकर कहीं चम्पत हो गया था और इलज़ाम मुहम्मद शरीफ़ के सिर था। उसके साथी दिलासा दे रहे थे कि किसी तरह कैशियर को ढूँढकर रक़म वापस ली जाएगी। लेकिन उस पर लरजा तारी था। रह-रहकर एक ही ख़याल साँप की तरह डस रहा था।

"अब क्या होगा... वह पुलिस की हिरासत में होगा और बीवी-बच्चे...?"

दफ़्तर से निकलने के बाद अचानक उसको एहसास हुआ कि उसके कंधे पर एक टिकठी है, जिसे ढोते हुए वो दारघर की तरफ़ बढ़ रहा है। जब तक दफ़्तर में था ऐसा अजीब-सा एहसास नहीं हुआ था। वहाँ दोस्तों को विस्तार से बताने में उलझा हुआ था। और जब एक-एक करके सब चले गये थे तो उसने जाना कि वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है... उसके क़दम घर की तरफ़ नहीं बढ़ पा रहे थे। हार्डिंग पार्क के क़रीब वह रुक गया... फिर भारी क़दमों से पार्क में दाख़िल हुआ और एक तन्हा से गोशे में निढाल-सा बैठ गया। पार्क में इक्का-दुक्का लोग मौजूद थे। एक लड़का बैलून उछाल रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था और एक जोड़ा बेंच पर बैठा खुशगप्पियाँ कर रहा था। क़रीब ही एक अधेड़ उम्र का शख़्स घास पर लेटा चुपचाप आसमान तक रहा था। उसको लगा यह शख़्स भी किसी दफ़्तर में मुलाजिम है और इस वक़्त घर जाना नहीं चाहता। अचानक कैशियर का लिजलिजा चेहरा उसकी निगाहों में घूम गया... ! किस चालाकी से उसने कैशरोल पर दस्तख़त लिए थे... पहले कैण्टीन में चाय पिलाई थी... फिर मीठी-मीठी बातें की थीं और वह धोखे में आ गया था! अगर उस दिन दफ़्तर नहीं गया होता तो मैनेजर उसके नाम अथॉरटी लेटर भी नहीं लिखता! अब क्या होगा? कहाँ से लाएगा ढाई लाख रुपये? उसके पास ज़ायदाद भी नहीं है। बीवी के पास इतने ज़ेवर भी नहीं हैं कि बेचकर रकम चुकता कर सके। उसने उदास निगाहों से चारों तरफ़ देखा। पार्क में कुछ और लोग आ गये थे। जोड़ा उसी तरह खुशगप्पियों में लीन था। सहसा उसको महसूस हुआ कि हर चीज़ अर्थहीनता के कोहरे में लिपटी हुई है। ये जोड़ा अभी खुशगप्पियों में मग्न है, कल नियति की निर्ममता का शिकार होगा। आदमी ग़फ़लत में होता है... नियति घात में होती है... उम्र की किसी न किसी मंज़िल पर दबोच लेती है। यह नियति ही तो थी कि उसने कैशरोल पर...?

घास पर लेटे हुए अधेड़ उम्र के शख़्स ने सर्द आह के साथ करवट बदली। दाएँ हाथ को मोड़कर सिर के नीचे तकिया-सा बनाया और आँखें बन्द कर लीं। उसने गौर से देखा, चेहरे पर चिन्ता के गहरे आसार थे। दाढ़ी बढ़ी हुई थी, बाल सूखे हुए थे और कमीज़ का कॉलर अन्दर की तरफ़ मुड़ा हुआ था। उसको लगा घास पर लेटा हुआ अधमरा शख़्स कोई और नहीं, ख़ुद वह है। दफ़्तरी निज़ाम के शिकंजे में फँसा हुआ। बेबस और तनहा। उसके जी में आया क़रीब जाए और उसके कंधे पर सिर रख दे। तब अपनी आँखें उसको भीगी हुई महसूस हुईं। उसने सर्द आह खींची और घास पर लेट गया।

शाम गहराने लगी। तारे एक-एक करके रोशन हो गये। पार्क में लैम्प की चारों तरफ़ गर्दिश करते परवानों की संख्या में इज़ाफ़ा होने लगा। लोग-बाग आहिस्ता-आहिस्ता जाने लगे थे। लेकिन वह उसी तरह घास पर पड़ा रहा। यहाँ तक कि सड़कों पर ट्रैफ़िक का शोर मद्धिम हो गया। सब चले गये तो अधमरा शख़्स भी उठा। उसके दामन से एक तिनका चिपक गया था। उसने गर्द भी नहीं झाड़ी और बोझल क़दमों से बाहर निकल गया। पार्क में सन्नाटा अचानक बढ़ गया। उसको घबराहट-सी हुई और घर की याद आयी। वह उठा और थके क़दमों से घर की तरफ़ चल पड़ा।

बीवी इन्तज़ार कर रही थी। देखते ही बरस पड़ी। फिर उसको गुमसुम देखकर घबरा गयी। वह बस इतना ही कह सका कि दफ़्तर में देर हो गयी। लेकिन बीवी को इत्मीनान नहीं हुआ।

यह उसका नियम नहीं था। वह हमेशा दफ़्तर से सीधा घर आता था। आज पहली बार उसने देर की थी और इतना ग़मज़दा था कि उसके चेहरे से दु:ख साफ़ झलक रहा था। अपने हाल पर परदा डालने के लिए वह तुरन्त हाथ-मुँह धोने बैठ गया। पानी के दो-चार छींटे चेहरे पर मारे और तौलिये से मुँह पोंछता हुआ खाने की मेज़ पर आया। बीवी ने फिर टोका कि आख़िर मामला क्या था कि वह इतना चुप-चुप है! उसने उसी तरह मुख़्तसर-सा जवाब दिया कि काम ज़्यादा था जिससे थकावट हो गयी है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे बताये कि मामला क्या था! किसी तरह उसने दो-चार लुकमा ज़हर-मार किया और कमरे में आकर बिस्तर पर लम्बा हो गया। मुन्ना एक तरफ़ सो रहा था। वह गहरी नींद में था। उसकी मुट्ठियाँ अधखुली थीं और होंठों पर भीगी-भीगी-सी मुस्कान थी। उसने मुन्ने के सिर पर आहिस्ता से हाथ फेरा। उसकी आँखें भीग आयीं। तकिये में मुँह छिपाकर आँसू पोंछे और करवट बदलकर लेट गया।

उसको एकाउंटेंट की बात याद आयी— रक़म जमा करनी होगी। यह तहरीरी निज़ाम का जब्र...? उसने गबन नहीं किया लेकिन सज़ा झेलने पर मजबूर है! कहाँ से लाएगा वह रक़म? कौन है जो उसकी मदद करेगा? क्या वे कैशियर को ढूँढ पाएँगे? सब कहने की बातें हैं, कोई उसके लिए इतना जोख़िम क्यों उठाएगा? और कैशियर अपना जुर्म क्यों कुबूल करेगा? उसने गबन इसलिए तो नहीं किया कि ख़ुद को गुनाहगार साबित करे? यह सज़ा तो उसको भुगतनी है! वो बच नहीं सकता। उसका दस्तख़त मौजूद है। दस्तख़त? महज़ कुछ अक्षर और एक झूठ सच में बदल गया। शायद सच और झूठ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। झूठ की भी अपनी एक सचाई है। अपना वजूद है झूठ का। सचाई की रोशनी में चमकता है झूठ। सचाई है कैशरोल में उसका दस्तख़त, जो 'मुहम्मद शरीफ़' को मुजरिम बनाता है। उसके दस्तख़त की सचाई मुजरिम मुहम्मद शरीफ़ को मरने नहीं देगी। उसके होंठों पर एक तीखी-सी मुस्कराहट फैल गयी। क्या हो अगर वो दस्तख़त करके मर जाए कि उसकी मौत की ज़िम्मेवार उसकी बीवी है! बेचारी पति परायणा! तुरन्त क़ातिल करार दी जाएगी। सोच-सोचकर मर जाएगी कि उससे कौन-सा अपराध हुआ कि पति बेमौत मर गया? बच्चे भी उसको क़ातिल समझेंगे। वह ज़िन्दगी भर साबित नहीं कर सकती कि वह बेकसूर है। बस कुछ अक्षर... फिर वह शिकंजे में होगी। अकृत पाप की भागीदार!

आदमी कुदरत के निज़ाम में आज़ाद है, लेकिन अपनी ही व्यवस्था का ग़ुलाम है। बस एक मामूली-सा दस्तख़त! दस्तख़त तो आप ही के हैं? उसके जी में आया ज़ोर से चिल्लाए, जी हाँ दस्तख़त मेरे हैं। शत-प्रतिशत मेरे। मैं अपने दस्तख़त की सचाई का बन्दी हूँ, जिसका शिकंजा मौत के शिकंजे से ज़्यादा दुखदायक है।

बीवी पास आकर खड़ी हो गयी। उसके दिल में दर्द की लहर-सी उठी। क्या वह भी शक़ करेगी? उसकी हमदम, जो दस सालों से साथ है। उसने तकिये को सीने पर रखकर दबाया और करवट बदलकर लेट गया। शक़ कर सकती है। तंगदस्त आदमी का ईमान शक़ के घेरे में होता है। उसकी हैसियत ही क्या है! प्राइवेट कम्पनी का एक मामूली-सा लिपिक, ढाई रुपये नहीं लेगा... ढाई सौ नहीं लेगा... क्या ढाई लाख भी नहीं लेगा?

उसने एक नज़र बीवी की तरफ़ देखा। उसके बाल खुले थे और चेहरे पर ताज़गी थी। शायद उसने शाम को गुस्ल किया था। वह जब भी गुस्ल करती, बाल खुले रखती, जो लम्बे थे और कमर तक लहराते थे। उसने हाथों को पीछे ले जाकर बालों की तहों को सुलझाया... छातियों के उभार नुमायाँ हो गये और सफ़ेद गर्दन तन गयी जिस पर अभी झुर्रियाँ नहीं पड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थीं। फिर बालों को समेटकर जूड़ा बनाया और मुन्ने को उठाने के लिए बिस्तर पर झुकी तो आँचल ढुलक गया और कान की बालियाँ हिल गयीं। मुन्ने की बाँह पकड़कर धीरे से बिस्तर के किनारे खींचा। फिर तकिये की ओट बनाई और उसके बगल में आकर लेट गयी। वह यह सोचे बिना नहीं रह सका कि उसका इस तरह अपने लिए जगह बनाना यक़ीनन बेमक़सद नहीं था। उसने अक्सर ऐसा किया था। तब वह भी उसकी तरफ़ उन्मुख होता था और उसकी आँखों में कामदिग्ध लम्हों की तहरीरें साफ़ पढ़ लेता था। वरना आम दिनों में मुन्ना बीच में होता था और वह दूसरे किनारे पर सोती थी।

बीवी ने हाथ को जुम्बिश दी और उसने कमर के गिर्द उसकी उँगलियों का स्पर्श महसूस किया। उसको याद आया बीवी को चार महीने का गर्भ भी है। वह थोड़ा क़रीब खिसक आयी। यहाँ तक कि वह चेहरे पर उसकी गरम साँसों को महसूस करने लगा। उसके दिल में टीस-सी उठी। वह उठकर बैठ गया।

''क्या बात है?'' बीवी ने तकिये से सिर उठाया।

वह चुप रहा।

''आपकी तबीयत तो ठीक है?''

''पानी पिलाओ!''

वह उठी और कमरे में रोशनी की। उसके चेहरे पर खिन्नता के भाव स्पष्ट थे। उसका जूड़ा खुल गया था और बाल बिखर गये थे। साड़ी बेतरतीब हो गयी थी, जिससे पेट नुमायाँ हो गया था। वह पानी लाने किचन की तरफ़ गयी तो उसने देखा, वह अपने कूल्हों पर ज़ोर देकर चल रही थी। साड़ी की बेतरतीबी से पेटीकोट के नेफ़े में जोड़ के क़रीब गुलाबी नाड़े का बहुत थोड़ा-सा अंश दिख रहा था। उसने गहरी साँस ली और चित लेट गया।

उसको चाहिए कि सब कुछ बता दे। दिल का बोझ तो कम होगा। लेकिन वह घबरा जाएगी। और कुछ कर भी तो नहीं सकती। वह भी क्या कर सकता है! वह भी तो कुछ नहीं कर सकता। बीवी तो कम-से-कम दुआ माँग सकती है। तुरन्त नमाज़ में खड़ी हो जाएगी। सजदे में गिर पड़ेगी। रो-रोकर फ़रियाद करेगी। उसको उम्मीद होगी कि कोई चमत्कार होगा। ख़ुदा सुन लेगा। ख़ुदा बहुत रहमवाला है। निहायत मेहरबान। सब भेद को जानने वाला। उसका मन आस्था से ओतप्रोत है इसलिए उम्मीद की किरण आख़िरी दम तक उसका साथ नहीं छोड़ेगी। जेल जाने के बाद भी वह यही समझेगी कि इसमें ख़ुदा की मर्ज़ी की दख़ल है। जीने के लिए ज़रूरी है कि आदमी आस्था का भ्रम पाले। लेकिन उसका ईमान तो हमेशा ढुलमुल रहा। आस्था के अंकुर कभी फूटे नहीं। वह तो दुआ भी नहीं माँग सकता। वह किसी चमत्कार की आस नहीं लगा सकता। वह ख़ुद को तसल्ली नहीं दे सकता कि ख़ुदा सब देख रहा है। इन्साफ़ करेगा। वह सचाई पर है। सचाई की जीत होगी। उसके पास उम्मीद की कोई किरण नहीं है।

उसको हैरत हुई की वाक़ई उसके पास कोई ख़ुदा नहीं है। वह किससे दुआ माँगे? कहाँ है ख़ुदा? आसमानी किताबों में या इन्सानी दिलों में विद्यमान है? धमनियों से भी क़रीब। ख़ुदा, जिसकी ख़ुदाई में शून्यता को भी पूर्णता है। जिसने हर जीवात्मा के मुक़द्दर में अंकित कर दी है एक अकृत पाप की सज़ा। लेकिन उसको अपना अकृत पाप कुबूल नहीं है। वह क्यों उस गुनाह की सज़ा कुबूल करे, जिसका भागी नहीं है? रक़म जमा कर दें वरना...! वरना क्या? आप फाँसी पर चढ़ा देंगे यही न? तो कौन बरी है? तहरीरी निज़ाम के शिकंजे से छूटना मुमकिन नहीं है कि तहरीरी निज़ाम में अक्षरों की सचाई जिस झूठ को जन्म देती है वो ख़ुदा की तरह अजर-अमर है।...दस्तख़त तो आप के ही हैं? बेशक़ हुज़ूरेआला। दस्तख़त मेरे ही हैं। मैं दफ़्तर के कैशरोल में इसी तरह मौजूद हूँ, जिस तरह ख़ुदा आसमानी ग्रंथों में मौजूद है। कैशरोल में मेरे दस्तख़त की सचाई मेरे अजन्मे को जन्म में बदल चुकी है। मैं हमेशा वहाँ मौजूद रहूँगा।

बीवी पानी लेकर आयी तो उसने एक ही साँस में गिलास ख़ाली कर दिया। बीवी ने पूछा और चाहिए तो उसने इनकार में सिर हिलाया और करवट बदलकर लेट गया। उसने रोशनी गुल की और बिस्तर पर लेट गयी। वह अपनी कमर के गिर्द फिर उसकी उँगलियों का स्पर्श महसूसने लगा। वह और क़रीब खिसक आयी और उसके सीने पर अपना सिर रख दिया। कोई और वक़्त होता तो बीवी को अपनी बाँहों में भर चुका होता लेकिन उसका जी चाह रहा था मुर्दे की तरह चुपचाप पड़ा रहे और कोई इस बीच विघ्न नहीं डाले।

अचानक मुन्ना ज़ोर से रो पड़ा। वह मुड़ी और मुन्ने को तुरन्त बिस्तर से उठाकर फ़र्श पर खड़ा कर दिया। फिर भी फ़र्श तक आते-आते दो चार क़तरा पेशाब बिस्तर पर ख़ता हो गया। मुन्ने को फ़र्श पर पेशाब कराने के बाद बिस्तर पर लिटाया और थपकियाँ देने लगी।

अचानक उसको लगा दरवाज़े पर कोई दस्तक दे रहा है। उसके कान खड़े हो गये। दिल में आया दफ़्तर के साथी कैशियर को ढूँढने में क़ामयाब हो गये हैं। उसने दरवाज़ा खोला। वहाँ कोई नहीं था। एक लम्हे के लिए उस पर सकता तारी रहा और फिर उसके मुँह से निकला, ''ख़ुदा बेनियाज़ है और आदमी पुरउम्मीद...!'' उसके जी में आया ज़ोर से चिल्लाये...''तमाम दरवाज़े बन्द कर लो। नहीं होगा किसी ईसा का गमन। आदमी इसी तरह ख़ुद अपने निज़ाम के शिकंजे में फँसा रहेगा।''

लेकिन वह चिल्ला नहीं सका। अचानक उसको सीने में ज़ोर का दर्द महसूस हुआ। दोनों हाथों से छाती पकड़ते हुए उसने किसी तरह दरवाज़ा बन्द किया और लड़खड़ाता हुआ बिस्तर तक आया। काँपते हाथों से बीवी के बाजुओं को थामने की कोशिश की। उसको छाती से लगाकर भींचा। बीवी की छातियों के कोमल स्पर्श से उसको कुछ राहत मिली। उसने अपना मुख उसके मुख पर रख दिया और पीठ ज़ोर-ज़ोर से सहलाने लगा, मानो देह के स्पर्श से अपने लिए थोड़ा प्राण जज़्ब करना चाहता हो। पेट के उस हिस्से के कड़ेपन को उसने महसूसने की कोशिश की जहाँ उसका अस्तित्व पल रहा था। लेकिन अचानक सीने में दर्द बढ़ गया। उसको अपना दम घुटता हुआ महसूस हुआ। दम टूटने की इस घड़ी में उसके जी में आया ज़ोर से फ़रियाद करे, ''मैं उस अपराध की सज़ा क्यों भुगतूँ जो मैंने किया नहीं?''

लेकिन आवाज़ उसके सीने में मानो घुटकर रह गयी। फँसी-फँसी-सी आवाज़ में वह दो बार बीवी का नाम लेकर पुकार सका, ''सुलताना...सुलताना...!'' और उसका सिर सुलताना की छातियों के दरम्यान लुढ़क गया...!

301, ग्रैंड अपार्टमेंट्स,
नयी पाटलिपुत्र कॉलोनी,
पटना-800013

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी - अपनी पसंद

शरद जोशी
प्रतिदिन (3 खंड)
1200/-

दुष्यन्त कुमार रचनावली
(4 खंड)/ 1950/-

भैरप्पा
पर्व / 495/-

खुशवंत सिंह
दिल्ली / 250/-

श्रीलाल शुक्ल
राग विराग / 100/-

मैत्रेयी पुष्पा
इदन्नमम / 300/-

हिमांशु जोशी
तुम्हारे लिए / 150/-

अमृता प्रीतम
रसीदी टिकट / 120/-

अजीत कौर
ख़ानाबदोश / 150/-

नासिरा शर्मा
शाल्मली / 100/-

अटल बिहारी वाजपेयी
मेरी इक्यावन कविताएँ
60/-

नरेन्द्र कोहली
तोड़ो, कारा तोड़ो
(4 भाग) / 1200/-

रांगेय राघव
महायात्रा गाथा
(4 भाग) / 1500/-

रामविलास शर्मा
भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश
(2 भाग) / 1000/-

विष्णु प्रभाकर
अर्द्धनारीश्वर
250/-

सआदत हसन मंटो
मंटो की कहानियाँ
300/-

कमलेश्वर
दस प्रतिनिधि कहानियाँ
100/-

सं० राजेन्द्र यादव
देहरि भई बिदेस
300/-

किताबघर प्रकाशन
4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002
फोन : 30180011, 23266207
फोन/फैक्स : 23271844

Website : www.kitabgharprakashan.com E-mail : kitabghar_prk@yahoo.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

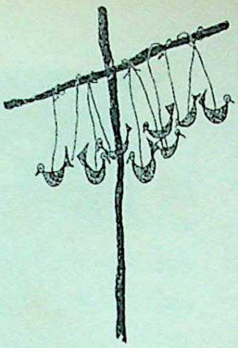

ब्लैक आउट

असरार गाँधी

उस दिन पुष्पा वर्मा निहायत ख़ूबसूरत नज़र आ रही थी और यह ख़ूबसूरती आँख, होंठ, नाक और भरे-भरे गालों का मजमुअइ तास्सुर थी। काफ़ी बड़े गले वाले ब्लाउज़ की वजह से पुश्त (पीठ) का ख़ासा हिस्सा खुला हुआ था। खुली हुई हसीन उभार वाली यह पुश्त अच्छे अच्छों के दिल में हलचल पैदा कर सकती थी।

वह जब इण्टरव्यू हॉल में दाख़िल हुई तो वहाँ मौजूद लोगों की निगाहें उसके चेहरे पर ठहर गयीं। यह लोग शायद ख़ाली जगह के लिए उम्मीदार थे जिसके लिए वह ख़ुद भी इण्टरव्यू देने आयी थी।

उसने उन सभी पर एक उचटती-सी नज़र डाली और फिर चौंक पड़ी। सबसे अलग-थलग बैठा हुआ आदमी उसे कुछ जाना-पहचाना-सा लगा। वह आदमी भी उसे ग़ौर से देख रहा था, फिर पुष्पा को याद आ गया।

''रविकान्त!'' वह धीरे से बुदबुदायी और फिर सीधे उसकी तरफ़ चली गयी। रवि ने भी उसे पहचान लिया था। उसकी आँखें शनासाई (पहचान) की चमक से रौशन हो गयी थीं।

''हलो रवि इस वक़्त तुमसे ख़ूब मुलाक़ात हुई। बहुत अच्छा लग रहा है।''

''मुझे भी। शायद हम लोग चार पाँच बरसों बाद मिल रहे हैं। यूनिवर्सिटी से पढ़कर हम लोग क्या निकले कि तितर-बितर हो गये। बस यूँ ही कभी-कभी किसी-किसी से मुलाक़ात हो जाती है। और बताओ कैसी हो? क्या कर रही हो?''

''बिल्कुल ठीक हूँ और नौकरी ढूँढ़ रही हूँ।... और तुम?''

''मैं भी ठीक हूँ। एक कोचिंग सेंटर में पढ़ा रहा हूँ और किसी अच्छी नौकरी का इन्तज़ार है।''

''अरे अब तक तुम्हें कोई अच्छा जॉब नहीं मिला? मुझे याद है तुम्हारा कैरियर तो बहुत अच्छा रहा है!''

''कैरियर!'' वह ज़ोर से हँसा— हँसी में छिपे हुए तंज को पुष्पा ने महसूस किया। वह कुछ बोली नहीं, सिर्फ़ उसकी आँखों में देखे जा रही थी।

वह फिर बोला, ''मेरे बायोडाटा में उस सार्टिफिकेट की कमी है जिसे सिफ़ारिश कहते हैं। और न मैं इतना पैसे वाला हूँ कि नौकरी ख़रीद सकूँ।''

एक लम्हे के लिए ख़ामोशी छा गयी। यह ख़ामोशी कँटीले फेंस से घिरी हुई थी जिसकी चुभन दोनों महसूस कर रहे थे। वह कुछ देर बाद बोला, ''मैं तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करूँगी कि यह नौकरी तुम्हें मिल जाए। वैसे सुनती हूँ कि यहाँ का मैनेजमेंट काफ़ी ईमानदार है।''

''चलो अच्छा है तुम मेरे लिए प्रार्थना करो और मैं तुम्हारे लिए करता हूँ।''

''नहीं तुम ऐसा करना भी नहीं। कहीं ऊपर वाला कन्फ्यूज़ हो गया तो नौकरी किसी और को मिल जाएगी।''

इस बात पर रवि बेसाख़्ता हँस पड़ा। उस हँसी में वह भी साथ हो गयी। उसी वक़्त हॉल में एक आदमी दाख़िल हुआ और इण्टरव्यू में आये हुए उम्मीदवारों को सूचना दी कि किसी वजह से ये इण्टरव्यू कुछ देर बाद शुरू हो सकेगा।

रवि ने पुष्पा की तरफ़ देखते हुए एक लम्बी साँस ली, फिर कुछ देर बाद दोनों बीते दिनों की जगमगाती चौड़ी सड़क पर चल पड़े। दोनों के दरमियान क्लास की बातें, असातेज़ह की बातें, लड़कों और लड़कियों की बातें होती रहीं। उन्हीं बातों के दरमियान उसने अचानक रवि से पूछा, ''रवि हम लोगों के साथ जो एक स्टूडेण्ट थी, क्या नाम था उसका?... हाँ— याद आ गया प्रतिभा। हाँ प्रतिभा वह आजकल कहाँ है? क्या तुम कभी उससे मिले हो?''

उसका सवाल सुनकर रवि ने उसकी तरफ़ देखा— पुष्पा के होंठों पर शरारत से भरी मुस्कराहट बिखरी हुई थी। वह सिटपिटा गया, फिर कुछ सोचता हुआ बोला, ''नहीं फिर उससे कभी मुलाक़ात नहीं हुई। अब तक तुमसे ही कहाँ मिल पाए थे?''

''उसकी याद तो आती होगी।'' वह फिर बोली।

''याद तो तुम भी आती रही हो, क्या हुआ कि क्लास में तुम मुझसे हमेशा दूर भागती रही। हालाँकि तुम जानती थी कि मैं एक शरीफ़ आदमी हूँ।'' वह मुस्कराता हुआ बोला।

''देखो रवि मैं शरीफ़ आदमी से हमेशा कतराती रही हूँ। उनसे कितनी देर तक बातें की जा सकती हैं और क्या बात की जा सकती है! मैं तो नमस्ते से आगे नहीं बढ़ पाती।''

वह अपनी बात कहकर ज़ोर से हँसी तो वह भी उस हँसी में शामिल हो गया।

''हाँ तो वह प्रतिभा...'' उसने फिर चुटकी ली।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"तुम प्रतिभा के बारे में क्या जानना चाहती हो?"

"यही कि वह तुम्हें पसन्द थी और तुम उसे बहुत...।"

उसने अपनी बात पूरी नहीं की।

"हाँ प्रतिभा मुझे बहुत पसन्द थी मैं उसे बहुत चाहता था। वह अगर..." वह अपनी बात पूरा करते-करते अचानक कहीं गुम हो गया। उसके ख़्याल में प्रतिभा आकर खड़ी हो गयी थी। गहरे साँवले रंग की प्रतिभा, जिसकी आँखों के सफ़ेद सफ़ेद दीदे किसी ट्रांसपैरेंट शीशे की तरह चमकदार थे और पुतलियाँ बेहद रोशन। इतनी मुस्कराती आँखें उसने पहले कभी नहीं देखी थीं। ज़िन्दगी से कितनी भरपूर थी वह!

वह बिलाशुबह प्रतिभा को चाहता था। वह जानता था कि प्रतिभा उसे बहुत चाहती है लेकिन चाहतों ने कभी मकालबे (संवाद) का सहारा नहीं लिया था। शायद इसीलिए कि एहसास की तरसील (सन्देश) में गुफ़्तगू आड़े आ जाया करती है।

फिर एम.ए. के दो साल कब बीत गये पता भी नहीं चला! फ़ाइनल इम्तेहान के बाद उन्होंने एक दूसरे को अलविदा कहकर बहुत-सी यादें अपने-अपने वजूद में जज़्ब कर लीं।

"रवि तुम कहाँ खो गये? शायद कुछ कह रहे थे!" उसने रवि को यादों की दुनिया से वापस खींच लिया।

"हाँ मैं कह रहा था कि अगर वह शादीशुदा न होती तो मैं उससे शादी कर लेता।"

चन्द मिनटों के लिए ख़ामोशी छा गयी।

उस ख़ामोशी को रवि ने फिर तोड़ा, "पुष्पा मेरी छोड़ो और तुम अपनी बताओ, वह तुम्हारे हरीश, उदय और अशोक वग़ैरह कहाँ गये?"

"पता नहीं कहाँ मर गये! मैं उनमें से किसी के साथ सीरियस तो थी नहीं, यह सब तो यूँ ही थोड़ा सा मज़ा के लिए था!... हाँ एक बात ज़रूर थी कि..." वह अपनी बात कहते-कहते अचानक रुक गयी। उसने देखा कि पहला उम्मीदवार इंटरव्यू के लिए अन्दर जा रहा है। रवि भी उसको देख रहा था।

वह दोनों अब बिल्कुल ख़ामोश थे, शायद इंटरव्यू दरमियान में हायल हो गया था। उम्मीदवार बारी-बारी इंटरव्यू के लिए जाते रहे और लौटते रहे। जब भी कोई उम्मीदवार इंटरव्यू देकर बाहर निकलता तो बाक़ी उम्मीदवार उसे घेर लेते और किये गये सवालों के बारे में पूछने लगते। और फिर जब पुष्पा वर्मा इंटरव्यू देकर बाहर निकली तो उम्मीदवार उसकी तरफ़ भी लपके— वह पूछे गये सवालों के बारे में बताती रही।

"मैडम आपको तो यह नौकरी मिल ही जाएगी!" उनमें से एक शरारत भरे लहजे में बोला।

"क्यों? मुझे क्यों नौकरी मिल जाएगी?" पुष्पा ने बड़े रुखे लहजे में सवाल किया?

"मैडम आजकल दो ही लोगों की चल रही है— एक औरत दूसरा निचला वर्ग। जो चाहें मिल जाए।"

सारे उम्मीदवार हँसने लगे। पुष्पा की पेशानी पर बल पड़ गये। वह बुरा-सा मुँह बनाकर वहाँ से हट गयी।

इंटरव्यू कोई दो घण्टे चला, आख़री उम्मीदवार की हैसियत से रविकान्त को बुलाया गया था। उसका इंटरव्यू देर तक चला, वह जब इंटरव्यू देकर बाहर निकला तो उसके चेहरे पर इत्मीनान झलक रहा था।

लोग उससे भी इंटरव्यू के बारे में पूछने लगे। इंटरव्यू ख़त्म होने के बाद तमाम उम्मीदवारों को बता दिया गया था कि नतीजा कोई ढाई-तीन महिनों के बाद मालूम हो सकेगा।

रवि और पुष्पा इंटरव्यू हाल से साथ ही बाहर आये। अब उनके सामने एक ख़ासी चौड़ी, ख़ूबसूरत और लम्बी चौड़ी सड़क एक हुजूम को बोझ अपने सीने पर उठाये हुए मौजूद थी।

"चलो सामने वाले रेस्त्राँ में कॉफ़ी पीते हैं। किसी ने बताया था कि यह अन्दर से ख़ूबसूरत है।" पुष्पा उसकी तरफ़ देखती हुई बोली।

"नहीं आज तो नहीं चल सकेंगे, फिर किसी दिन सही। आज मुझे कुछ ज़रूरी काम है और कोचिंग सेंटर भी जाना है।"

"अच्छा चलो आज छोड़ देते हैं। कल तो आ सकते हो?"

"हाँ कल आ सकता हूँ।"

उन्होंने अगले दिन मिलने का वक़्त तय किया। फिर एक दूसरे को गुडबॉय कहते हुए अपनी-अपनी राह ली।

उसके लिए वह दिन भी क्या दिन थे! न किसी तरह की ज़िम्मेदारी का बोझ और न किसी दूसरी तरह की परेशानी। वह पूरी तरह से आज़ाद था। ऐसे में पढ़ना ही उसका महबूब मशग़ला था। एक धुन थी कि उसे एम.ए. में टॉप करना है और वह धुन उसे हमेशा से बेचैन किये रहती।

क्लास में उसकी ख़ासी इज्ज़त थी। असातेज़ह (अध्यापक) भी उसकी बातों को संजीदगी से लेते। उससे दोस्ती के मुतमन्नी (लालयित) रहते लड़कियों में सिर्फ़ प्रतिभा ही एक ऐसी थी जिससे उसके ताल्लुक़ात बहुत अच्छे थे। लेकिन उन दोनों ने शऊरी (सोच समझकर) कोशिश की थी कि उन्हें लेकर कोई अफ़वाह न बनने पाये। वह दोनों जानते थे कि एक मामूली-सी कहानी प्रतिभा की शादीशुदा ज़िन्दगी में उथल-पुथल पैदा कर सकती है।

दूसरी लड़कियों से उसके ताल्लुक़ात सिर्फ़ हैलो, हैलो तक ही महदूद थे। उन्हीं में पुष्पा वर्मा भी थी। वैसे पुष्पा क्लास की सबसे ज़्यादा तेज़ तर्रार लड़की थी। अच्छे-अच्छों को ठिकाने लगा देती, लेकिन आज की मुलाक़ात में पुष्पा उसे बहुत संजीदा नज़र आयी, पहली जैसी तो बिल्कुल नहीं। वह बोल्ड तो अब भी थी लेकिन यह बोल्डनेस समझदारी से भरी हुई थी।

अगले दिन तयशुदा वक़्त पर वह ब्लू स्टार पहुँचा तो उसे इन्तज़ार की ज़हमत नहीं उठानी पड़ी। पुष्पा ने उसे देखते ही विश किया वह अगले ही लम्हे उसके सामने टेबुल पर मौजूद था। उसे रेस्त्राँ का माहौल ख़ासा पुरकशिश लगा। हर तरफ़ नीम तारीकी (हल्का अँधेरा) बिखरी हुई थी और मौसीक़ी की हल्की-हल्की लहरें उसे नीम तारीकी से हम-आहंग (दो चीज़ों का मिलकर एक होना) हो रही थीं। हाल में क़रीने से सजायी गयीं मेज़ों पर बैठे हुए जोड़े दुनिया से बेख़बर अपने-अपने ख़्वाबों में गुम थे। उसने टेबुल पर छत से लटके हुए लैम्प को रोशन कर दिया। रोशनी एक महदूद दायरे में बिखर गयी। उसने देखा कि पुष्पा के चेहरे पर एक बड़ी दिलनवाज़ मुस्कराहट फैली हुई है।

"मुझे ज़्यादा देर तो नहीं हुई? मेरा टू-सीटर भीड़ में फँस गया था।"

"नहीं ऐसी कोई ख़ास देर नहीं हुई। मैं अभी-अभी आयी हूँ। कैसे हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"बिल्कुल ठीक हूँ।"

"कल की मुलाक़ात बहुत अच्छी लगी। बरसों बाद कोई क्लासमेट मिला।"

"हाँ मुझे भी बहुत अच्छा लगा। मैं कल देर तक बीते हुए वक़्त की लम्बी चौड़ी सड़क पर चहलक़दमी करता रहा।"

"उस लम्बी चौड़ी सड़क पर प्रतिभा तो ज़रूर मिली होगी!" वह मुस्कुराती हुई बोली।

"हाँ, सबसे पहले वही मिली थी। फिर बाद में दूसरे मिले!" वह भी हँसता हुआ बोला।

फिर यादों के माहौल में साँस लेते हुए वह दोनों हँस पड़े।

मेज़ों के दरमियान गर्दिश करते हुए वर्दियों में मबलूस बैरों में से एक उनकी मेज़ पर भी आया तो रवि ने कॉफ़ी के साथ कुछ हल्के-फुल्के स्नैक्स भी मँगवाए।

"तुमने शादी की?" बैरे के जाते ही पुष्पा ने उससे सवाल किये।

"अभी तो नहीं। नौकरी की तलाश मेरे लिए शादी से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है।"

"हाँ यह बात तो ठीक है। मैंने भी यह ठान लिया है कि नौकरी मिलने पर ही शादी करूँगी। मैं नहीं चाहती कि शादी के बाद मैं अपने आपको किसी पर निर्भर पाऊँ।"

एक लम्हे के लिए ख़ामोशी छा गयी।

"मुझे तो लगता है कि तुम्हारी परेशानी ख़त्म होने वाली है।" पुष्पा ने ख़ामोशी को तोड़ा।

"देखो क्या होता है अभी से तो कुछ नहीं कहा जा सकता। न जाने किस बड़े आदमी का फ़ोन उलट-फेर कर दे। पुष्पा चाय की प्याली और होंठों के बीच जो दूरी होती है, वह कभी-कभी बहुत ख़तरनाक साबित होती है।"

पुष्पा चुप रही।

बैरा दिए गये आर्डर को उनकी मेज़ पर सजा रहा था। कॉफ़ी पीने के बाद वह देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे। फिर रुख़सत होते वक़्त पुष्पा उससे हाथ मिलाती हुई बोली, "फिर कब मिलोगे?"

"जब तुम चाहो, मैं तुम्हें अपना फ़ोन नम्बर दिए देता हूँ। जब भी मिलना पसन्द करो मुझे फ़ोन कर लो।"

"हाँ यह ठीक है।" उसने रवि का फ़ोन नम्बर नोट किया और अपने घर की तरफ़ चल पड़ी।

फिर रवि और पुष्पा के दरमियान मुलाक़ातों का सिलसिला चल निकला। पहले तो कई-कई दिन बाद मिलना हुआ करता मगर बाद में वह तक़रीबन रोज़ ही मिलने लगे। दोनों बहुत तेज़ी से एक-दूसरे के क़रीब आये थे। पुष्पा तो कुछ ज़्यादा ही जज़्बाती दिखाई देती थी लेकिन उसके बावजूद वह रवि को हमेशा अपने जिस्म के हुदूद (दायरा) से बाहर की रखती। कई बार रवि को यह बात बुरी भी लगती लेकिन वह यह सोचकर मुतमइन हो जाता कि अगर उसने पहले ज़ीने पर अपने क़दम रख दिए तो आख़री ज़ीने तक पहुँचने में ज़रा भी देर नहीं लगेगी। और वह वक़्त से पहले आख़री ज़ीने तक जाना भी नहीं चाहता था कि उसे बालदएन से यही क़दरें (परम्पराएँ) विरासत में मिली थीं।

उसने तय कर लिया कि वह पुष्पा से शादी कर लेगा। ख़ुद पुष्पा को भी इस पर कोई ऐतराज़ नहीं था। इन्तज़ार सिर्फ़ नौकरियों का था। उसे इंटरव्यू दिए हुए और पुष्पा से मुलाक़ात हुए कोई दो ढाई महीने बीत गये थे। उस दिन वह ज़रा देर से सोकर उठा था। मुँह हाथ धोकर नाश्ता करने के बाद उसने घड़ी देखी तो साढ़े दस बज रहे थे। उसने सोचा कि कोई घण्टा भर बाद उसे पुष्पा से मिलना है तो क्यों न अख़बार पर ही एक नज़र डाल ली जाए। वैसे अब उसे अख़बारों से ज़्यादा दिलचस्पी नहीं रह गयी थी कि अख़बारों में कुछ भी तो नया नहीं होता था। और एक ही जैसी ऊबाऊ ख़बरें।

उसने अभी अख़बार उठाया ही था कि फ़ोन की घण्टी बजी। उसने रिसीवर उठाया तो दूसरी तरफ़ से कोई उसे पूछ रहा था।

"हाँ मैं रविकान्त बोल रहा हूँ क्या बात है?"

"आपको याद होगा कि आपने अब से कोई ढाई महीने पहले मेरे आफ़िस में कोई इंटरव्यू दिया था।"

"जी हाँ मुझे याद है।"

"मुबारक हो यह नौकरी आपको मिल गयी।"

"सच?" वह तक़रीबन चीख़ पड़ा।

"हाँ बिल्कुल सच, आप दोपहर के बाद आकर अपना अपाइंटमेंट लेटर ले सकते हैं।"

"थैंक गॉड! मैं आज ही आ जाऊँगा।" रवि बोला।

फिर दूसरी तरफ़ से फ़ोन काट दिया गया।

रवि ने रिसीवर फ़ोन पर टिकाया और क़रीब रखी हुई एक कुर्सी पर बैठते ही उसकी आँखें सोच में डूब गयीं। उसे माँ-बाप याद आ गये जो अब इस दुनिया में नहीं थे। यह ख़बर सुनकर कितना खुश होते वे लोग! उसने सोचा कि काश कुछ लम्हों के लिए ही सही, कहीं से उसके माँ-बाप उसके पास आ जाते और उसे गले लगा लेते। वह उनके फ़राख सीनों में अपना मुँह छिपाकर थोड़ी देर के लिए अपनी तमाम उलझनों से बेनयाज़ हो जाता।

रवि की सोच उसे बेहद उदास कर गयी। वह कुछ देर यूँ ही गुमसुम बैठा रहा। अचानक उसकी नज़रें घड़ी की तरफ़ गयी तो देखा कि ग्यारह बज रहे हैं। उसे पुष्पा याद आयी। वह तेज़ी से उठा, कपड़े बदले और अपने एक कमरे वाले फ़्लैट में ताला लगाकर निकल खड़ा हुआ। थोड़ी देर बाद वह और पुष्पा एक पार्क में बैठे हुए थे।

वह उसे चुपचाप देख रही थी और रवि सोच रहा था कि नौकरी मिल जाने की ख़बर ऐसे किसी ज़ावये से पुष्पा को दे कि उसे अपने नाकामी पर ज़्यादा ज़ोर का झटका न लगे।

"क्या सोच रहे हो?" पुष्पा ने सन्नाटा तोड़ा।

"पुष्पा मैं सोच रहा हूँ कि कभी-कभी कोई अच्छी ख़बर ख़ुशी और दुःख दोनों में ही फँस कर उलझ जाती है। मैं तुम्हें कैसे सुनाऊँ?"

"रवि मेरे साथ तुम्हें ऐसी कोई प्रॉब्लम नहीं होगी। तुम मुझे बता सकते हो। मेरे लिए तुम्हारी ख़ुशियों से बढ़कर और क्या हो सकता है!"

"पुष्पा मुझे वह नौकरी मिल गयी जिसके लिए हम दोनों इंटरव्यू देने गये थे।" रवि रुक-रुककर बोला। फिर उसने देखा कि पुष्पा की आँखों में खुशियों की क़दीलें रौशन हो गयी हैं। वह रवि का हाथ धीरे-धीरे अपने होंठों की तरफ़ ले गयी और हथेली की पुश्त पर अपने होंठ रख दिए। गर्म-गर्म होंठों ने रवि को क़द्रे बेचैन कर दिया। उसकी रगों में ख़ून की गर्दिश तेज़ हो गयी।

चन्द लम्हों के बाद उसने अपने होंठ उसकी हथेली की पुश्त पर से हटा लिए और हँसती हुई बोली, "वैसे रवि यह ख़बर तुम्हें देर में मिली। मुझे तो बहुत पहले मालूम हो गया था।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"क्या? मैं समझा नहीं!" रवि के चेहरे पर हैरत थी।

"हाँ रवि, मैंने अपने एक ज़रिये से इंटरव्यू के दो-तीन दिन बाद ही मालूम कर लिया था कि यह नौकरी तुम्हें मिल चुकी है।"

"फिर तुमने मुझे बताया क्यों नहीं?"

"रवि मैं तुमसे वह मज़ा नहीं छीनना चाहती थी जो किसी अच्छी ख़बर के अचानक मिलने से हासिल होता है।"

रवि उसे हैरत से देख रहा था।

"अच्छा यह बताओ कि तुम्हारा आज का क्या प्रोग्राम है?" पुष्पा फिर बोली।

"कुछ भी नहीं, बस आफ़िस जाकर अपाइंटमेंट लेटर लेना है। चलना चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो।

"नहीं आज मुझे कुछ ज़रूरी काम हैं। कल की क्या रही?"

"कल तुम मेरे फ्लैट की तरफ़ आ जाओ। मैं तुम्हें रास्ता समझा देता हूँ।"

"नहीं रवि मेरा इस तरह वहाँ आना ठीक नहीं है। तुम मेरे घर आ जाओ। साथ में लंच लेंगे। मेरा पता तो मालूम ही है।"

"मैं तुम्हारे घर...?" वह हैरत से पुष्पा को देखने लगा।

"हाँ-हाँ इसमें परेशानी की क्या बात है! मैंने अपने घर वालों को तुम्हारे बारे में बता रखा है। वह तुम्हारा स्वागत करेंगे।"

अगले दिन जब वह पुष्पा के घर पहुँचा स्वागत करने वालों में सिर्फ़ उसकी माँ थी। उसके वालिद अपने आफ़िस में थे और छोटी बहन स्कूल में। पुष्पा की माँ थोड़ी देर उसके पास बैठ कर किचन में चली गयीं।

"बहुत हैंडसम लग रहे हो!" पुष्पा माँ के जाते ही बोली।

वह झेंप-सा गया। फिर ठहर-ठहरकर बोला, "मुझसे कहीं ज्यादा अच्छी तो तुम लग रही हो। फ्रेश-फ्रेश बारिश में नहाये हुए फूलों की तरह!"

वह हँसने लगी।

"अरे रवि क्या तुम अपना अपाइंटमेंट लेटर ले आये?" उसने चौंकते हुए पूछा।

"वह तो कल ही ले आया और हाँ तुम्हें एक बात और बताऊँ?"

"हाँ बताओ।"

"मेरे बाद मेरिट में तुम्हारा ही नम्बर है।"

वह मुस्कराई, "मुझे मालूम है।"

"तुमने मुझे बताया क्यों नहीं!" वह उसे ताअज्जुब से देखता हुआ बोला।

"क्या बताती! यह कोई ऐसी अहम बात तो थी नहीं।" पुष्पा ने सपाट से लहजे में जवाब दिया।

वह उसे ख़ाली-ख़ाली नज़रों से देखने लगा। फिर चन्द लम्हों के बाद अपनी जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर उसकी तरफ़ बढ़ा दिया।

पुष्पा ने लिफ़ाफ़ा खोलकर लेटर निकला और संजीदगी से पढ़ने लगी। लेटर पढ़कर उसने उसे दोबारा लिफ़ाफ़ा में रख दिया और मुस्कराती हुई बोली," मेरी तरफ़ से बधाई हो।

"पुष्पा यह सिर्फ़ अपाइंटमेंट लेटर ही नहीं इस सफ़र का वीज़ा भी है जिस पर अब किसी भी वक़्त हम सात फेरों के बाद जा सकते हैं।"

"नहीं रवि शायद ऐसा न हो सके। शादी मेरे लिए उस वक़्त तक मुमकिन न होगी जब तक मुझे नौकरी नहीं मिल जाती। मैं तुमसे पहले भी यह बात कह चुकी हूँ।"

"पुष्पा तुमको मेरे ऊपर..." पुष्पा ने रवि की बात पूरी होने से पहले ही काट दिया। "रवि मैं जानती हूँ कि तुम मुझे बहुत चाहते हो। मैं यह भी जानती हूँ कि मुझे तुम्हारे साथ किसी भी तरह की परेशानी न होगी, लेकिन मेरा फ़ैसला भी तो अर्थहीन नहीं है। मेरे अपने भी कुछ उसूल हैं जिन्हें मैं नहीं तोड़ सकती।"

रवि उसकी बात सुनकर हक्का-बक्का रह गया। पुष्पा फिर बोली, "मैं जानती हूँ कि तुम मेरी बात सुनकर हर्ट हुए होगे लेकिन मैं... रवि प्लीज़ डोंट माइंड इट।" पुष्पा ने अपना सर उसके कन्धे पर रख दिया। पुष्पा के पास से बिखरती हुई ख़ुशबू और साँसों की आँचों ने रवि की बात में एक तूफ़ान-सा बरपा कर दिया। उसने पुष्पा का सर अपने कँधे पर से हटाकर अपनी गोद में रख लिया और उसकी दमकती हुई पेशानी पर आहिस्तगी के साथ अपने होंठ रख दिए।

क़दमों की आवाज़ से उन दोनों को एक झटके के साथ अलग कर दिया। पुष्पा की मम्मी उन दोनों के लिए खाना ला रही थीं।

लंच के बाद रवि थोड़ी देर और बैठा। फिर उठा तो जाने से पहले उसने पुष्पा के हाथों को अपने हाथों में लेकर उसकी आँखों में झाँकता हुआ धीरे से बोला, "पुष्पा अपने फ़ैसले पर एक बार फिर गौर करना। शायद कोई रास्ता निकल आए।"

"हाँ रवि इस बारे में एक बार फिर मैं सोचूँगी। वैसे हालात क्या होंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता।"

रवि कुछ बोला नहीं बस एकटक पुष्पा को देखता रहा।

वह रात रवि पर ख़ासी भारी साबित हुई। वह तक़रीबन सारी रात जागता रहा और नौकरी मिले बग़ैर पुष्पा के शादी न करने के फ़ैसले की वजह से शदीद बेचैनी के शिकंजे में आ गया था। वह जानता था कि पुष्पा मज़बूत क़ुअत ऐरादी की मालिक है और वह अपना फ़ैसला कभी भी न बदलेगी। उसने इस सूरते हाल कई कोणों से परखने की कोशिश की और फिर सोने से पहले इत्मीनान और सुकून की एक वाज़ह (स्पष्ट) झलक उसके चेहरे पर नज़र आयी।

अगले दिन शाम को रवि की अँगुलियाँ फ़ोन के पुश बटन पर इस तरह चल रही थीं जैसे जाने पहचाने रास्तों पर इंसान के क़दम अपने आप चलने लगते हों। फ़ोन पुष्पा ने ही उठाया।

"पुष्पा मैं आज आफ़िस गया था। मैंने उन्हें लिखकर दे दिया है कि मैं अपनी कुछ निजी मजबूरियों की वजह से यह नौकरी नहीं कर सकूँगा। अब कल जाकर उन लोगों से तुम मिल लो। शायद यह नौकरी तुम्हें फ़ौरन ही ज्वॉइन करनी पड़े।"

"रवि क्या तुम सच कह रहे हो?" वह तक़रीबन चीख़ पड़ी। इस चीख़ में ख़ुशी थी और हैरत भी।

"पुष्पा क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं हो रहा है?"

"नहीं रवि ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे तुम पर और तुम्हारी चाहत पर हमेशा भरोसा रहा है। मुझे विश्वास था कि तुम इस तरह का फ़ैसला ज़रूर करोगे।"

"पुष्पा तुम ठीक कहती हो। मैंने सोचा कि मुझे कोचिंग से अच्छे ख़ासे पैसे मिल जाते हैं फिर तुम्हारी तनख़्वाह भी होगी। मैं समझता हूँ कि हम दोनों एक साथ रहकर अच्छी ज़िन्दगी गुज़ार सकेंगे।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया फिर कुछ देर जज़्बात भरी बातें करने के बाद रवि ने फ़ोन रख दिया और कहीं जाने की तैयारी करने लगा।

दो दिन बाद रवि को पुष्पा का फ़ोन मिला। ''रवि मैंने अभी-अभी नौकरी ज्वाइन की है। मैं कह नहीं सकती कि मैं कितनी खुश हूँ। मैं किन शब्दों में तुम्हें धन्यवाद दूँ! तुमने अगर यह फ़ैसला मेरे लिए न किया होता तो मैं एक अपार दु:ख के बोझ तले पिस कर रह जाती।''

''कैसी बातें कर रही हो पुष्पा! मैं और तुम कोई अलग अलग हैं? फिर धन्यवाद किस बात का?''

''अच्छा सॉरी, आज शाम हम लोग इस अवसर को ब्लू स्टार में सेलीब्रेट करेंगे। आठ बजे वहाँ आ जाना।''

''ब्लू स्टार ही क्यों? किसी और अच्छे रेस्त्राँ में क्यों नहीं?'' रवि ने पूछा।

''रवि हम लोगों ने अपनी दोस्ती का सफ़र वहीं से शुरू किया था। फिर उस पड़ाव को कैसे भूला जा सकता है?''

''ठीक है मैं वहाँ आठ बजे पहुँच जाऊँगा।'' फिर उससे पहले कि रवि कोई और बात कहता पुष्पा ने फ़ोन काट दिया।

रवि जब ब्लू स्टार पहुँचा तो उसने देखा कि इत्तेफ़ाक़ से वह टेबल ख़ाली है जिस पर वह और पुष्पा पहली बार एक साथ बैठे थे। वह उसी टेबल पर जाकर बैठ गया।

उसे पुष्पा का ज़्यादा इन्तज़ार नहीं करना पड़ा। वह आयी। मगर उसके साथ कोई और भी था। ख़ासा खूबसूरत ख़ासा वजीह। पुष्पा उसकी बाँहों का सहारा लेकर आहिस्ता-आहिस्ता क़दमों के साथ उसकी मेज़ पर आ गयी।

''इनसे मिलो रवि। यह प्रतीक है, प्रतीक मेहरोत्रा। मेरे होने वाले हसबेंड। हम दोनों पिछले कई बरसों से नौकरी के इन्तज़ार में कोर्टशिप कर रहे हैं। तुम्हारा एहसान हमारी ज़िन्दगी की पहली रोशनी है। तुम्हें हम कभी नहीं भूलेंगे!'' पुष्पा के चेहरे पर एक मुस्कराहट फैल गयी। जिसमें उदासी का रंग नुमायाँ था।

रवि के कानों में सैकड़ों सायरन एक साथ बज उठे और उसने महसूस किया कि जैसे हर तरफ़ ब्लैक आउट हो गया हो।

पुस्तकें मिलीं

1. डायरी अंतर्जीवन के साक्ष्य (डायरी), संपा. हिमांशु जोशी, किताबघर, मूल्य : 200 रुपये।
2. एक वकील की डायरी (डायरी), संतोष खरे, मेधा बुक्स, मूल्य : 150 रुपये।
3. आत्मकथा आत्मकथाओं से बाहर (आत्मकथा), डॉ. सुमन राजे, जनमेजय प्रकाशन, मूल्य :140 रुपये।
4. मेरी कथा (आत्मकथा), मार्टिन मेकवान, वाणी प्रकाशन, मूल्य :175 रुपये।
5. सोनाली गाथा तथा अन्य कहानियाँ (कहानी), पुष्पा देवड़ा, किताबघर, मूल्य :100 रुपये।
6. गॉड गिवन फ़ैमिली (कहानी), उमेश अग्निहोत्री, मेधा बुक्स, मूल्य : 200 रुपये।
7. विवस्त्र तथा अन्य कहानियाँ (कहानी), प्रताप दीक्षित, साहित्य संस्थान, मूल्य : 140 रुपये।
8. कृष्णशार (कहानी), डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, अनय प्रकाशन, मूल्य : 150 रुपये।
9. दस प्रतिनिधि कहानियाँ (कहानी), प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, किताबघर, मूल्य : 150 रुपये।
10. दुखवा मैं कासे कहूं (कहानी), आचार्य चतुरसेन, हिन्द पॉकेट बुक्स, मूल्य :157 रुपये।
11. फुटपाथ पर कुर्सी (कविता), कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, मूल्य : 80 रुपये।
12. ख़्वाब ख़्वाब ख़ामोशी (कविता), देवेन्द्र आर्य, शिल्पायन, मूल्य :135 रुपये।
13. पतझड़ का स्थापत्य (कविता), शशिप्रकाश, परिकल्पना प्रकाशन, मूल्य : 75 रुपये।
14. दोहा सनद (दोहा), तरतीबकार सबा बिलग्रामी, अँजुम पब्लिकेशन, मूल्य : 150 रुपये।
15. शब्दों का कोहरा (कविता), वीरभद्र कार्कीढोली, दोभान प्रकाशन, मूल्य संकेत नहीं।
16. अक्षरहरुको यात्रामा (कविता), वीरभद्र कार्कीढोली, दोभान प्रकाशन, मूल्य : 101 रुपये।
17. उखड़े हुए पौधे का बयान (कविता), अभिरंजन कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, मूल्य :160 रुपये।
18. दिल से निकली दिल की बात (कविता), हृदयेश मयंक, परिदृश्य प्रकाशन, मूल्य : 50 रुपये।
19. अभी भी बचा हुआ है बहुत कुछ (कविता), हृदयेश मयंक, परिदृश्य प्रकाशन, मूल्य :50 रुपये।
20. दर्द की स्याही (कविता), अंजु दुआ जैमिनी, मगध प्रकाशन, मूल्य :100 रुपये।
21. इस लड़ाई में (कविता), वीरेन्द्र गोयल, दिशा प्रकाशन, मूल्य :100 रुपये।
22. इस तरह से ये समय (कविता), वीरेन्द्र गोयल, राधाकृष्ण, मूल्य : 95 रुपये।
23. महानगर में प्रेम (कविता), वीरेन्द्र गोयल, पारुल प्रकाशन, मूल्य :120 रुपये।
24. चलो घर चलें (कविता), उदभभान मिश्र, मनु प्रकाशन, मूल्य : 100 रुपये।
25. गोविंद मिश्र : सृजन के आयाम (आलोचना), संपा. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन, मूल्य : 495 रुपये।
26. हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा (आलोचना), ज्ञानप्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, मूल्य : 170 रुपये।
27. धर्मवीर भारती की काव्य-चेतना (आलोचना), डॉ. पूनम सिंह, समीक्षा प्रकाशन, मूल्य : 200 रुपये।
28. अज्ञेय के उपन्यास (आलोचना), डॉ. हितेन्द्र मिश्र, संजय बुक सेन्टर, मूल्य : 160 रुपये।
29. शहर और सपना (आलोचना), अंशु मालवीय, ऑक्सफैम इण्डिया ट्रस्ट, मूल्य संकेत नहीं।
30. जो दिखा सो लिखा, (आलोचना), प्रमोद भारद्वाज, साहित्य संगम, मूल्य:300 रुपये।
31. अनुभूतियाँ और विमर्श (आलोचना), कृष्ण कुमार यादव, नागरिक उत्तर प्रदेश, मूल्य : 250 रुपये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित

अयोध्याप्रसाद गोयलीय द्वारा

सम्पादित उर्दू शाइरी की प्रमुख पुस्तकें

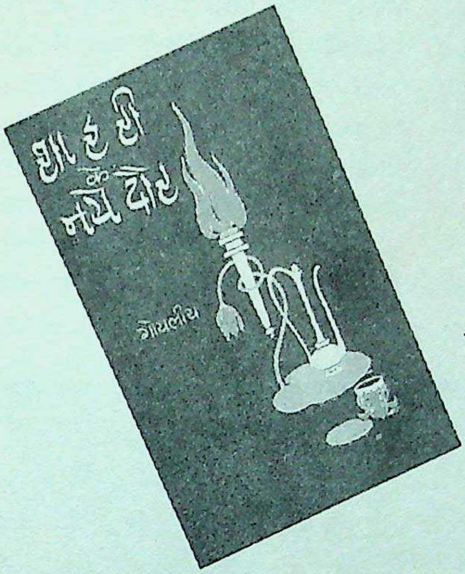

शाइरी के नये दौर

(पाँच भागों में)

प्रत्येक भाग मूल्य : 100 रुपये

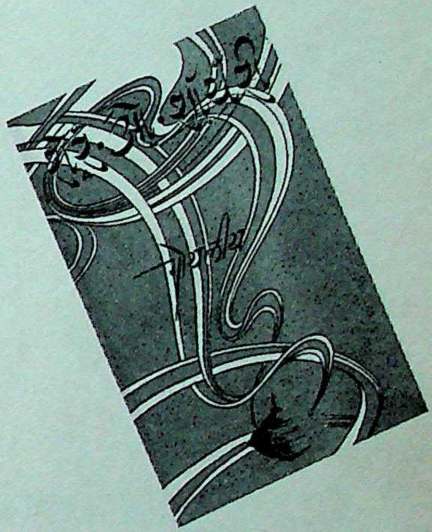

शेर-ओ-शायरी

पृष्ठ : 620, मूल्य : 175 रुपये

शाइरी के नये मोड़

(पाँच भागों में)

प्रत्येक भाग मूल्य : 100 रुपये

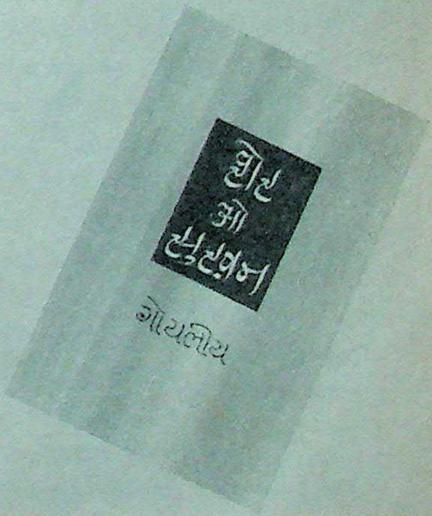

शेर-ओ-सुखन

(पाँच भागों में)

प्रत्येक भाग मूल्य : 100 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशकाल

दस्तक : बाज़ार में दम्पती

शशांक दुबे

मैटिनी शो

हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में बरसों से हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली बयार चली आयी है। जिन संवादों पर दर्शक ताली पीटते हैं, जिन गीतों पर सारा हॉल चुटकियाँ बजाता है, उनमें न तो शुद्ध हिन्दी होती है, न ख़ालिस उर्दू, बल्कि इन दोनों भाषाओं का मिला-जुला प्रयोग होता है। हमारे फ़िल्मकार भी इन भाषाओं के प्रति अपना आभार फ़िल्म की नामावली में फ़िल्म का नाम अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी व उर्दू में देकर मुक्त हो जाते हैं, लेकिन शेष नामावली अँग्रेजी में ही दी जाती है। इसके पीछे फ़िल्मकारों का यह तर्क है कि हम सिर्फ़ हिन्दी में नामावली देंगे, तो विदेश में लोग फ़िल्म कैसे समझेंगे? गोया, हर साल दो-तीन ऑस्कर पुरस्कार अपनी यहाँ की फ़िल्मों को ही मिलते हों! भाषा के प्रति इस उदासीन माहौल में 'बहारें फिर भी आएँगी', 'शिकार', 'आरोप' और 'उमंग' सरीखी हल्की-फुल्की, मनोरंजक फ़िल्में बनाने वाले फ़िल्मकार आत्माराम एकमात्र अपवाद रहे हैं, जिनकी तमाम फ़िल्मों की पूरी नामावली हिन्दी में हुआ करती थी। बासु चटर्जी ने भी कुछ फ़िल्मों में नामावली हिन्दी में दी।

दस्तक (1970)
निर्माता-निर्देशक और लेखक : राजिन्दर सिंह बेदी
गीत : मजरूह सुल्तानपुरी
संगीत : मदन मोहन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजश्री प्रोडक्शन्स वाले अपनी फ़िल्मों की नामावली सरकारी दफ़्तरों के नाम-पट्टों की तरह हिन्दी-अँग्रेजी द्विभाषिक रूप में देते थे। लेकिन जैसे ही उनके प्रोडक्शन की कमान तीसरी पीढ़ी के सूरज बड़जात्या के हाथ में आ गयी, राजश्री से भी हिन्दी का सूरज अस्त हो गया। जब हिन्दी की यह दुर्दशा हो, तो बेचारी उर्दू की सुध कौन ले? ले-देकर 'नूरे इस्लाम', 'दयारे मदीना 'और 'गाज़ी सलाहुद्दीन' जैसी धार्मिक फ़िल्मों को छोड़कर उर्दू की ओर भी किसी ने रुख़ नहीं किया। लेकिन हिन्दी-उर्दू की खाने और अँग्रेजी की बजाने वाले इस फ़िल्म संसार में राजिन्दर सिंह बेदी ऐसे एकमात्र फ़िल्मकार हुए हैं, जिन्होंने अपनी पहली फ़िल्म 'दस्तक' की सम्पूर्ण नामावली उर्दू में देकर इस भाषा के प्रति अपनी आदरांजलि प्रस्तुत की थी। इस प्रकार 'दस्तक' मुख्यधारा की पहली महत्त्वपूर्ण उर्दू फ़िल्म है। बाद में आप चाहें तो इस कड़ी में मुज़फ्फर अली की 'गमन' और 'उमराव जान' या एम.एस. सथ्यू की 'गर्म हवा', सईद मिर्ज़ा की 'नसीम' या श्याम बेनेगल की 'मम्मो' और 'सरदारी बेग़म' को रख सकते हैं।

राजिन्दर सिंह बेदी के नाटक 'नकल-ए-ईमान' पर आधारित उन्हीं के द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'दस्तक' पति-पत्नी के बीच हालात और समाज के टुच्चे नज़रिये से पैदा हुई दख़ल को बिल्कुल नये और निराले तेवर में प्रस्तुत करती है। हमीद (संजीव कुमार) और सलमा (रेहाना सुल्तान) नये शहर के नये घर में नयी उम्मीदें और नयी हसरतों के साथ दाख़िल होते हैं। वे बड़े खुश हैं, आख़िर उन्होंने मुम्बई सरीखे शहर में मकान जो ले लिया है। लेकिन उनका दुर्भाग्य, कि जिस घर में वे रहने आये हैं, वहाँ उनसे पहले कभी मुजरे वाली बाई शमशाद बेग़म रहा करती थी। इलाक़ा भी शहर की बदनाम बस्ती से सटा हुआ हैं। आये दिन घर पर कोई न कोई दस्तक देता है और सलमा को वेश्या समझकर अपनी-अपनी सिफ़ारिश करता है। पड़ोस का माहौल भी अज़ीबोग़रीब है। लोग पल-पल ताका-झाँकी करते हैं। सलमा का नहाना मुश्किल, सलमा का गाना मुश्किल, हमीद और सलमा की प्यार भरी बातें मुश्किल! लोग दीवारों से सटकर उनकी थोड़ी बहुत बातें सुनते हैं, फिर नमक-मिर्च लगाकर और उस पर नींबू निचोड़कर अंटशंट बका करते हैं। पति-पत्नी हालात को बदलना चाहते हैं। वे घर की सफ़ेद पुताई करते हैं, ताकि काले अतीत के स्याह दाग़ धुल सकें। सलमा, जो संगीत की इबादत करती है, वह भी गाने को तज देती है, ताकि लोग अन्यथा न लेकर दस्तक न दें। खिड़कियाँ भी बन्द कर दी जाती हैं, ताकि कोई ताका-झाँकी न हो। यह भी तय कर लिया जाता है कि दरवाज़े पर दस्तक होने पर सलमा दरवाज़ा न खोले। वे खुश रहना चाहते हैं। आपस में रसमयी बातें करना चाहते हैं, लेकिन जाएँ तो जाएँ कहाँ? बड़ा फ्लैट होने के बावजूद उन्हें खानाबदोशों की तरह रहना पड़ता है। वे जीवन की खुशियाँ घर की बजाय सड़कों पर, थियेटर में, समुद्र तट पर ढूँढने लगते हैं लेकिन बाहर भी चैन कहाँ? उनके रिश्ते की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि उनके सम्बन्धों को हमेशा शक़-शुबहे की निगाहों से देखा जाता है। सलमा और हमीद इन गन्दे तानों से बचने की लाख कोशिश करते हैं, लेकिन उनके वैवाहिक जीवन में इसके छींटे पड़ने शुरू हो जाते हैं। हमीद अपना आपा खोने लगता है और सलमा ख़ुद को हालात के सुपुर्द कर देती है। सलमा की आत्मा चित्कार उठती है—

न तड़पने की इजाज़त है न फरियाद करने की
घुट के मर जाऊँ ये मर्ज़ी है मेरे सय्याद की!

एक दिन कोई शरारती उनकी खिड़की के शीशों पर पत्थर सन्ना देता है, तो सलमा दहाड़ मारकर रोते हुए कहती है, "मुझे शीशे टूटने का ग़म नहीं, मुझे तो खुली हवा में साँस न ले पाने का ग़म है।" हमीद ख़ुद को और सलमा को इस नर्क से निकालने के लिए जल्दी पैसे कमाकर नये इलाक़े में शिफ्ट होना चाहता है। इसके लिए वह ग़लत हथकंडे अपनाने की भी सोचने लगता है। दूसरी ओर कुछ विघ्नसन्तोषी लोग छल-कपट से उसे सलमा के ख़िलाफ़ भड़काते हैं। सलमा उसकी दुर्दशा समझ नहीं पाती और उसकी भर्त्सना करने लगती है। लेकिन जब हक़ीक़त समझ में आती है, तो उसे बहुत दुःख होता है। वह हमीद से माफ़ी माँगती है

'दस्तक' अपने समय की बहुत महत्त्वपूर्ण फ़िल्म है। 'देवदास', 'मधुमती', 'बम्बई का बाबू', 'मेम दीदी' और 'अनुपमा' जैसी कला और लोकप्रियता की दोहरी कसौटियों पर खरी उतरने वाली फ़िल्में लिखने के बाद राजिन्दर सिंह बेदी ने इसी फ़िल्म से निर्देशन की चौखट पर दस्तक दी थी।

—शशांक दुबे (मैटिनी शो)

उर्दू मीडिया में ख़बरों का अपना एजेंडा है। राजनीति, अपराध और दूसरी हार्डन्यूज़ तो यहाँ भी छपती हैं, लेकिन हमारे सरोकार से जुड़ी देश-दुनिया की बहुत-सी ख़बरें यहाँ उस तरह नहीं ली जाती जैसे ली जानी चाहिए। विदर्भ में किसानों की ख़ुदकुशी के बजाय इराक का अन्दरूनी संकट उर्दू अख़बार के लिए ज़्यादा अहम मुद्दा है।

—लईक रिज़वी (मीडिया)

'यूँ ही फ़िराक़ ने उम्र बसर की' पढ़ते हुए मुझे फ़िराक़ के व्यक्तित्व के उस बड़प्पन की याद आयी, जिसका ज़िक्र किताब में भी ख़ूब आता है। विश्वविद्यालय में मेरा और मेरे मित्रों— कृष्ण प्रताप, दिनेशकुमार शुक्ल, रामजी राय, देवी प्रसाद त्रिपाठी वग़ैरह के अन्तिम वर्षों की वे शामें स्मृति में कौंध जाती हैं जो हमने फ़िराक़ के सान्निध्य में बिताई थीं।

—विभूतिनारायण राय (फिराक़)

पाकिस्तान की स्थापना के पीछे न तो कोई सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार था, न ही भारत की पारम्परिक उदार विरासत से कुछ सीखा गया था। नये राष्ट्र का निर्माण तो हो गया लेकिन संस्कृति के नाम पर नया कुछ भी नहीं था, तो फिर राष्ट्र की पहचान कैसे हो? इस संकट ने पाकिस्तान के उर्दू कथाकारों को उद्वेलित किया और वे जाने अनजाने भारतीय मिथकों की ओर आकृष्ट होते गये।

—रहमान मुसव्विर (सृजन)

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और अन्तत: दोनों यह फ़ैसला कर लेते हैं कि चाहे हालात कैसे भी हों, बाहर की दुनिया कैसी भी हो, उन्हें नियति का मुक़ाबला करना है और संघर्ष के इस दलदल में ही खुशियों के कँवल खोजने हैं।

'दस्तक' अपने समय की बहुत महत्त्वपूर्ण फ़िल्म है। 'देवदास', 'मधुमती', 'बम्बई का बाबू', 'मेम दीदी' और 'अनुपमा' जैसी कला और लोकप्रियता की दोहरी कसौटियों पर खरी उतरने वाली फ़िल्में लिखने के बाद राजिन्दर सिंह बेदी ने इसी फ़िल्म से निर्देशन की चौखट पर दस्तक दी थी। 'दस्तक' की कहानी में ही नयापन नहीं है, उसके कलाकारों के अभिनय में ताज़गी है, चुटीले संवाद हैं, कभी न भूलाये जा सकने वाले गम्भीर गीत हैं और साथ में मदन मोहन का मनमोहक संगीत भी। मदन मोहन भारतीय सिनेमा के ऐसे बिरले संगीतकार रहे हैं, जिनके एक-एक गीत को क़द्रदानों ने सर-माथे बिठाया, लेकिन यह इस कलाकार का दुर्भाग्य रहा कि मात्र 'वो कौन थी' और 'मेरा साया' को छोड़कर उनकी कोई फ़िल्म बॉक्स ऑफ़िस पर तहलका न मचा सकी। इसीलिए प्रतिभा में बराबर का वज़न रखने के बावजूद मायानगरी में माया शंकर जयकिशन, नौशाद और ओ.पी.नैयफके ही हाथ लगी और उन्हें महज़ वाह-वाह से सन्तोष करना पड़ा। नतीजतन वे फ्रस्ट्रेशन के शिकार हो गए। यह भी एक संयोग है कि उनके मरणोपरान्त प्रदर्शित फिल्मों 'लैला मजनूँ' और 'मौसम ' के न सिर्फ़ संगीत की गूँज घर-घर में सुनाई दी, बल्कि इनकी सफलता का डंका सुदूर कस्बों से लेकर महानगरों तक बजा। हाल ही में प्रदर्शित 'वीर ज़ारा' (निर्देशक यश चोपड़ा) में भी मदन मोहन के संगीत ने जादू बिखेरा। 'दस्तक' उनके जीते जी उनके पच्चीस साल के फ़िल्मी पड़ाव का आख़िरी और उल्लेखनीय मुकाम है। इसके एक-एक गीत को सिनेमा के सुरीले सफ़र का अनमोल मनका कहा जाये, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। शास्त्रीय संगीत के अनुरागियों को बरसों बाद इस फ़िल्म में *'बैंया न धरो ओ बलमा ना करो मोसे रार/ ढलेगी चुनरिया तन से, हँसेगी रे चुड़ियाँ छन से/ मचेगी झनकार बैंया ना धरो!'* नामक ठुमरी सुनने को मिली। सुल्तानपुरी की पहचान मस्ती भरे गीतों के बाज़ीगर के रूप में रही है, लेकिन जब वे धीर-गम्भीर होते हैं, तो अपने आलोचकों को भी मुरीद बना लेते हैं। उनकी इस ग़ज़ल को सैंतीस साल बाद भी लोग बड़े मन से याद करते हैं—

हम हैं मता-ए-कूचा-ओ बाज़ार की तरह
उठती है हर निगाह ख़रीदार की तरह
मजरूह लिख रहे हैं वो अहल-ए-वफ़ा का नाम
हम भी खड़े हुए हैं गुनाहगार की तरह!

'दस्तक' के संगीत की बात अधूरी रह जायेगी, यदि मदन मोहन के एक और अभिनव आयाम से परिचित न कराया जाये। मदन मोहन एस.डी.बर्मन की ही परम्परा के उन संगीतकारों में हैं, जिनके पास दिलकश धुनों की खज़ाना तो था ही, माशा अल्लाह आवाज़ भी बड़ी सुरीली थी। इन दोनों संगीतकारों की सफलता का राज़ ही यह था कि वे गाने की रिहर्सल के दौरान अन्य संगीतकारों की तरह गायक को नोटेशन नहीं पकड़ाते थे, बल्कि ख़ुद गाकर बताया करते थे। इस फ़िल्म में लता को 'माई री मैं कासे कहूँ पीर अपने जिया की माई री!' गीत गाना था, लेकिन ऐन रेकॉर्डिंग के वक़्त उनका गला दग़ा दे गया और तदर्थ व्यवस्था के तहत मदन मोहन को यह गाना ख़ुद अपनी आवाज़ में गाना पड़ा। बाद में लता जी ने इसे डब तो कर दिया, लेकिन बेदी को मदन जी की आवाज़ इतनी अच्छी लगी कि फ़िल्म में इस गीत को भी रहने दिया। आज भी जब कभी विविध भारती पर यह गाना मदन मोहन की आवाज़ में सुनने को मिलता है तो उनकी आवाज़ के जादू और मज़रूह के शब्दों के लोग क़ायल हो जाते हैं

पी की डगर में बैठा मैला हुआ री मोरा आँचरा
मुखड़ा है फीका-फीका नैनों में सोहे नहीं काजरा
कोई जो देखे मैया प्रीत का कासे कहूँ माजरा
पी की डगर में बैठा मैला हुआ री मोरा आँचरा
लट में पड़ी कैसी बिरहा की माटी माई री!

संगीत के अलावा फ़िल्म का एक और मजबूत पक्ष है, प्रमुख कलाकारों का अभिनय। संजीव कुमार एक ऐसे कलाकार हैं, जिनके अभिनय के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि मोतीलाल के बाद स्वाभाविक और बहुआयामी अभिनय का कोई स्कूल हैं, तो सिर्फ़ संजीव। समाज के तानों, उनकी उठती निगाहों से आहत नव-विवाहित पुरुष की वेदना, चिढ, कुंठा, गुस्सा और विवशता के नुकीले चरित्रों में संजीव ने अपनी वेदना से प्राण फूँक दिये हैं। 'संघर्ष' और 'शिकार' के बाद 'दस्तक' संजीव का एक नया ही और व्यापक रूप खोलती है। फ़िल्म की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं नवोदित तारिका रेहाना सुल्तान। रेहाना ने अपनी सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति से इस किरदार को इतना जीवन्त कर दिया था कि लोगों को एकबारगी यक़ीन ही नहीं हुआ कि पुणे फ़िल्म इंस्टीट्यूट की इस पौध की यह पहली फ़िल्म है। अफ़सोस कि उनके स्नान वाले दृश्य को पैमाना बनाकर बाद में फ़िल्मकारों ने उनकी प्रतिभा की बजाय उनके शरीर को ही भुनाया और हद तो तब जाकर ख़त्म हुई, जब रति के बाबूराम ने 'चेतना' के पोस्टर पर मात्र उनकी टाँगें दिखाकर उन्हीं टाँगों से ए सर्टिफिकेट बनाया। बाद में वे चन्द बी या सी ग्रेड फ़िल्में करने के बाद दृश्य-पटल से ओझल हो गयीं। हालाँकि संजीव कुमार की अभिनय यात्रा तो दूर तलक चली, लेकिन मदन मोहन नहीं रहे और राजिन्दर सिंह बेदी भी 'फागुन' बनाकर ख़ामोश हो गये। 'दस्तक' को एक साथ तीन राष्ट्रीय पुरस्कार मिले— संजीव कुमार, रेहाना सुल्तान और मदन मोहन को। समीक्षकों ने इसे सराहा। अलबत्ता बॉक्स ऑफ़िस पर यह कोई हंगामा खड़ा न कर सकी, लेकिन जिन्होंने भी इसे देखा वे आज भी इसे एक ऐसी संगीतमय क्लासिक के रूप में याद करते हैं, जो आदमी के पाखंड और इंसानियत के प्रति उसके कपटी नज़रिये को बड़ी गहरायी से उकेरती है।

37/ 801, एनआरआई कॉम्प्लेक्स,
सी-वूड्स एस्टेट, नेरुल,
नवी मुम्बई- 400706
फोन : 022-27561341

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपना जीवन हो गया उर्दू का अख़बार

लईक़ रिज़वी

मीडिया

उर्दू पत्रकारिता का अतीत बहुत गौरवशाली रहा है। आज़ादी की जंग में इसने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। लेकिन बाद में हालात बदलते गये। बदकिस्मती से उर्दू को विभाजन का दोषी और हिन्दी के विकास में बाधक मान लिया गया। चुनाँचे साज़िशें रची गयीं और वार भी हुए। आज़ादी के बाद उर्दू का रोज़गार से रिश्ता टूटता गया और नयी नस्ल ने उससे मुँह मोड़ लिया। उर्दू स्कूलों की साँस उखड़ती चली गयी।

इन सब हालात से उर्दू पत्रकारिता कैसे बच पाती। आज़ाद भारत में उसे नयी चुनौतियों से जूझना पड़ा, और दूसरी भाषाओं के मुक़ाबले ये पिछड़ती चली गयी। उत्तर भारत में हालात ज़्यादा खराब थी। बँटवारे ने भी इस रवायत को तोड़ा-झकझोरा। तब निकल रहे उर्दू के 90 अख़बारों में से 28 पाकिस्तान में चले गये। बहरहाल धीरे-धीरे उर्दू प्रेस इन झटकों से उबरा, और मुल्क के विभिन्न हिस्सों से आज़ाद हिन्द, सियासत, रहनुमाए दकन, क़ौमी आवाज़, प्रताप, मिलाप और हिन्द समाचार जैसे अख़बार निकले। इनमें से कई अख़बार आज भी उर्दू पत्रकारिता की पहचान बने हुए हैं।

पिछड़े डेढ़-दो दशक में तस्वीर फिर बदली। आज उर्दू अख़बार देश के बड़े प्रेस में शुमार होता है। मुल्क भर में इसका फैलाव है। कहीं कम, तो कहीं ज़्यादा। मुल्क के उन हिस्सों में जहाँ उर्दू का क्षेत्रीय भाषा से कोई मुक़ाबला नहीं था, वहाँ उर्दू और उर्दू पत्रकारिता तेज़ी से फली-फूली। आज़ादी के बाद मुल्क में उर्दू अख़बार की संख्या ढाई गुने से भी ज़्यादा बढ़ चुकी है। दैनिक अख़बारों को आधार बनाए तो राष्ट्रीय स्तर पर उर्दू प्रेस तीसरे नम्बर पर आता है। आज देश में 162 उर्दू दैनिक निकल रहे हैं। उर्दू साप्ताहिकों की संख्या 403 है। जबकि 1980 में 120 उर्दू दैनिक अख़बार और 597 साप्ताहिक पत्र छपते थे।

उत्तर प्रदेश, दिल्ली, जम्मू-कश्मीर, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, बिहार और पश्चिम बंगाल में उर्दू पत्रकारिता का स्वरूप बड़ा है। कम सही, लेकिन इनकी अपनी अलग आवाज़ है। अपना इम्पैक्ट भी है। यूँ तो उर्दू बोलने वालों की हर छोटी-बड़ी बस्ती से उर्दू अख़बार प्रकाशित होते हैं, लेकिन दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद, श्रीनगर, कोलकाता, लखनऊ, जालंधर और पटना उर्दू पत्रकारिता के बड़े सेंटर हैं। क़ौमी आवाज़, राष्ट्रीय सहारा, सियासत, मुंसिफ, इंकलाब, उर्दू टाइम्स, हिन्द समाचार, सालार, अख़बारे मशरिक, आज़ादे-हिन्द, आफ़ताब, तेज, मिलाप, प्रताप, क़ौमी तंजीम अपने-अपने हलकों के प्रतिनिधि उर्दू अख़बार हैं। राष्ट्रीय सहारा तेजी से बढ़ रहा उर्दू अख़बार है। दिल्ली के अलावा, आज ये लखनऊ, गोरखपुर, पटना, मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद से छप रहा है। श्रीनगर और बंगलूर से भी जल्द ही ये आने वाला है। कई अख़बारों के इंटरनेट संस्करण भी उपलब्ध हैं। उर्दू पत्रकारिता का एक बड़ा और अहम हिस्सा साप्ताहिक पत्रों का है। नयी दुनिया और आलमी सहारा के नाम ख़ास हैं।

उर्दू अख़बार छप भी रहे हैं और अपने हलके में पढ़े भी जाते हैं, लेकिन इनकी अपनी सीमा भी है। गिने-चुने बड़े अख़बारों को छोड़ दें तो आम उर्दू अख़बार मुकम्मल अख़बार नहीं कहे जा सकते। इन्हें पढ़कर ख़बरों की भूख नहीं मिटती। इसका कारण भी हैं। कुछ बाहरी दबाव, कुछ अन्दरूनी कमी, कोताहियाँ। आम उर्दू अख़बार तरक्की की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है। ज़्यादातर अख़बारों का अपना नेटवर्क नहीं है। सारा दारोमदार एजेंसी पर रहता है। जैसी और जितनी ख़बरें मिल जाती हैं, अख़बार में शामिल कर ली जाती हैं। लोकल कवरेज़ भी अच्छा नहीं होता। कई जगह विज्ञप्तियाँ भी ज्यों-की-त्यों छाप दी जाती हैं। आज नेशनल प्रेस, बिजनेस, कैरियर, साइंस और खेती-बाड़ी पर भी अलग से पन्ने निकालता है। लेकिन उर्दू अख़बारों में आमतौर पर इसकी कमी दिखती है। अलबत्ता अदब और दीन-मज़हब पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है।

उर्दू मीडिया में ख़बरों का अपना एजेंडा है। राजनीति, अपराध और दूसरी हार्डन्यूज़ तो यहाँ भी छपती हैं, लेकिन हमारे सरोकार से जुड़ी देश-दुनिया की बहुत-सी ख़बरें यहाँ उस तरह नहीं ली जाती जैसे ली जानी चाहिए। विदर्भ में किसानों की ख़ुदकुशी के बजाय इराक का अन्दरूनी संकट उर्दू अख़बार के लिए ज़्यादा अहम मुद्दा है। ख़बरों की प्राथमिकता तो ख़ैर अख़बार का अपना फ़ैसला है, लेकिन ख़बरों के सम्पादन और पेशकश में भी कई बार अधकचरापन दिखता है। अपने पाठकों की पसन्द का ख़्याल तो सभी अख़बार करते हैं। उर्दू अख़बार भी इससे अलग नहीं। उर्दू अख़बारों के पाठक वर्ग का बड़ा हिस्सा मुस्लिम वर्ग से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आता है, इसलिए यहाँ भी मुस्लिम मुद्दों को तरजीह मिलती हैं। ये गलत भी नहीं। मुसलमानों की बात उर्दू अख़बार भी न उठाए, तो फिर कौन उठाएगा। लेकिन दिक्कत यह है कि इन सवालों पर भी ज़्यादातर पत्र-पत्रिकाओं ने गम्भीरता नहीं दिखाई। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के हवाले से मुसलमानों के पिछड़ेपन पर कुछ चैनल और अँग्रेज़ी अख़बारों ने जो संजीदगी दिखायी, जैसी ख़ोज और तथ्यपरक रिपोर्ट छापीं, वैसा उर्दू मीडिया में नहीं दिखा।

दिक़्क़त तब और होती है, जब मुस्लिमों से जुड़े जज्बाती मुद्दों को भुनाने की कोशिश होती है। आज़ादी के बाद उर्दू को मुसलमान बनाने की साज़िश हुई,और अब लगता है कि उर्दू मीडिया का एक हिस्सा उर्दू अख़बारों को मुसलमान बनाने में जुटा लगता है। पत्रकारिता की बुनियादी शर्त सन्तुलन है। मगर अब तो सन्तुलन राष्ट्रीय प्रेस में भी ग़ायब दिखता है। ग़ौर से देखिए तो हर भाषा के अख़बार में असन्तुलन दिख जाता है। उर्दू में, ख़ासकर कुछ साप्ताहिक अख़बारों में ऐसी ही स्थितियाँ हैं। ख़बरों के चयन से लेकर उनका क्रम तक तय करने में ख़बर के महत्त्व के बजाय मुसलमानों की पसन्द को सामने रखा जाता है। मुद्दे संवेदनशील हों तो क़लम और भी बहक जाते हैं। यूँ तो हर भाषा में टेबलायड अख़बार सनसनी वाली ख़बरों के चक्कर में पड़े रहते हैं, लेकिन उर्दू में स्थितियाँ ज़्यादा जटिल हैं। ख़बरों और रिपोर्टों केनाम पर यहाँ सिर्फ़ संवेदनशील मुद्दे होते हैं, और वे भी मसालेदार जज़्बाती तड़का मार के। न भाषा में संयम होता है, न शैली में सन्तुलन। ऐसे में कई बार सेकुलरिज़्म का दामन भी छुट जाता है। उर्दू के बहुत से अख़बार मालिकों के हित साधने के लिए निकाले जा रहे हैं। इनके अपने तौर-तरीक़े हैं।

लेकिन इसके विपरीत उर्दू के प्रतिनिधि अख़बारों ने आमतौर पर अच्छी पत्रकारिता की मिसाल ही पेश की हैं। किसी प्रतिनिधि उर्दू अख़बार ने मुस्लिम आतंकवाद को जेहाद नहीं लिखा। कश्मीर समेत राष्ट्रीय महत्त्व के किसी भी मुद्दे पर भी उर्दू प्रेस का रुख राष्ट्रीय सोच और रुख से अलग नहीं रहता। अयोध्या मामले में भी उर्दू प्रेस का रवैया ज़िम्मेदाराना रहा है। सियासत (हैदराबाद), मुंसिफ (हैदराबाद), इंकलाब (मुम्बई), उर्दू टाइम्स (मुम्बई), क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), राष्ट्रीय सहारा (दिल्ली) आज़ाद हिन्द (कोलकाता) समेत कई दर्जन दैनिक अख़बार ऐसे हैं, जो किसी भी भाषा के अख़बारों से आँख मिला सकते हैं।

सर्कुलेशन, इश्तेहार और ट्रेंड स्टाफ़ की कमी उर्दू अख़बारों का बड़ा और बुनियादी संकट है। अब हालात कुछ सुधरे हैं, लेकिन अभी बहुत कुछ होना बाक़ी है। सर्कुलेशन बचाना और बढ़ाना उर्दू अख़बारों के लिए ये और बड़ी चुनौती है। उर्दू प्रेस अब तक उद्योग की शक्ल अख़्तियार नहीं कर सका है। ज़्यादातर अख़बार छोटे और मझोले अख़बार की श्रेणी में आते हैं। संसाधन की कमी से ज़्यादातर अख़बार किसी तरह वजूद बचाने की जद्दोजेहद में लगे हुए हैं। सस्ते से सस्ता काग़ज़ इस्तेमाल करना इनकी मजबूरी है। अब मौजूदा वक़्त में बढ़िया काग़ज़ पर चमकदार और रंगीन छपाई के पत्र-पत्रिकाओं के तमाम विकल्पों के बीच कोई उर्दू अख़बार क्यों खरीदेगा? अपना पाठक वर्ग बचाए रखने के लिए उर्दू अख़बारों को हिन्दी-अँग्रेज़ी ही नहीं क्षेत्रीय भाषाओं के अख़बारों से भी गम्भीर चुनौती मिलती है। ऐसे में अपने उन पाठकों को जो दूसरी भाषा भी जानते हैं, उन्हें अपने साथ रोके रखना उर्दू अख़बारों का बड़ा मसला है। इस दिशा में कई अच्छे-बुरे प्रयोग भी हुए। लखनऊ से जदीद मरकज़ नाम से देवनागरी में साप्ताहिक अख़बार निकला। हाल में लखनऊ से ही शुरू हुए दैनिक आज ने हिन्दी में सप्लीमेंट देना शुरू किया है। इन प्रयोगों से होने वाले नफे-नुकसान का आकलन होना अभी बाक़ी है। सर्कुलेशन कम हैं तो बेहतर इश्तेहार भी नहीं मिलते। ये बताने की ज़रूरत नहीं कि विज्ञापन मीडिया की कमाई का मुख्य स्रोत हैं। कार्पोरेट सेक्टर के विज्ञापन तो शायद कभी-कभार ही उर्दू अख़बारों में दिख जाएँ। ज़्यादातर अख़बार सरकारी विज्ञापनों के दम पर अपना वजूद बनाये हुए हैं।

प्रशिक्षित हाथों का अभाव उर्दू पत्रकारिता का प्रमुख संकट है। उर्दू पत्रकारों की नयी नस्ल तैयार करने का अपेक्षित इन्तज़ाम कहीं नहीं। ज़ामिया मिलिया में एक डिप्लोमा कोर्स ज़रूर चलता है। ज़ामिया और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी समेत कुछ विश्वविद्यालयों में एम.ए. में पत्रकारिता को एक पेपर के तौर पर पढ़ाया जाता है। कुछ एकेडमी और अन्य संस्थाएँ भी उर्दू पत्रकारिता के छोटे-मोटे कोर्स चलाती हैं, लेकिन ये सब ज़रूरत से कहीं कम हैं।

ट्रेंड हाथ नहीं मिलते तो उर्दू मीडिया में मदरसों के छात्रों को काम पर रख लिया जाता है। ये वो लोग हैं जिन्हें पत्रकारिता की अलिफ़-बे भी नहीं मालूम होती। ज़ाहिर है कि इसका ख़मियाज़ा उर्दू पत्रकारिता को ही उठाना पड़ रहा है। बहुत-सी दिक्कतें ट्रेंड स्टाफ़ न होने की वजह से ही हैं। उर्दू अख़बारों में भाषा का भी मसला है। अख़बारों में इस्तेमाल हो रही भाषा में एकरूपता नहीं है। कुछ अख़बार अरबी-फारसी मिली गाढ़ी उर्दू और तो कुछ उर्दू के नाम पर हिन्दी लिख रहे हैं। अनुवाद की ग़लतियाँ तो ख़ैर उर्दू अख़बारों का मुकद्दर ही बन गयी हैं।

एक और मसला भी है। उर्दू मीडिया में तनख़्वाहें और तरक्की के मौक़े दूसरों से कम हैं। अच्छे पत्रकार उर्दू में नहीं जाना चाहते।जो जाते भी हैं वो भी मौक़ा पाते ही रास्ता बदल देते हैं। उर्दू, प्रेस, ग़रीब प्रेस है। रफ़त नईम सफवी ने क्या ख़ूब कहा है—

रद्दी भी सस्ती बिके, पाठक भी दो-चार
अपना जीवन हो गया, उर्दू का अख़बार

तकनीक की दृष्टि से उर्दू अख़बारों ने पिछले एक दशक में बड़ी तरक्की की है। किताबत और लीथो के दौर से निकलकर, उर्दू प्रेस में भी कम्प्यूटर और आफ़सेट का इस्तेमाल शुरू हो गया है। ज्यादातर बड़े अख़बार रंगीन हो गये हैं। टेलीप्रिंटर न्यूज एजेंसी भी हैं। इंटरनेट के इस्तेमाल से भी उर्दू में न्यूज़ कवरेज़ बेहतर हुआ है। लुक और ले आउट भी सुधरा है। लेकिन तरक्की की ये रफ़्तार अभी सुस्त ही है। आज तेज़ी से बदल रहे मीडिया उद्योग में बेहद कड़ी-क़रीबी और महँगी प्रतिस्पर्द्धा जारी है। डार्विन की थ्योरी यहाँ शत-प्रतिशत लागू है। यानी जो ताकतवर है, वही बचेगा। यहीं नहीं, ओवरआल क्वालिटी में कमी आयी है। दरअसल इलेक्ट्रानिक मीडिया के विस्तार के बाद अख़बारों की भूमिका बदल रही है। अब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अख़बार सिर्फ सूचना का माध्यम नहीं रहा। उसे ख़बर के निहितार्थ तक जाना होता है हर पहलू को खंगालना पड़ता है। नेशनल प्रेस ने इस सच्चाई को समझ लिया है। अँग्रेज़ी-हिन्दी के अख़बारों में तब्दीलियाँ देखी भी जा सकती हैं। यहाँ विश्लेषण और विचार का हिस्सा बढ़ रहा है। लेकिन जहाँ तक उर्दू अख़बारों का सवाल है, वो आमतौर पर अब भी पुराने ढर्रे पर ही चल रहे हैं। नतीजे में जिन्होंने न्यूज़ चैनल पर ख़बरें देख रखी हैं, उन्हें अख़बार में कुछ नया नहीं मिलता। इधर कुछ बड़े अख़बारों में इस कमी को दूर करने की जुस्तजू नज़र आयी है।

अब बात इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में उर्दू की हिस्सेदारी की। अभी ज्यादा वक़्त नहीं गुज़रा जब कर्नाटक में दूरदर्शन पर उर्दू न्यूज़ बुलेटिन शुरू होने पर बंगलूर में दंगा भड़क उठा था। लेकिन वक़्त के साथ हालात बदले। 2001 में ईटीवी ने उर्दू का पहला न्यूज़ चैनल शुरू किया। ये चैनल हर घण्टे ख़बरों का बुलेटिन देता है। सम-समायिक मुद्दों पर अलग से प्रोग्राम होते हैं। डीडी न्यूज़ पर भी उर्दू बुलेटिन आते हैं। लेकिन जबान और क्वालिटी का मसला यहाँ भी है। खासकर बुलेटिन और प्रोग्राम में मुस्लिम मुद्दे ही छाए रहते हैं। क़ब्रिस्तान की चहारदीवारी, वक्फ़ की संपत्ति पर नाजायज क़ब्ज़े या मुस्लिमों से जुड़ी संस्थाओं की सरकारी उपेक्षा की ख़बरें यहाँ भी खूब दिखाई जाती हैं। न एप्रोच में संजीदगी दिखती है, न पेशकश में नयापन और क्वालिटी।

ख़बरों के ट्रीटमेंट और पैकेजिंग में भी कमज़ोरी नज़र आती है। न असरदार एंकर हैं, न रिपोर्टर। लाइव मौकों पर कमज़ोरियाँ और दिख जाती है। डीडी न्यूज और सहारा का चौबीस घण्टे का उर्दू चैनल आने की ख़बर भी है। इससे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में उर्दू की हिस्सेदारी बढ़ेगी। स्वस्थ्य प्रतियोगिता शुरू भी होगी, जिससे अच्छे प्रोफ़ेशनल उर्दू मीडिया की ज़रूरत बनेंगे। तब शायद ऐसा न हो कि जो भी उर्दू बोल और समझ सकता है,उससे काम चला लिया जाए।

किस्सा मुख़्तसर ये कि आज उर्दू पत्रकारिता का हाल उर्दू से अलग नहीं। मीडिया क्रान्ति के इस युग में भी उर्दू पत्रकारिता की डगर मुश्किल है। उसे अब भी अपने पुराने रवैये और तेवर की तलाश है। अच्छी बात ये है कि इस दिशा में कोशिशें तेज़ हुई हैं। अख़बारों में भी बदलाव आ रहे हैं, और उर्दू पढ़ने वालों में उर्दू मीडिया को लेकर सोच सकती है। उर्दू चैनल भी देखे जाते हैं, और उर्दू अख़बारों को शौक और फ़र्क के साथ अपनाया जा रहा है। अब बड़े घरों के ड्राईंगरूम जहाँ पहले अँग्रेज़ी अख़बार दिखते थे, अब उर्दू अख़बार और रिसाले नज़र आते हैं। ये कुछ किरणें हैं जो उम्मीद जगाती हैं। हालात बदलें, इसके लिए कोशिशें अन्दर से ही करनी होंगी। वक़्त के तकाज़ों को समझते हुए, उर्दू पत्रकारिता को आधुनिक तौर-तरीकों से लैस होना होगा। यह हुआ तो पाठक-दर्शक वर्ग ही नहीं आर्थिक स्रोत भी खुद-बखुद बढ़ जाएँगे।

96-बी-3, अरावली, सेक्टर-34, नोएडा

ज़माना ई-बज़्म का

मनीषा कुलश्रेष्ठ

मता-ए-लौहो-क़लम छिन गयी तो क्या ग़म है/ कि ख़ूने-दिल में डुबो ली हैं उँगलियाँ मैंने/ ज़बाँ पे मुहर लगी है तो क्या, कि रख दी है/ हर एक हल्क़-ए-जंजीर में ज़बाँ मैंने

— फैज़ अहमद फैज़

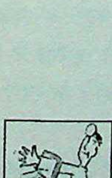

इन्टरनेट

क़लम और काग़ज़ की पूँजी तो नहीं छिनी है, मगर माध्यम आश्चर्यजनक तौर पर बदल चुके हैं। किताबें, काग़ज़, ख़त और स्याही की ख़ुशबू लोग भूलने लगे हैं। हर चीज़ 'ई' से जा जुड़ी है। ई-मेल, ई-पत्रिका, ई-बज़्म। ज़माना ही 'इन्फोटेन्मेंट' का है। बन्दिशों, पाबन्दियों, बदलावों का तोड़ शायर लेखक जानते रहे हैं। लातिन अमेरिका का 'जादुई यथार्थवाद' जबाँ पे मुहर का ही जवाब था, जो जंज़ीरों को जबाँ देता मालूम पड़ता था।

एक दौर ऐसा भी था जब हर छोटे-बड़े शहर में मुशायरे हुआ करते थे और वहाँ गंगा-जमनी तहज़ीब की धारा बहा करती थी। न केवल शहर के शायर पसन्द लोग वहाँ इकट्ठा हुआ करते थे बल्कि व्यवसायियों से लेकर, उस शहर के सरकारी महक़मों के अधिकारियों, मुलाज़िमों की भीड़ भी जुटा करती थी। मैंने देखा है वह दौर, बल्कि मुशायरों और कवि-सम्मेलनों के उस दौर की गुज़रती हुई परछाईं-सी देखी है। जब एक छोटे से कस्बे के निमन्त्रण पर भी बड़े शायर और कवि बाख़ुशी आ जाया करते थे। मेरी माँ राजस्थान के एक छोटे शहर के सीनियर सेकेण्ड्री स्कूल की प्रिन्सीपल हुआ करती थीं और हमें स्कूल में ही आवास आवंटित था। शहर के तमाम मुशायरे वहीं के बड़े हॉल में हुआ करते थे। मेरी माँ और पापा दोनों को मुशायरों का चाव था, हम भी ज़िद करके जा टिकते थे ठण्डी, सफ़ेद चादरों से ढँके गद्दों और मसनदों पर। बच्चे ही थे हम भी, नींद आती तो वहीं सो जाते। उन मुशायरों में पहले तो 'इरशाद' और 'वाह जनाब' ही समझ आता था, मगर धीरे-धीरे आसान उर्दू समझ आने लगी, फिर शेरों का मतलब भी... तो जाग कर पूरा मुशायरा सुनने लगे।

न अब वह दौर रहा, न वे सुनाने वाले रहे, न वे सुनने वाले ही। दोनों तरफ़ से रुख़ पलट गये।

देवनागरी में अब अच्छी ग़ज़ल पढ़ने को भी कम ही मिलती है। उर्दू सीखने की चाह बस चाह ही रह गयी। इंटरनेट पर देवनागरी में 'उर्दू साहित्य' के नाम से खोज करने पर मनचाहे परिणाम तो नहीं मिलते, पर दिल बहलाने भर को बहुत कुछ मिल जाता है।

आरम्भ में उर्दू हिन्दुस्तानी और फारसी भाषा का मिश्रित और आसान वर्नाक्यूलर स्वरूप थी, जिसने बाद में एक स्वतन्त्र और समृद्ध भाषा का दर्जा प्राप्त किया। हिन्दी और उर्दू भाषाओं को इसीलिए मौसेरी बहनें कहा गया है। उर्दू भारत के कई हिस्सों में बोले जाने वाली भाषा है। उर्दू साहित्य अनूठा और विस्तृत है। संस्कृत की तरह भारत में उर्दू का संरक्षण भी हमारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गंगा-जमनी संस्कृति के लिए ज़रूरी हो चला है। उर्दू का महान साहित्य भी हमारे लिए उतने ही महत्त्व का है जितना कि संस्कृत में उपलब्ध महान साहित्य। आख़िर मीर, ग़ालिब, दाग़, ज़ौक, फ़िराक़, मजाज़, साहिर की सरज़मीं रहा है हिन्दुस्तान। मगर अफ़सोस यही है कि हम सभी उर्दू ज़बाँ की मिठास को सराहते हैं, मगर उर्दू लिपि न लिखना न पढ़ना जानते हैं। इसके लिए हमें देवनागरी में लिखी उर्दू की किताबों की दरकार रहती है।

उर्दू लिखने और पढ़ने वालों के लिए इंटरनेट पर उर्दू साहित्य की उपलब्धता बहुत मायने रखती है, मगर यहाँ भी भाषाई-तकनीकी विकास विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में बहुत कम हुआ है। मीर, ग़ालिब, दाग़ के कलाम को कौन उर्दू भाषी या उर्दू प्रेमी चाहेगा कि इंटरनेट पर अनुवाद के रूप में पढ़े। क्योंकि उर्दू ज़बान की मिठास का कोई एक स्वाद है, बल्कि हज़ार स्वाद हैं! यहाँ एक ही अहसास के लिए सैंकड़ों शब्द हैं और एक ही भावना को कई तरह से व्यक्त किया जा सकता है। और तो और बिना शब्द बदले केवल बोलने मात्र के ढंग से या पंक्चुएशन बदल देने से जहाँ पूरे शेर का मतलब ही बदल जाता हो, वहाँ अनुवाद एक फीकी, स्वाद रहित चीज़ है।

ऐसे में हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को उनकी मूल सांस्कृतिक तथा साहित्यिक विरासत कैसे सौंपेंगे? हमारी नयी पीढ़ी जो किताबों से दूर जा रही है और जिनके लिए मनोरंजन व ज्ञान का माध्यम आजकल 'इन्फोटेनमेन्ट' है। इसके लिए ज़रूरत है कि उर्दू-हिन्दी साहित्य अपने मूल स्वरूप में, अपनी मूल लिपियों में भी इंटरनेट पर उपलब्ध हों, जिन्हें आसानी से खोजा जा सके, पढ़ा जा सके, डाउनलोड किया जा सके।

अँग्रेज़ी पढ़ने वालों में भी जितने ग़ालिब मशहूर हैं, उतने हिन्दी के कबीर भी। दोनों को अँग्रेज़ी में बहुतायत में इंटरनेट पर पाया जा सकता है, मगर हिन्दी या उर्दू में बहुत कम। इंटरनेट पर विकीपीडिया में तथा अन्य कुछ वेबसाइट्स पर अँग्रेज़ी या देवनागरी में मीर, नज़ीर, आतिश, सिराज, दाग़, इंशा, बहादुरशाह ज़फ़र और ज़ौक का परिचय और कुछ कृतियाँ अवश्य मिल जाती हैं। हम देवनागरी में उर्दू पढ़ने वालों के लिए बीबीसी हिन्दी पर उर्दू शायरों तथा साहित्यकारों पर लेख छपते रहते हैं। शमा ज़ैदी का लेख 'मजाज़ : कुछ अनछुए पहलू' और गोपीचन्द नारंग की मंटो पर बातचीत 'मंटो पैदाइशी अफ़सानानिग़ार थे' तथा मजाज़ पर बातचीत 'मजाज़ रूमानी और प्रगतिशील दोनों थे' उल्लेखनीय हैं। उर्दू शायर की ख़ुशबू से भरे कई ब्लॉग्स भी इंटरनेट पर हैं, उनमें से ख़ास हैं— www.khushbu.htm और www.ebazm.com

भारतीय साहित्य संग्रह नामक वेबसाइट pustak.org पर उर्दू साहित्य की पुस्तकें देवनागरी में उपलब्ध हैं। अँग्रेज़ी में ऑनलाईन उर्दू क्लासेज़ भी इंटरनेट पर बहुतायत में उपलब्ध हैं। हिन्दी में यह कोशिश अभी नाकाफ़ी है। हालाँकि उर्दू-हिन्दी शब्द कोश इंटरनेट पर उपलब्ध है और www.geocities.com पर उर्दू-अँग्रेज़ी डिक्शनरी भी उपलब्ध है।

आजकल कम्प्यूटर तकनीकी में उल्लेखनीय उपलब्धि यह हुई है कि आज इंटरनेट उपभोक्ता को उसकी अपनी भौगोलिक रिहायश को दिमाग़ में रखकर उसकी अपनी भाषा में इंटरनेट पर सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, इसके लिए हर देश के विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों या इलाक़ों तक का ख़्याल रखा जा रहा है। इंटरनेट पर उपभोक्ता की अपनी भाषा में सामग्री की खोज, या अन्य सॉफ्टवेयर्स का उपलब्ध होना ज़्यादा से ज़्यादा उपभोक्ताओं को इंटरनेट की तरफ़ आकर्षित कर रहा है। हर देश के लाखों कम्प्यूटर वैज्ञानिक इसी कोशिश में दिन-रात एक कर रहे हैं। कम्प्यूटर पर काम करने या इंटरनेट पर अपनी रुचि और ज़रूरत के अनुसार सामग्री खोजने के लिए आज अँग्रेज़ी जानना क़तई ज़रूरी नहीं है। यह बात जापानी, चीनी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, इतालवी, स्पेनी, कोरियाई तथा अन्य भाषाओं पर तो एक दशक से लागू हो चुकी थी, अरबी, फारसी इनके पीछे थीं। लेकिन भारत की दोनों मुख्य भाषाओं हिन्दी-उर्दू दोनों का हाल एक ही सा रहा है, यानी इन भाषाओं में उपलब्ध वेबसाइट्स का आँकड़ा और उनका तकनीकी स्तर नीचे ही रहा है। यह कहना ग़लत न होगा कि हिन्दी उर्दू से पीछे ही रही है।

इंटरनेट वर्ल्ड स्टेट की मानें तो इंटरनेट उपभोक्ताओं में अँग्रेज़ी केवल 29.7 प्रतिशत उपभोक्ताओं की ही प्राथमिक भाषा है, और वर्ष 2000 से लेकर 2006 तक इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में इजाफ़ा अगर हुआ है तो उनमें अँग्रेज़ी बोलने, लिखने, पढ़ने वाले कम हैं, रूसी, पुर्तगाली, और चीनी भाषी अधिक हैं। इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में बढ़ोतरी वाले क्षेत्र हैं अफ्रीका, मिडिल ईस्ट, लातिन अमरीका और ये भी अँग्रेज़ी भाषा भाषी क्षेत्र नहीं हैं।

आजकल अगर आप गूगल के होमपेज़ पर या अन्य महत्त्वपूर्ण खोजी पोर्टलों पर जाते हैं तो वहाँ उपभोक्ता के पास अपनी भाषा चुनने के लिए बहुत सारी भाषाओं में खोज का प्रावधान मिलता है। ब्राउज़ करो और अपनी भाषा चुन लो।

दक्षिण एशिया में भी इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में उल्लेखनीय इजाफ़ा हुआ है, लेकिन उर्दू और हिन्दी में अपेक्षाकृत कम वेबसाइट देखने को मिलती हैं, उस पर गम्भीर साहित्यिक सरोकारों वाली वेबसाइट्स और भी कम। हालाँकि हिन्दी ही की तरह बीबीसी और विकीपीडिया ने उर्दू को, उर्दू के साहित्य को अपनी वेबसाइट्स में शामिल किया है जो कि एक बड़ा क़दम है मगर फिर भी... उर्दू भाषी भी हिन्दी भाषियों की तरह महसूस करते हैं कि यह प्रयास महज़ खानापूर्ति-सी है। उर्दू भाषियों की संख्या को देखते हुए यह प्रयास उम्मीद से बहुत ही कम है।

उर्दू की भी फोण्ट को लेकर अपनी समस्या है। यहाँ भी यूनिकोड ने यूनिवर्सल फोण्ट की तरह मोर्चा सँभाल लिया है, जो इंटरनेट उपभोक्ता के लिए बहुत बड़ी सुविधा है कि बिना किसी ख़ास तरह के सॉफ्टवेयर के उर्दू को कम्प्यूटर पर लिखा और पढ़ा जा सकता है। लेकिन उर्दू के पाठकों का कहना है कि टैक्स्ट पढ़ने में असुविधा यूनिकोड के साथ भी है।

हिन्दी ही की तरह शब्दावली और भाषावली की समस्या में उर्दू भी उलझी है, तकनीकी भाषावली में शुमार होते नये-नये शब्दों को उर्दू में अनूदित करना दुष्कर काम है, क्योंकि दूसरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषाओं की तरह बोले जाने वाली उर्दू और साहित्यिक उर्दू में बहुत बड़ा फ़र्क है। एक आम उर्दू भाषी के लिए ख़ास तौर पर इंटरनेट सर्फिंग में 'लिंक' के लिए 'रवाबत' का इस्तेमाल होता है जो कि आम लोगों के सर के ऊपर से गुज़र जाता है। हिन्दी में भी लिंक को 'कड़ियाँ' कहा जाता है जो कि बहुत 'कनफ़्यूज़िंग' है। तो लिंक को लिंक ही क्यों न रहने दिया जाए?

यहाँ केवल तकनीकी दक्षता ही नहीं काम आती, बल्कि उर्दू में इस्तेमाल हो रही तकनीकी शब्दावली से उर्दू में भी भय खाते हैं लोग। हालाँकि एक आम इंटरनेट यूज़र और उपलब्ध सामग्री के बीच जो खाई है, उसे पाटने के लिए थोड़े और समय की दरकार तो है ही।

फिर भी मैं उन वेबसाइट्स का ज़िक्र यहाँ करना चाहूँगी जिन पर उर्दू शायरी और उर्दू साहित्य अपने मूलपाठ के तौर पर और अनूदित स्वरूप दोनों में उपलब्ध है—

www.pakdata.com/ghalib
www.eurdubazaar.com
www.urdupoetry.com
www.poetryportal.com

द्वारा विंग कमाण्डर ए के कुलश्रेष्ठ
218/ 2,2 एरिया, वायुसेना स्टेशन
खेरिया, आगरा-282008

आने वाली नस्लें तुम पर रश्क़ करेंगी

विभूति नारायण राय

फ़िराक़

कुछ लोग अपने जीते जी किंवदन्ती बन जाते हैं। उन्हीं के लिए उनकी उपस्थिति में ही कहा जाता है— द मैन एण्ड द लीजेण्ड। फ़िराक़ गोरखपुरी भी ऐसे ही एक व्यक्तित्व थे। अपने साहित्य के अतिरिक्त वे अपने जीवन से जुड़ी झूठी-सच्ची घटनाओं के कारण भी चर्चा में बने रहे। उन्हें नज़दीक से जानने वाले जानते हैं कि अपने बारे में बहुत-सी अफ़वाहें फ़िराक़ साहब ने ख़ुद ही फैलाई थीं। इसीलिए कई बार यह तय करना बहुत मुश्किल हो जाता है कि उनमें से कितना सच है कितना झूठ। कई जगह बड़े विश्वास के साथ कहे जाने या लिखे होने के बावजूद इसे मानने में दिक़्क़त होगी कि फ़िराक़ साहब ने आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी या वे पं. जवाहर लाल नेहरू के निजी सचिव थे या उनके बेटे ने उनकी समलैंगिक आदतों के कारण आत्महत्या कर ली या इसी तरह और भी बहुत कुछ।

फ़िराक़ के व्यक्तित्व पर उर्दू में बहुत कुछ लिखा गया है पर दुर्भाग्य से हिन्दी में उनकी शायरी तो लगभग पूरी उपलब्ध है लेकिन उन पर बहुत कम लिखा गया है। इसी कमी को कुछ हद तक रमेश चन्द्र द्विवेदी की 2006 में प्रकाशित किताब 'यूँ ही फ़िराक़ ने उम्र बसर की' पूरा करती है। रमेश ने एक लम्बा वक़्त फ़िराक़ साहब के साथ उनके घर में बिताया था। इसमें काफ़ी अरसा उनका परिवार भी साथ रहा था। मुझे भी फ़िराक़ साहब के इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पीछे बैंक रोड वाले आवास पर बहुत-सी शामें गुज़ारने का मौक़ा मिला है। हालाँकि उन दिनों रमेश से कभी मुलाक़ात नहीं हुई, पर फ़िराक़ साहब के यहाँ नियमित आने वाले उनका ज़िक्र हमेशा करते थे।

नज़दीकी के अपने फ़ायदे हैं तो नुकसान भी। क़रीब से देखने के कारण रमेश ने फ़िराक़ के व्यक्तित्व के वे पहलू उद्घाटित किये हैं जो दूर से देखने वाले से छूट जाते। 'यूँ ही फ़िराक़ ने उम्र बसर की' में फ़िराक़ एक शायर से अधिक व्यक्ति के रूप में उपस्थित हैं। वह व्यक्ति दुनिया भर में एक बड़े शायर के रूप में प्रतिष्ठित है और इसकी आम पहचान एक बड़बोले, मुँहफट और बहिर्मुखी इंसान की है। कॉफी हाउस या अपने घर की बैठकों में लोगों को अपनी हाज़िरजवाबी और विनोद प्रियता से निरुत्तर करता रहता है। मीडियाकिरी से इसे सबसे अधिक चिढ़ है। पर यह ख़ुशमिज़ाज इंसान अन्दर से कहीं बहुत अकेला भी है। शामें किसी को ढूँढ़ती हैं आज भी फ़िराक़... अगर शाम को कोई नहीं आता तो छटपटाने लगता है। बार-बार छले जाने के बावजूद लोगों पर यक़ीन करता है, शायद इसलिए कि उनका साथ खोने से डरता है। यह इंसान जो बज़ाहिर मीडियाकिरी से नफ़रत करता है, एक से एक मीडियाकर लोगों से घिरा रहता है, वह भी शायद इसीलिए कि ये लोग उसे अकेलापन बाँटने में मदद करते हैं।

'यूँ ही फ़िराक़ ने उम्र बसर की' पढ़ते हुए मुझे फ़िराक़ के व्यक्तित्व के उस बड़प्पन की याद आयी, जिसका ज़िक्र किताब में भी ख़ूब आता है। विश्वविद्यालय में मेरा और मेरे मित्रों— कृष्ण प्रताप, दिनेशकुमार शुक्ल, रामजी राय, देवी प्रसाद त्रिपाठी वग़ैरह के अन्तिम वर्षों की वे शामें स्मृति में कौंध जाती हैं जो हमने फ़िराक़ के सान्निध्य में बिताई थीं। हम लोग प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे— दिन भर पढ़ते और शाम को फ़िराक़ साहब के बैंक रोड स्थित मकान पर चले जाते। फ़िराक़ को सुनना जीवन का सबसे बड़ा सुख था। साहित्य, समाज, भाषा, धर्म, दुनिया जहान का कोई विषय नहीं था जिस पर फ़िराक़ अधिकार से नहीं बोलते। हम उनके मुँह से निकले एक-एक शब्द को पीते रहते। उन दिनों छात्रावासों में मेस साढ़े आठ-नौ बजे रात के आसपास बन्द हो जाते। आठ बजे तक तो सब कुछ

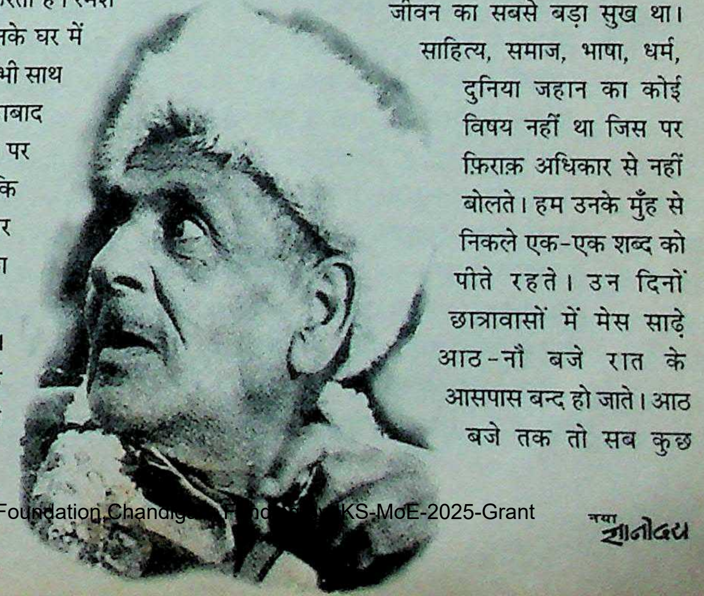

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funded by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठीक-ठाक रहता। हम पूरे दत्त चित्त होकर उन्हें सुनते। आठ बजे शरारत सूझती। हममें से कोई उन्हें चिढ़ा देता। उन्हें चिढ़ाना भी बहुत आसान था। किसी हिन्दी लेखक की तारीफ़ कर दीजिए और काम बन गया। फ़िराक़ माँ-बहन की गाली पर उतर आते। महादेवी मेरे घर कमोड साफ़ करने लायक भी नहीं है। पन्त से मैं झाड़ू भी नहीं लगवा सकता... वग़ैरह वग़ैरह। हमें भाग जाने का हुक़्म मिलता और हम सरपट भागते। उनके बंगले के बाहर निकलकर पेट पकड़-पकड़कर हँसते और अपने-अपने छात्रावासों में आकर दम लेते। दूसरे दिन शाम को फिर पूरी गम्भीरता ओढ़े हुए हम फ़िराक़ के घर में प्रवेश करते और फिर वही क़िस्सा दुहराया जाता। आज सोचता हूँ तो अजीब लगता है कि फ़िराक़ का पासंग भी कोई दूसरा लेखक हमें ऐसी हरक़त पर दूसरे दिन अपने घर में घुसने नहीं देता पर फ़िराक़ हर शाम पिछली भुलाकर नये सिरे से शुरू कर सकते थे। यही उनका बड़प्पन था।

रमेशचन्द्र द्विवेदी फ़िराक के नज़दीकी थे, इसलिए 'यूँ ही फ़िराक़ ने उम्र बसर की' में हमें बहुत क़रीब से फ़िराक़ को देखने का मौक़ा मिलता है, लेकिन फ़िराक़ के जीवन के वे सारे प्रसंग नहीं मिलते जो उनसे जुड़े लोगों को आमतौर से मालूम हैं और जिनसे फ़िराक़ की एक मुकम्मल तस्वीर बनती है। ये फ़िराक़ के कमज़ोर क्षणों के हैं। अपनी पत्नी के साथ उनका व्यवहार, अपनी संतानों को लेकर उनके व्यक्तित्व के विचलन, अपने समकालीनों के प्रति उनके दुराग्रह, धन के प्रति उनका दृष्टिकोण— बहुत कुछ ऐसा है जो फ़िराक़ को उस ऊँचाई से थोड़ा नीचे लाता है जिस पर रमेश ने उन्हें पहुँचाया है। अगर वे इन सब पर भी लिखते तो भी फ़िराक़ कोई छोटे इंसान नहीं साबित होते। इन कमज़ोरियों को मिलाकर जो तस्वीर बनती, वह हाड़ मांस के किसी प्यार किये जाने योग्य इंसान की ही होती।

फ़िराक़ ने कहीं लिखा था कि आने वाली नस्लें तुम पर रश्क़ करेंगी हमअसरों, जब उनको ये ख़याल आएगा कि तुमने फ़िराक़ को देखा था। यह कोई गर्वोक्ति नहीं है। अपनी ज़मीन पर मजबूती से खड़ा और अपनी परम्परा में रचा बसा कोई प्रौढ़ शायर ही इतने विश्वास से यह कह सकता है।

5/14, पुलिस इन्कलेव, विभूति खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ

ग़ालिब और ग़दर

पंकज पराशर

ग़ालिब

यूँ तो उर्दू शायरी में दर्दो-ग़म के लिए बारहा मीर को याद किया जाता है—'नवाए मीर सुनाओ बहुत उदास है रात', लेकिन ग़ालिब ने जिस दौर में यह लिखा था कि 'तज़किरा देहलि-ए-मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़' के वह उस देहली की बात है जो अँग्रेज़ों की चढ़ाई और आज़ादी की लड़ाई के रहनुमा आख़िरी मुग़ल बादशाह की बेदस्तोपाई पर आँसू बहा रही थी। मिर्ज़ा ग़ालिब की अज़मत की पहली पहचान 'यादगारे ग़ालिब' में पुरकशिश लहज़े में मौलाना हाली ने की है। वे 'यादगारे ग़ालिब' में लिखते हैं, ''ग़दर के ज़माने में मिर्ज़ा देहली से, बल्कि घर से भी बाहर नहीं निकले। ज्यों ही बग़ावत का उपद्रव उठा, उन्होंने घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया और एकान्त कक्ष में ग़दर के हालात लिखने शुरू किये। हालाँकि देहली-विजय के बाद महाराजा पटियाला की तरफ़ से स्व. हक़ीम महमूद ख़ाँ और उनके पड़ोसियों के मकान पर, जिनमें एक मिर्ज़ा ग़ालिब भी थे, सुरक्षा के लिए एक पहरा बैठ गया था। इसलिए वे विजयी सिपाहियों की लूट-खसोट से सुरक्षित रहे। मगर फिर भी उनको तरह-तरह की तक़लीफ़ें उठानी पड़ीं।''

सन् 1857 की जनक्रान्ति के दौरान मिर्ज़ा ग़ालिब कई तरह की मुश्किलों से होकर गुज़रे। अपने इस तजुर्बे को मिर्ज़ा ने 11 मई 1857 से लेकर 31 जुलाई 1858 तक एक डायरी में फ़ारसी भाषा में लिखा जो बाद में 'दस्तंबू' नामक किताब के रूप में छपी। यह देखना बेहद दिलचस्प है कि ग़ालिब की यह डायरी जब छपकर आयी तो वह उर्दू गद्य की ऐसी मेयार-ए-नस्र बन गयी जिसके नक़्श-ए-क़दम पर बाद के उर्दू अदीब चलते रहे। निराला ने दुःख गझिन होने पर अपनी कविता में कहा था, 'हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण में गया हार' या 'मरा हूँ हज़ार मरण।' ग़ालिब ग़दर के वक़्त किन हालात से गुज़र रहे थे, मुलाहिज़ा फरमाएँ, ''मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।'' 1857 के ग़दर के हालात को जिस तरह मिर्ज़ा ने दर्ज़ किया है, उससे उनकी वाबस्तगी के साथ-साथ चश्मदीदगी का पता भी चलता है। अपने एक दोस्त को लिखे ख़त में उस वक़्त की दिल्ली और उससे मुतास्सिर ख़ुद के हालात को बयान करते हुए मिर्ज़ा फरमाते हैं, ''पूछो के ग़म क्या है? ग़म-ए-मर्ग, ग़म-ए-फ़िराक़, ग़म-ए-रिज़्क, गम-ए-इज़्ज़त?'' क्या-क्या नहीं झेलना पड़ा उन्हें। ख़त में आगे लिखते हैं, ''हक़ीक़ी मेरा एक भाई दीवाना होकर मर गया। उसकी बेटी, उसके चार बच्चे, उनकी माँ यानी मेरी भावज जयपुर में पड़े हैं। इस तीन बरस में एक रुपया उनको नहीं भेजा। भतीजी क्या कहती होगी कि मेरा भी एक चचा है। जहाँ अगनिया (संपन्न) और उमरा के अजवाज (पत्नियाँ) व औलाद भीक माँगते फिरें और मैं देखूँ। इस मुसीबत की ताब लाने को जिग़र चाहिए।''

ग़ालिब की आँखों के सामने ग़ालिब की दिल्ली बदल रही थी। उनके दोस्तों को बरतानवी हुक़्मरानों के द्वारा मारा-पीटा जा रहा था, फाँसी पर चढ़ाया जा रहा था और वतन से बेवतन किया जा रहा था। यह तसव्वुर ही दिल को झकझोरकर रख देती है कि ग़ालिब यह सब झेल रहे थे और ख़ुद को बेगुनाह साबित करने के लिए ब्रिटिश हुक़्मरानों की जी-हजूरी कर रहे थे। कभी ग़ालिब ने बहुत फ़ख़्र से कहा था कि, ''सौ पुश्त से है पेशा-ए-आबा सिपहगरी'' उन्हीं ग़ालिब को हालात ने यह लिखने को मजबूर कर दिया, 'वो ताब ओ मज़ाल वो ताक़त नहीं मुझे।'... और इसी मनोदशा को ग़ालिब अपनी डायरी 'दस्तंबू' में कुछ यों कलमबन्द

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते हैं, ''इन दिनों हमलोग क़ैदियों की मानिन्द ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं और यह हक़ीक़त है कि हमलोग किसी क़ैदख़ाने में पड़े हुए हैं। कोई शख़्स हमसे मिलने नहीं आता और न ही हम तक किसी की कोई ख़बर पहुँचती है। हम अपनी गली छोड़ नहीं सकते। इसीलिए हम यह जानने से महरूम हैं कि हमारी आँखों के सामने क्या कुछ हो रहा है? वाकई हमारे कान बहरे हैं आँखें अंधी।'' मुमकिन है कि 'जहाँनुमा' के हालात-ए-हाजरा पर जब किसी ख़त में वे किसी दोस्त से गुफ़्तगू नहीं कर सके होंगे, तभी यह लिखा होगा—

''कोई उम्मीदवर नज़र नहीं आती कोई सूरज नज़र नहीं आती,

आगे आती थी हाल-ए-दिल पे हँसी अब किसी बात पे नहीं आती।''

हँसी नहीं आने के कारण या कहिए अत्यधिक संवेदनशीलता के कारण मीर (कुछ दिनों तक) पागल हो गये थे। हर संवेदनशील रचनाकार के साथ यह वाक़या पेश आता रहा है— मीर, निराला, काज़ी नजरूल इस्लाम, मंटो, ब्रेख़्त, भुवनेश्वर-दुनियावी पाखण्ड को बर्दाश्त न कर सकने और समझौतावादी रुख़ अख़्तियार करने से इनकार करने के कारण पागल हो गये। लेकिन मिर्ज़ा ग़ालिब पागल नहीं होने के लिए अभिशप्त थे। मीर के पिता सूफ़ी थे और उन्हें विरासत में विदेहवादी संस्कार मिला था जबकि ग़ालिब, मीर के मुक़ाबले भौतिक दुःखों से ज़्यादा संतप्त रहे।

ग़ालिब के जीवन की एक घटना बेहद दिलचस्प और चर्चित है। एक रोज़ कुछ गोरे सैनिक मिर्ज़ा के मकान में घुस आये थे। राजा के सिपाहियों ने बहुत रोका, मगर उन्होंने कोई दया नहीं की। ग़ालिब अपनी डायरी 'दस्तबूं' में लिखते हैं, ''उन्होंने अपनी शराफ़त के कारण घर के असबाब को बिलकुल नहीं छेड़ा, मगर मुझे मय चन्द पड़ोसियों के कर्नल ब्राउन के सामने, जो मेरे मकान के क़रीब हाजी कुतुबुद्दीन सौदागर के घर में ठहरे थे, ले गये। कर्नल ने बहुत नरमी और इनसानियत से हमारा हाल पूछा, और हमको विदा कर दिया।'' मिर्ज़ा ने हालाँकि यह मुआमला चन्द अल्फ़ाज में निवत्ता दिया है लेकिन सच्चाई यह है कि मिर्ज़ा जब कर्नल ब्राउन के सामने गये तो बेहद दिलचस्प वाक़या पेश आया। वे जब कर्नल ब्राउन के सामने गये तो उस वक़्त एक विशेष पगड़ी उनके सिर पर थी जो आमतौर पर तत्कालीन मुसलमान नहीं पहनते थे, या कहें नहीं के बराबर— पहना करते थे। मिर्ज़ा का नया ढंग देखकर कर्नल ने इनसे सवाल किया, ''वेल, तुम मुसलमान?'' मिर्ज़ा ने तुरन्त कहा, 'आधा।' कर्नल ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, ''इसका क्या मतलब?'' मिर्ज़ा ने अगले ही पल जवाब दिया, ''जनाब, शराब पीता हूँ, सूअर नहीं खाता।'' कर्नल यह सुनकर हँसने लगा। फिर हँसते हुए पूछा कि, ''तुम सरकार की फ़तह के बाद पहाड़ी पर क्यों हाज़िर नहीं हुए?'' मिर्ज़ा ने कहा, ''मैं चार कहारों का अफ़सर था, वे चारों मुझे छोड़कर भाग गये। मैं क्योंकर हाज़िर होता?'' उसके बाद निहायत मेहरबानी से मिर्ज़ा और उनके तमाम साथियों को कर्नल ने विदा कर दिया। सच यही है।

11 फरवरी, 1856 को अँग्रेज़ों ने नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से उतार करके कलकत्ता में मटिया बुर्ज में नज़रबन्द कर दिया। 10 जुलाई, 1856 को बादशाह के सबसे बड़े बेटे तथा उनके वारिस मिर्ज़ा फ़ख़रू की मौत हो गयी। मतलब 1856 में मिर्ज़ा ग़ालिब के दोनों सहारे ख़त्म हो गये। इसके अगले वर्ष मई 1857 में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया जिसकी वज़ह से 80 साला, नाममात्र के बादशाह-बहादुर शाह ज़फ़र पर मुक़दमा चला और उन्हें रंगून भेज दिया गया— जहाँ उन्हें इन्तक़ाल के बाद दो ग़ज ज़मीं भी न मिली कुए यार में। बादशाह ज़फ़र के सबसे छोटे बेटे ख़िज़र सुलतान मेजर हडसन की गोली के शिकार बन गये। यह तथ्य तो अब जगज़ाहिर है कि 1857 की क्रान्ति में स्वतन्त्रता सैनिकों द्वारा अँग्रेज़ी शासन का कार्यालय भी लूट लिया गया। इसके बाद हिन्दुस्तान की जो हालत हो गयी थी उसके कारण मिर्ज़ा का 'पिंसन' भी बन्द हो गया। उनकी बेगम उमराव ने हिफ़ाज़त के ख़याल से अपने सारे गहने-ज़ेवर, क़ीमती कपड़े और बाक़ी दूसरी चीज़ें ग़दर के दिनों में काले मियाँ के यहाँ रखवा दिया था। सोचा था कि काले मियाँ फ़कीर और पीर हैं, इस वज़ह से सारा सामान उनके यहाँ बिलकुल महफ़ूज रहेगा। मगर ग़दर में स्वतन्त्रता-सैनिकों की शिकस्त के बाद अँग्रेज़ों द्वारा काफ़ी योजनाबद्ध तरीके से दिल्ली की जो लूटमार की गयी, उसमें बदकिस्मती से काले मियाँ का घर भी बच नहीं सका। वह भी लूट गया। मतलब की बदकिस्मती से जो कुछ चीज़ें बाक़ी बच गयी थी, वह भी हाथ से चली गयी।

इसके बाद तो ग़ालिब अपनी गृहस्थी और औलादों से भी मुँह चुराने लगे और तय यह किया कि पत्नी उमराव बेग़म को लोहारू भेज दिया जाए और ख़ुद देहली में तन्हा रहें। कारण यह था कि लोहारू स्टेट से उन्हें पचास रुपया माहवार मिलता था, सो इतने में वहाँ रहकर उनकी बीवी-बच्चे का गुज़ारा हो जाने का इमकान था। अन्त में तय यह किया कि सबको लोहारू भेज देने के बाद मिर्ज़ा भी दिल्ली छोड़कर कहीं और जाएँगे। लेकिन रामपुर के नवाब फ़िरदौस मकान से ख़ुसूसी तआल्लुक होने के कारण कुछ और ही हुआ। हुआ यह कि बचपन के दिनों में जब नवाब रामपुर तालीम के सिलसिले में दिल्ली आये हुए थे, उस वक़्त वे ग़ालिब साहब से फारसी पढ़ते थे। 1857 में रामपुर के तख़्त पर युवा नवाब फ़िरदौस तख़्तनशी हुए। चूँकि ग़ालिब बीबी बच्चों को लोहारू भेजने के बाद दिल्ली छोड़ने का इरादा तकरीबन पक्का कर चुके थे, तभी उनके दोस्तों

मिर्ज़ा का नया ढंग देखकर कर्नल ने इनसे सवाल किया, ''वेल, तुम मुसलमान?'' मिर्ज़ा ने तुरन्त कहा, 'आधा।' कर्नल ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, ''इसका क्या मतलब?'' मिर्ज़ा ने अगले ही पल जवाब दिया, ''जनाब, शराब पीता हूँ, सूअर नहीं खाता।''

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने उन्हें यह राय दी कि क्यों नहीं वे नवाब रामपुर को अपने हाल के बारे में लिखते हैं? दोस्तों का यह मशविरा ग़ालिब को ठीक ही लगा और उन्होंने तत्काल एक ख़त लिखकर रवाना किया। ग़ालिब के इस ख़त का नवाब रामपुर ने तुरन्त जवाब दिया। 16 जुलाई 1859 को उन्होंने ख़त लिखकर मिर्ज़ा को यह इत्तला भिजवाई की उन्हें सौ रुपये माहवार बिला-नागा मिलता रहेगा। नवाब रामपुर द्वारा तयशुदा यह रकम मिर्ज़ा को ता-उम्र मिलती रही। मुफ़लिसी में जो उन्होंने लिखा था,

'अब इस मामूर-ए-क़हत-ए-ग़म-ए-उल्फ़त है, हमने यह माना कि दिल्ली में रहें, पर खाएँगे क्या?' उसका इन्तज़ाम हो गया था और नवाब रामपुर के इस ख़त के मिलने के बाद ग़ालिब दिल्ली में ही बने रहे। फ़िलवक़्त उनकी पैसे की मुश्किलें दूर हो गयीं।

8 सितम्बर 1857 को अँग्रेज़ों ने दोबारा दिल्ली पर क़ब्ज़ा ज़मा लिया। याद रहे कि 11 मई 1857 को स्वतन्त्रता-सैनिकों ने दिल्ली पर कब्ज़ा जमा लिया था लेकिन चार महीने तक चले लम्बे संघर्ष के बाद अन्ततः अँग्रेज दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने में क़ामयाब हो गये। 1857 पर सर सैयद अहमद ख़ाँ ने 'असबाबे बगावते हिन्द' नाम से एक किताब लिखी थी जो किसी हिन्दुस्तानी के द्वारा ग़दर के तुरन्त बाद ग़दर पर लिखी गयी यह पहली है। अज़ीब बात इस किताब में यह है कि सर सैयद साहब जहाँ एक तरफ़ विद्रोह की वजहों को पूरी हमदर्दी के साथ देखते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ ग़दर की सख़्त लहजों में मज़म्मत (निंदा) भी करते हैं। यह ज़िक्र यहाँ इस कारण से भी ज़रूरी है कि सर सैयद अहमद खाँ और मिर्ज़ा ग़ालिब में एक प्रकार की तनातनी चलती रही थी और हक़ीक़त यह है कि सर सैयद साहब मिर्ज़ा को सम्मान नहीं देते थे। बाद में हालाँकि उनके सम्बन्ध थोड़े ठीक हुए लेकिन घनिष्ठ नहीं हुए। सो, सर सैयद ने ग़ालिब को क़ाबिल-ए-ज़िक्र नहीं समझा।

मिर्ज़ा की डायरी 'दस्तबूं' एक चश्मदीद शख़्स का किया हुआ कलमबन्द बयानात हैं इसलिए ग़दर के दरम्यान दिल्ली की हालत का बयान आँखों से देखिए, "पूरा शहर उस वक़्त मुसलमानों से खाली हो गया था।" मिर्ज़ा के हिन्दू दोस्तों के अलावा जो उनके पास बराबर आते रहते थे और हर तरह से वे उनका दुख दूर करते थे। कोई उनका गमख़्वार नहीं था। ऐसे ही वक़्त में जब उनके छोटे भाई का इन्तकाल हुआ था, दिल्ली के हालात क्या थे, ग़ालिब की ही जुबानी फिर सुनिए, "ऐसा लगता है जैसे मज़दूर और ज़मीन खोदने वाले इस शहर में रहते ही नहीं थे। हिन्दू लोग मृतक के शरीर को नदी के किनारे जला सकते हैं, परन्तु मुसलमान तो बाहर निकलने की हिम्मत भी नहीं कर सकते। भले ही वे सामूहिक रूप से या दो-तीन व्यक्तियों के सहारे कंधों पर मुर्दा निकालें, उन्हें इसकी अनुमति नहीं। ऐसे में सवाल यह उठता है कि वे किस प्रकार अपने मुर्दों को नगर से बाहर ले जाकर मिट्टी दें?" और इसी स्थिति के कारण ग़ालिब को अपने भाईजान को किस तरह बेशिनाख्त लाश की तरह मिट्टी दी, "पटियाला के एक सिपाही को आगे-आगे लेकर दो नौकरों की सहायता से हम लाश को बाहर लाए। उन्होंने लाश को धोया और मेरे घर से कपड़ों के दो-तीन टुकड़े लेकर लाश को लपेटा। फिर घर के पास वाली मस्ज़िद की ज़मीन को खोदकर लाश को दफ़्न किया और वापस आ गये।"

इसके बाद ग़ालिब टूट गये भीतर से। जब आमदनी का कोई ज़रिया न रहा और पन्द्रह महीने तक पेंशन भी बन्द रही तो मिर्ज़ा बिस्तर और कपड़े बेच-बेचकर जीवन-बसर करने लगे। इस बात का उन्हें कुछ ज़्यादा ही डर लगा रहता कि एक दिन जब सारे कपड़े उनके बिक जाएँगे तब वे क्या खाएँगे? उस पर तुर्रा ये कि, "इस बुरे वक़्त में भी जो लोग हमेशा मुझसे कुछ-न-कुछ लाभ उठाते रहे हैं—मुर्गे की भाँति असमय ही हृदय विदारक आवाज़ निकालकर मेरी रूह को दुःख पहुँचाते हैं और मुझे और और भीतर से तोड़ देते हैं।" बार-बार उन्हें तकलीफ़ें मिलती रही।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने इसके बावजूद इनसानियत और नेकनीयती का दामन कभी नहीं छोड़ा। मिर्ज़ा के शार्गिद 'हाली' यादगारे ग़ालिब में लिखते हैं, "दिल्ली के मशहूर लोगों में से एक जो मिर्ज़ा के दिली दोस्त थे और ग़दर के बाद जिनकी हालत बेहद ख़राब थी, एक रोज़ छींट का फ़रे-गुल पहने हुए मिर्ज़ा से मिलने आये। मिर्ज़ा ने कभी उनको मालीदा या ज़ामादार वगैरह के चोगों के सिवा ऐसा हल्का-कपड़ा पहने नहीं देखा था। छींट का फ़रे-गुल उनके बदन पर देखकर उनका दिल भर आया। उनसे पूछा कि, ये छींट का फरे गुल कहाँ से ली? मुझे ये बहुत भली मालूम होती है। आप मुझे भी फ़रे-गुल के लिए ये छींट मँगवा दें।" तब उनके दोस्त ने फ़रमाया, "फ़रे-गुल आज ही बनकर आया है और मैंने इसी वक़्त उसको पहना है। अगर आपको पसन्द है तो यही हाज़िर है।" जी तो चाहता है इसी वक़्त आपसे छीनकर पहन लूँ, मगर जाड़ा शिद्दत से पड़ रहा है, आप यहाँ से मक़ान तक क्या पहनकर जाएँगे? मिर्ज़ा ने कहा, फिर इधर-उधर देखकर खूँटी पर से अपना मालीदे का नया चोगा उतारकर उन्हें पहना दिया,और इस खूबसूरती के साथ वह चोगा उनकी नज़र किया। जैसे बाद में निराला गरीबों, दोस्तों के लिए करते रहे।

हाली के इस चश्मदीद बयान से यह भी पता चलता है कि मिर्ज़ा अपने दोस्तों का किस तरह ख़्याल रखते थे। ग़ालिब ने कितना ख़ूब फ़रमाया है।

"हम कहाँ के दाना थे, किस हुनर में यकता थे/ बेसबब हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आसमाँ अपना।" विडम्बना देखिए कि मिर्ज़ा इस शेर में फ़रमाते हैं कि हम कोई चतुर और चालाक आदमी नहीं थे और न ही किसी कला में ही अद्वितीय थे। ऐसी दुःखद स्थिति में भी भाग्य अकारण ही ग़ालिब का दुश्मन हो गया। शायद यही कारण है कि शहर कोतवाल ने अपनी दुश्मनी निकालने के लिए जुआ खेलने का कुसूरवार ठहराते हुए उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और उन्हें छह महीने तक जेल में रहना पड़ा। हाली ने तो यहाँ तक लिखा है कि यह एक बड़े षड्यंत्र का प्रतिफल था। इरादा तो ग़ालिब को ख़त्म कर देने का था। शुक्र है कि उनके रकीब इतने में ही मान गये।

"हुआ है शह का मुसाहिब, फिरे है इतराता
वगर्ना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है।"

उन्हें ख़ुद भी यह अहसास था कि शहर के लोग यह मानते हैं कि 'शायर तो वह अच्छा है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प बदनाम बहुत है।' बदनामियाँ एक-पर-एक उनकी शख़्सियत में लोग जोड़ते ही रहे— कभी-कभी तो बेहद ख़राब-ख़राब ग़ालियाँ मिलकर उनको ख़त में भेजते थे। जिसके कारण बाद में लिफ़ाफ़ा खोलते वक़्त हाथ काँपने लगता था।

'दस्तंबू' के आख़िर में पहुँचकर मिर्ज़ा लिखते हैं, ''पिछले साल मई के महीने से लेकर जुलाई, सन् 1858 तक की रिपोर्ट मैंने लिखी है। पहली अगस्त से क़लम रोक लिया है।'' अगर इतने वक़्त का ही हालात-ए-हाज़रा को कोई विश्वसनीय तरीक़े से देखना चाहता है तो उसके लिए 'प्रोफ़ेशनल हिस्टोरियन' से कहीं ज़्यादा मौजूँ होगा ग़ालिब के 'दस्तंबू' नामक फारसी में लिखी उनकी डायरी को पढ़ना। अफ़सोस कि आज की तारीख़ में जिस किताब 'द लॉस्ट मुग़ल' (लेखक-विलियम डेलरिंपल) की काफ़ी चर्चा है, उन्होंने भी 'दस्तंबू' को बहुत बारीक़ी से नहीं देखा।... ख़ैर, ग़ालिब ख़ुद को लेकर बहुत ज़्यादा मुगालते में नहीं रहते थे।

''ख़ुशी जीने की क्या, मरने का ग़म क्या।''

हमारी ज़िन्दगी क्या और हम क्या। अब इंसाफ़ आज की पीढ़ी करे कि हमारा कैसा इतिहास है और उसके बीच ग़ालिब कहाँ हैं, कैसे हैं? हम अब नये इतिहास में उन्हें कहाँ रखते हैं?

कादम्बिनी
प्रथम तल, हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस
18-20, के.जी.मार्ग, नई दिल्ली-110001
मो.: 09868722166

पाकिस्तानी उर्दू कथा साहित्य में भारतीय मिथक

रहमान मुसव्विर

सृजन

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भौगोलिक सीमाओं से नहीं, अपितु उसकी विशिष्ट संस्कृति से होती है। संस्कृति किसी भी देश के सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब होती है। साहित्य भी उसका एक प्राणवान पक्ष है। साहित्य को संस्कृति से तथा संस्कृति को साहित्य से विलग करके नहीं देखा जा सकता है। जब साहित्य पर चर्चा होती है तो संस्कृति की समस्या स्वयं ही बीच बहस में आ जाती है। नये राष्ट्र के अभ्युदय के पश्चात यह मुद्दा और भी व्यापकता और गहराई के साथ उभरता है।

पाकिस्तान की स्थापना के पीछे न तो कोई सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार था, न ही भारत की पारम्परिक उदार विरासत से कुछ सीखा गया था। नये राष्ट्र का निर्माण तो हो गया लेकिन संस्कृति के नाम पर नया कुछ भी नहीं था, तो फिर राष्ट्र की पहचान कैसे हो? इस संकट ने पाकिस्तान के उर्दू कथाकारों को उद्वेलित किया और वे जाने अनजाने भारतीय मिथकों की ओर आकृष्ट होते गये।

पाकिस्तानी उर्दू कथाकारों ने अपने लेखन में सांस्कृतिक मिथकों का व्यंजनात्मक प्रयोग किया। भारतीय देवी-देवताओं के मिथकीय प्रयोग द्वारा उन्होंने जीवन में पुरुषार्थ एवं दृढ़ संकल्प शक्ति की महत्ता प्रतिपादित की। अबुलफ़ज़ल सिद्दीक़ी इस धारा के प्रतिनिधि कथाकार हैं। 'यज़्दा ब कमंद आवर' कहानी का ताना बाना उन्होंने मिथकीय पात्रों के इर्द-गिर्द इस प्रकार बुना है कि सम्पूर्ण परिवेश जीवन्त हो उठता है। इस कहानी में भीमकँवर नामक राजा अपनी तपस्या से इन्द्र के सिंहासन को हिला देता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी उसकी तपस्या को भंग नहीं कर पाते। कहानी का अन्त मनुष्य की दृढ़ इच्छा शक्ति और संकल्प की विजय की परिणति के रूप में होता है—

''सुरसती ने वफ़ूदे मुहब्बत से राजा की पेशानी पर बोसा दिया और महाराज इन्दर ने अपनी सरबुलन्द गर्दन झुका दी। विश्नू जी मुस्कुरा कर राजा की हथेलियों पर आँखें मलने लगे, शिवजी ने झुककर अपने पाँचों हथियार क़दमों पर डाल दिये।''

इन्तज़ार हुसैन पाकिस्तानी उर्दू कथा साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण नाम है। भारतीय मिथकों का प्रयोग उनके लेखन की प्रमुख विशेषता है। उनके कथा साहित्य में महाभारत, रामायण और जातक कथाओं के पात्र बार-बार आते हैं। कहीं वे कथ्य की सफल अभिव्यक्ति बनते हैं, कहीं संस्कृति की यात्रा में हमसफ़र या फिर समसामयिक समस्याओं पर विमर्श का साधन। उदाहरण स्वरूप कहानी 'चौक' का एक प्रसंग ले सकते हैं। शद्दू, हुस्नू और रफ़िया लक्ष्मण तथा मेघनाद के मध्य युद्ध के प्रसंग पर बातचीत कर रहे हैं—

''लेकिन यार क्या मेघनाद भी हिन्दू था?'' रफ़िया को तो हमेशा ऐसी ही सूझती थी।

''और बेटा तुम उसे मुसलमान समझ रहे थे?'' हुस्नू रफ़िया की जेहालत पर इज़्हारे तहक़ीर करते हुए कहता है।

''लेकिन यार हिन्दू-हिन्दू होके होके लड़ पड़े?'' रफ़िया के वसवसे ने अब वाज़ेह शक़्ल इख़्तियार कर ली थी।

इस कथोपकथन में रफ़िया द्वारा उठाया गया प्रश्न पूरे मिथकीय प्रसंग को एक नया मोड़ दे देता है। भारतीय उपमहाद्वीप समय-समय पर साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार होता रहा है। इस प्रसंग के माध्यम से लेखक ने यह सन्देश देने का प्रयास किया है कि साम्प्रदायिक दंगों के मूल में दरअसल धर्म नहीं है। यदि ऐसा होता तो धर्म के नाम पर बनाया गया राष्ट्र पाकिस्तान समय-समय पर होने वाले दंगों की समस्या से न जूझता। यह अवधारणा मिथ्या और भ्रामक सिद्ध हुई कि असहिष्णुता की ज्वाला केवल भिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य ही धधकती है। यदि ऐसा होता तो मेघनाद और लक्ष्मण के युद्ध पर रफ़िया को उत्सुकता और बेचैनी न होती।

सृष्टि, प्रलय, भूकम्प, पर्वत, नदी, जल, सूर्य, धूमकेतु, आकाशगंगा, वृक्ष आदि प्राकृतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिथकों का बहुरंगी प्रयोग पाकिस्तानी कथाकारों की रचनाओं में देखने को मिलता है। कुर्रतुलऐन हैदर का उपन्यास 'आग का दरिया' में सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं—''लेकिन ब्रह्मा की जात का एक पहलू नाम रूप भी है। उसकी माया, शक्ति और प्रकृति दुनिया की तख़्लीक करती है।''

लेकिन बानो क़ुदसिया अपने उपन्यास 'राजा गिद्ध' में शिव और शक्ति को सृष्टि की उत्पत्ति का मूल मानती हैं। उनके शिव और शक्ति प्रतीकात्मक हैं— ''शिवजी महाराज और शक्ति के मेल से कायनात वजूद में आई है... मर्द जो शिवजी का रूप है उसकी कुव्वत बिजली से मुशाबेह है। औरत जो शक्ति है उसकी ताक़त मक़नाती सी है।''

किसी घटना विशेष की पूर्व सूचना चेतावनी स्वरूप आकाशवाणी के माध्यम से ही प्राप्त होती है। अहमद हमेश की कहानी 'मक्खी' में आकाशवाणी का मिथक अर्थों के नये आयाम खुलता है— ''मैंने पाँव पीटने शुरू किए तो पायंती की तरफ़ से मेरे घुटनों पर ठोस दबाव पड़ा। इस तरह दबाव सर से पाँव तक जारी हो गया। 'नाम बताओ' लहजे से पत्थर तक एक इन्फ़आली आकाशवाणी। मैं अपना नाम क्यों बताऊँ— शायद मैंने खुद से पूछा...सो ये पता चला कि वो आकाशवाणी नहीं थी।''

अधिक ज्वर में विभ्रम की स्थिति होने पर व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ और आवाज़ें सुनाई देती हैं। उपर्युक्त उद्धरण में पात्र भ्रम की स्थिति में है। शीघ्र ही उस पर यह मिथकीय सत्य भी उद्घाटित हो जाता है कि वास्तव में वह आकाशवाणी नहीं थी, क्योंकि आकाशवाणी सत्य होती है।

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आकाशवाणी, भविष्य संकेत, सती आदि अवधारणाओं के लिए इस्लामी दर्शन में कोई स्थान नहीं है लेकिन पाकिस्तानी कथाकार इनसे संबंधित मिथकों का न केवल खुलकर प्रयोग करते रहे हैं बल्कि अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय देते हुए नवीन मिथकों का सृजन भी करते हैं।

मिथक कथाओं के अनुसार मृत्यु के पश्चात आत्मा भटकती रहती है। जब तक कि उसका श्राद्ध न किया जाए। जो व्यक्ति किसी अधूरी इच्छा के साथ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसकी आत्मा उसी की खोज में लगी रहती है। मुस्तंसर हुसैन तारड कृत उपन्यास 'बहाव' में एक बहुत रोचक प्रसंग आता है। डोरगा और बिरचन टीलों के पास से गुज़र रहे हैं। बिरचन बताता है कि अगर इन टीलों पर पानी डाल कर न गुज़रें तो यहाँ निवास करने वाली मृतात्माएँ आवाज़ देकर पुकारती हैं। उनके बाबा, दादा, परदादा का नाम लेकर बुलाती हैं। डोरगा डरा हुआ है लेकिन अचानक एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है— *''सुनो'', डोगरा थोड़ी दूर जाकर बोला, ''उनके टीलों पर पानी न डालते तो अच्छा था''*

''क्यों?'' बिरचन रुक गया।

''मुझे कुछ पता नहीं कि मेरा बाबा कौन था और उसके बाबा का नाम क्या था, तो वो अगर पुकारते तो मुझे पता चल जाता।''

वस्तुत: यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप का प्रश्न है? हम कौन हैं? कहाँ से आए हैं? हमारी जड़ें कहाँ हैं? पाकिस्तान में तो यह प्रश्न और अधिक महत्त्वपूर्ण है। फ़ैज ने भी कहा था कि जब पाकिस्तानी कल्चर का सवाल पैदा हुआ तो सबसे पहले हम ये सोचने लगे कि इसकी तारीख़ कहाँ से शुरू करें? मोहन जोदाड़ो से शुरू करें कि तक्षशिला और कंधार से? मुहम्मद बिन कासिम से शुरू करें कि सर सैयद अहमद ख़ान से? क़रारदादे पाकिस्तान से शुरू करें या 1947 से।' कुल मिलाकर संकट पहचान का है।

पाकिस्तानी उर्दू कथा-साहित्य का अनुशीलन करते हुए हम पाते हैं कि इन्तज़ार हुसैन, फ़हमीदर रियाज़, कुर्रतुलऐन हैदर, ज़ाहिदा हिना, इकरामुल्लाह, मुस्तंसर हुसैन तारड, बानो कुदसिया, अशफ़ाक अहमद, अब्दुल्लाह हुसैन, मिर्ज़ा हामिद बेग, जमीला हाशमी, अबुलफ़ज़ल सिद्दीकी, अहमद हमेश, असद मुहम्मद ख़ाँ इत्यादि ने रामकृष्ण, सीता, लक्ष्मण रेखा, राधा, रावण, कंस, हनुमान, युधिष्ठिर, अर्जुन, सती, सृष्टि, प्रलय, सर्प, काल, पाताल, गिलहरी, अप्सरा, चुड़ैल, चंडाल इत्यादि मिथकों का बहुत सुन्दर और कलात्मक प्रयोग अपनी कहानियों और उपन्यासों में किया है। इन कहानियों और उपन्यासों से गुज़रते हुए बार-बार यह प्रश्न कौंधता है कि पाकिस्तानी कथाकारों द्वारा भारतीय मिथकों के इतने व्यापक प्रयोग का क्या कारण है?

मोटे तौर पर इसके दो कारण हो सकते हैं। पाकिस्तान की पहली पीढ़ी के अधिकतर कथाकार विभाजन के पश्चात पलायन करके वहाँ पहुँचे हैं। उन्होंने अपने असली वतन को छोड़ दिया और लक्ष्मण रेखा पार करके पाकिस्तान रूपी कोहे निदा का रुख़ किया किंतु पाकिस्तान में उन्हें स्वीकार नहीं किया गया। उन्हें शरणार्थी कहकर पुकारा गया। उनका भ्रम टूट गया। उन्हें अहसास हुआ कि अपना सब कुछ गँवाने के बाद वो जिस देश में आए हैं, वह उनके लिए पराया है। पुरानी यादें उन्हें सालने लगीं। उन यादों का दंश उन्हें चुभने लगा। फलस्वरूप उनकी अभिव्यक्ति में छूटे हुए समय और समाज के चित्र उभरते गए। नास्टेल्जिया भारतीय मिथकों के रूप में अभिव्यक्त होने लगा।

पाकिस्तान लम्बे समय तक लोकतंत्र की राह पर न चल सका। तानाशाही में सर्वप्रथम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगता है। लेखक अपनी बात को संकेतों के माध्यम से कहता है। वह ऐसे बिम्ब और प्रतीक तलाशता है जो उसके मनोभावों का सटीक निरूपण कर सकें। पाकिस्तानी कथाकारों को भारतीय मिथकों के माध्यम से बात कहना सरल और प्रभावी लगा और वे इन मिथकों की ओर आकर्षित हुए बल्कि नित अभिनव प्रयोग भी कर रहे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नई संस्कृति की पहचान के संकट, जड़ों से जुड़े रहने के स्वाभाविक आग्रह, नास्टेल्जिया तथा तानाशाही के कारण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दमन ने पाकिस्तानी उर्दू कथा साहित्य को नए तरह के तेवर दिए जिसमें छटपटाहट है, बेचैनी है, तलाश है। ये छटपटाहट, बेचैनी और तलाश ही उन्हें भारतीयता की ओर ले जाती है और कथाकारों के विभिन्न भावों मिथकों के माध्यम से प्रतीक, बिम्ब और उपमान का रूप धारण करके प्रस्फुटित होते हैं।

32, यूनीवर्सिटी टीचर्स हॉस्टल
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली-110 025
मो.- 09871610200

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित दो युवा लेखकों की कृतियाँ

एक साधारण इन्सान अपनी हठ और लगन से कब ज़िन्दगी
को इबारत में बदल लेने की ठान ले... कौन जाने!

शुद्धिपत्र

सात कहानियों का संग्रह। कथन की एक नयी भंगिमा के साथ
एक सर्वथा नये रचनाकार की पहली कृति।

सनातन बाबू का दाम्पत्य

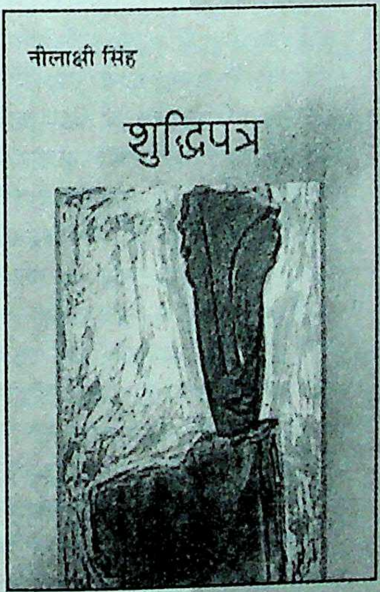

उपन्यास

शुद्धिपत्र : नीलाक्षी सिंह

पृष्ठ : 192, मूल्य : 145 रुपये

कहानी-संग्रह

सनातन बाबू का दाम्पत्य : कुणाल सिंह

पृष्ठ : 160, मूल्य : 120 रुपये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

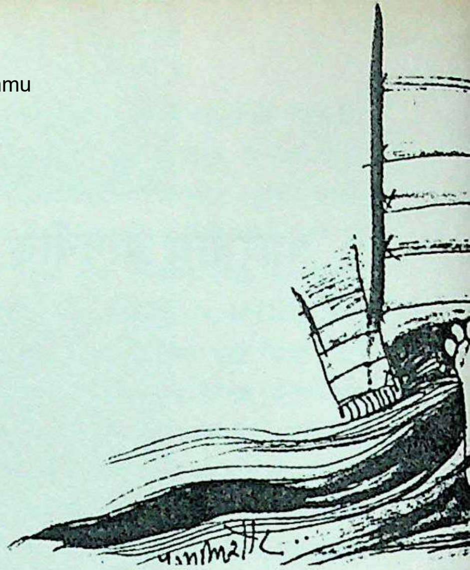

ब्लैंक कॉल

ख़ुर्शीद अकरम

फ़ख़रुद्दीन अहमद जो लोहे के नट बनाते थे और इसी कारण फ़ख़रू नटराज के नाम से ज़्यादा जाने जाते थे, ज़ोहर की नमाज़ के लिये खड़े तो हुए लेकिन उनका ध्यान कहीं और था। अक़ामत पुकारी जा रही थी, उस वक़्त उनका ध्यान गुप्ता लाला की तरफ़ लगा हुआ था, जिसके पास उन्हें अभी जाना था। तक़बीर की आवाज़ पर उन्होंने अपने दिमाग़ से इस ख़्याल को झटका। वह ख़ुदा के हुज़ूर में खड़े थे जो रिज़्क़ देने वाला है और बड़ा रहीम है। इमाम साहब के पीछे नीयत बाँध कर ख़ामोशी से जो खड़े हुए तो ध्यान फिर झटक गया।

उनकी समझ में नहीं आ रहा था लाला से निपटारा कैसे किया जाये। वह उनके पैसे देने का नाम ही नहीं लेता। साफ़ कहे कि पैसे नहीं देगा तो वह एक बार कुछ ढंग से सोचें कि हिसाब कैसे चुकता करना है, चाहे झगड़े से ही लेकिन... वह नमाज़ में खड़े थे। उन्होंने फिर ज़ेहन को झटका... इमाम साहब द्वारा ख़ामोशी से कुरआन शरीफ़ की सूरा पढ़ी जा रही थी जो अरबी में थी, वह जिसके मानी नहीं जानते थे। कारोबारी आदमी थे इसलिये ऐसे समय अकसर कोई कारोबारी बात ही दिमाग़ में आ जाती जिसपर वह कुछ दूर तक सोचते, अनजाने तौर पर, फिर जब एहसास होता तो झटक देते। कई बार सोचते वह दुनियादारी में ऐसे गले-गले तक डूबे हुए हैं कि दुनिया का ख़्याल दिल से निकलता ही नहीं। मगर वह भी क्या करें! कारोबार चीज़ ही ऐसी है। ज़िन्दगी भर झूठ-सच करके बाल-बच्चों को पालते रहे थे। यह कोई एक दिन की बात तो है नहीं कि चलो दिल से निकाल दिया और मौला के दरबार में खड़े हुए तो अगला पिछला सब भूल गये। इस वक़्त भी वह सुन कुछ रहे थे, सोच कुछ और। कारोबार की बातें। कुछ साफ़-साफ़ नहीं। कभी प्लेटों की बात, कभी प्रेस की, कभी लाला के बारे में। अल्लाहों अकबर की आवाज़ के साथ वह रुकू में चले गये। ख़ुद-ब-ख़ुद। सोचे बिना। वह चाहे कुछ और ही सोच रहे हों... मामूल तो यही बन गया था, अगली तकबीर पर सिजदे में फिर सिजदे से उठना, फिर सिजदे में, फिर खड़े हो जाना... यहाँ तक कि सलाम फेर लेना। उन्हें नमाज़ का सारा तरीक़ा याद था, लेकिन उनसे ज़्यादा उनके हाथ पांव को याद था, कब झुकना है, कब खड़े हो जाना है।

मस्जिद से निकलते हुए अब वह किसी तरह की दुविधा में नहीं थे। उन्होंने पहले से तय कर रखा था कि नमाज़ के बाद वह खाना खाने घर नहीं जाएँगे। पहले वह लाला के यहाँ जाएँगे क्योंकि उसने उन्हें दो बजे बुलाया था। लाला का क्या है, वह तो पैसे नहीं देने के सौ बहाने निकालता था... और नहीं तो यही सही कि मौलवी साहब आप देर से आए, मैंने अभी-अभी एक पार्टी को पेमेंट कर दिया। फ़ख़रुद्दीन अहम करख़नदार उर्फ़ फ़ख़रू नटराज कौन से मौलवी थे। मदरसे में चार-पाँच ज़मातें पढ़ी थीं तो कुरआन शरीफ़ की सूरतें, आयतें ठीक से याद थीं, मानी नहीं मालूम था। लेकिन इधर दो तीन साल से जबकि उन्हें लीवर की तकलीफ़ रहने लगी थी और डॉक्टर ने उन्हें शराब पीने से बिल्कुल मना कर दिया था, तो कुछ दिनों तक तो बीमारी से ज़्यादा शराब पीने के लिए परेशान रहे। फिर ज़हेन के भटकाव को कम करने के लिये एक रोज़ सोचा, नमाज़ शुरू कर दें, सुना है यह आदमी को सौ बुराइयों से रोकती है। नमाज़ पढ़नी शुरू की तो दाढ़ी भी छोड़ दी। कच्ची-पक्की दाढ़ी ज़रा बढ़ी तो तबलीग़ वालो ने घेरना शुरू कर दिया, दर्स में बैठिये, वह ठहरे ठेठ कारोबारी। कन्नी काटते रहे। मगर जमात वाले भी उनको सीधी राह पर लाने में लगे हुए थे। सो, होते-हवाते एह बार तीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिन की जमात में खींच ही ले गये। लौटकर आये तो मज़हब से कोई ख़ास लगाव तो नहीं बढ़ा, न दर्स समझ में आया, न नमाज़ में पहले से ज़्यादा दिल लगा, न उकडूँ बैठकर खाने की आदत बनायी। बस यह कि दाढ़ी तो रख ही ली थी अब टोपी भी पहनने लगे। इस तरह टोपी और दाढ़ी के तुफ़ैल वह नये मिलने वालों के लिये मौलवी साहब बन गये। फिर लाला को तो सही-मायनों में उनका नाम भी नहीं मालूम था। कारोबार एफ.ए.एंड सन्स के नाम से चलता था और वसूली के वक़्त दस्तख़त वह उर्दू में करते थे जो लाला नहीं जानता था। फिर लाला ठहरा लाला। उसे नाम से क्या लेना! उसे तो कारोबार करना है। और लाला के साथ उनका कारोबार ठीक ही चल रहा था बल्कि बहुत अच्छी तरह चल रहा था। पहले उनके पास दो छोटे-छोटे प्रेस थे। छोटा-मोटा कारोबार। दाल-रोटी मज़े से चल रही थी। फिर जब ज़रा ठहराव आया तो सोचा कारोबार बढ़ाया जाये। इसी दौरान गुप्ता लाला से कारोबार का सिलसिला शुरू हो गया जो छोटे-छोटे पुर्ज़ों का बड़ा व्यापारी था। लाला ने शुरू-शुरू में बड़ा ख़रा व्यापार किया। माल के लिए आर्डर भी ख़ूब देता और पेमेंट भी जल्दी करता। फ़ख़रू मियाँ ने सोचा, नमाज़ की बरकत से कारोबार कैसा चमक उठा है। उन्होंने उधार-क़र्ज़ करके दो बड़े प्रेस और लगा लिये और धड़ा-धड़ माल सप्लाई करने।

जब लाला और फ़ख़रू मियाँ के बीच कारोबार जम गया तो लाला ने थोड़-थोड़े पैसे रोकने शुरू कर दिये। लाला का मानना है कि कारोबार ऐसे ही होता है। वह अब टाल मटोल से काम लेने लगा। बात-चीत का अन्दाज़ भी थोड़ा उखड़ा-उखड़ा रहने लगा। लेकिन वह सहन करते रहे। दूध देने वाली गाय लताड़ चलाये तो भी इसपर दिल खट्टा नहीं करते। उन्हें तो लाला से कारोबार बनाये रखना था। मार्किट में इतना कम्पटीशन है। गली-गली कारखाने लगे हैं। एक छोड़ता है तो दूसरा माल लेकर पहुँच जाता है। इस तरह की बातें सोच-सोच कर वह सब सहते रहे। लेकिन मुश्किल यह थी कि लोहे के चद्दर, जिनसे वह नट बनवाते थे, सप्लाई करने वाला व्यापारी बहुत बड़ा था और वह उन जैसे छोटे-छोटे कारोबारियों के साथ उधार का काम नहीं करता था। कुछ दिनों तक तो वह उलटा-सीधा करके काम चलाते रहे और लाला को माल सप्लाई करते रहे। लाला हज़ार का माल लेकर पाँच सौ दे देता। बाक़ी का हिसाब बाद में। इस तरह होते-होते सत्तर हज़ार तक का बाक़ी हो गया। जब वह लाला की तरफ़ चले हैं उस वक़्त उनके अन्दर इतना गुस्सा उबल रहा था कि जी चाहता था लाला की गर्दन दबा दें। लेकिन वह जानते थे उनका हाथ दबा हुआ है।

जब वह लाला की दुकान पर पहुँचे वह नहीं था। और फ़ख़रू-मियाँ को भूख लगी हुई थी। वह पानी-पीकर और दिल कड़ा करके बैठे रहे। इस एक घण्टे में दुकान का ट्रांज़ेक्शन होता रहा और वह कुढ़ते रहे। आज पहली बार एक तरह की हसद (जलन) के साथ उन्होंने ग़ौर किया कि लाला ने जितना पैसा उनका रोक रखा है और जिसकी वज़ह से इनका कारोबार डूब रहा है, उतने की तो उसके यहाँ रोज़ की बिक्री होगी।

डेढ़-एक-घंटे के बाद जब लाला लौट कर आया तो 'मौलवी साहब' पर कोई ख़ास ध्यान दिये बिना गद्दी पर बैठ गया। पहले तो उसने अपने एक नौकर को गली दी— ''बहुत चरबी हो गयी है रे तेरे को। कल बोला था कनौड़या को सुबह माल भेज देना, अभी तक माल नहीं गया।'' नौकर कुछ बोला नहीं। चुपचाप दुकान से उतर गया। उसके बाद लाला ने फ़ोन घुमाना शुरू किया। हाँ! भट्टी साहब, आपका माल तो भेज दिया है। पेमेंट भेजो... अरे पेमेंट रोक लोगे तो धन्धा कैसे चलेगा। मेरे को भी पार्टियों को पेमेंट देना होता है। अभी देखो पार्टी आकर बैठी है। लाला ने फ़ख़रू मियाँ की तरफ देखा। उन्हें जैसे कुछ इत्मिनान हुआ कि साला भूला नहीं है। मगर तगादा करते करते फ़ख़रू-मियाँ की हिस ज़रा तेज़ हो गयी थी। उन्होंने लाला की तरफ़ देखते हुए सोचा यह मक्कारी तो नहीं कर रहा? टालने के लिये बहाने बना रहा हो। बड़ा कारोबारी ऐसे थोड़े ही बनता है। वह तो छोटे कारोबारियों के सिर पर पाँव रखकर खड़ा होता है। फिर क्या पता यह मरदूद झूठ-मूठ के ही फोन कर रहा हो। मुझे सुनाने के लिए सिर्फ टोंग रच रहा हो। ''हाँ तो कब भिजवा रहे हो पेमेंट लाला बोला, पन्द्रह दिन? नईं-नईं पन्द्रह दिन तो बहुत है। आप अगले हफ़्ते कुछ पेमेंट भिजवाओ... हाँ-हाँ माल तो आप को मिलता रहेगा।'' इसके बाद उसने एक और फ़ोन किया। वही माल की पैसे की बात। इस तरह उसने कई फोन किये। तब तक फ़ख़रू मियाँ उसका इरादा भाँप चुके थे। उन्हें यक़ीन हो गया था कि यह मक्कारी कर रहा है। यह पैसे नहीं देगा। लेकिन पैसे तो मुझे चाहिये। वह बहुत गुस्से में थे मगर बे-बस। लाला ने अपने तौर पर सारे ज़रूरी काम निपटा कर जब उनकी तरफ़ ध्यान दिया तब तक उनके गुस्से और बे-बसी भूख से पैदा होने वाली कमज़ोरी की हल्की-सी परत भी चढ़ चुकी थी। वह लाला के मुँह से ही कुछ सुनना चाहते थे। ''मौलवी साहब माल देते रहो।'' ''मगर लालाजी आप पेमेंट भी तो देते रहें।''

''पेमेंट नो आगे पीछे होती रहेगी, धंधा सो ऐसे चलता है।''

''मगर लालाजी आज का वादा था। आज कुछ पेमेंट कीजिये।''

''अरे बाबा, पेमेंट कहाँ से दूँ। आपके सामने ही बात की। पार्टियाँ माल ले लेती हैं पैसे नहीं देतीं, लेकिन कारोबार तो चालू रखना होगा।''

लाला की यह दलील फ़ख़रू मियाँ की बर्दाश्त से बाहर थी।

''लालाजी आप क्या लेते हैं, क्या देते हैं मुझे इससे क्या मतलब। आप मेरी पेमेंट दीजिये।''

''पेमेंट कहाँ से कर दूँ।'' लाला गरम हो रहा था, ''पैसा आएगा तो दूँगा। आपको बिज़निस सूट नहीं करता है तो माल देना बन्द करो।''

''हम सप्लाई बन्द कर देंगे लेकिन आप हमारा बकाया दो।'' उन्होंने बे-टूक कहा। लाला ने उनसे भी ज़्यादा बे-टूक लहजे में कहा, ''हाँ, आप माल देना बन्द करो। मुझे ऐसी पार्टी नहीं चाहिये जो हर वक़्त तगादा के लिये बैठी रहे। हमारा तेरह लाख मार्किट में फँसा है, हम किसी के सामने आँख लाल-पीली नहीं करते। आप जाओ पैसे थोड़ा-थोड़ा करके ले लेना। सप्लाई बन्द।''

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह गये तो वसूली के लिये थे लेकिन उनका हाथ और भारी पत्थर के नीचे दब गया था। वह जानते थे ये सारे कारोबार कच्चे पर होते हैं। कच्ची रसीद, कच्चे क़ाग़ज, कच्ची ज़बान। ये पैसा डूब जायेगा। उनका कारोबार डूब जायेगा। वह डूब जायेंगे। ऐसे ही गुस्से में भरे, बे-बस, थके हुए, उधेड़-बुन में फँसे, पाँव तले से खिसकती हुई ज़मीन के ख़ौफ़ में मुबतला फ़ख़रू मौलवी साहब पैदल लौट रहे थे। तब अस्र की अज़ान होने वाली थी। उसी वक़्त एक छोटा-सा हादसा पेश आ गया। अभी वह चौक सीता-राम के क़रीब पहुँचे थे। वह आगे बढ़ रहे थे। हिन्दुओं का इल्तका पीछे छूटता जा रहा था। चौक पार करके थोड़ा आगे बढ़ेंगे तो मुसलमानों की बस्ती शुरू हो जायेगी जिसके एक भीतरी मुहल्ले में रहते थे। बीच में चौक सीता-राम जो इधर और उधर की गन्जान बस्तियों और ऊपर-तले-चढ़े मकानों और पतली-पतली पेचदार गलियों और गन्दी नालियों और सिर से थोड़ी ऊँचाई पर बिजली के तारों के गुच्छों और तरह-तरह को महकारों और कोलाहल के मुकाबले थोड़ा खुला था। सड़क के बीचों-बीच पीपल का एक पेड़ था जिसकी जड़ को चारों तरफ़ से पक्की इंटों से घेर कर एक छोटा-सा मन्दिर बना दिया गया था, जिसका फ़र्श लाल था और जिसमें राम और सीता की मूर्तियाँ रखी हुई थीं। सड़क के दोनों तरफ़ दुकानें लगी थीं और मकान भी। किसी बिल्डिंग में हिन्दू रहते थे किसी में मुसलमान। इन पुरानी बिल्डिंगों को देखकर तो कुछ पहचानना मुश्किल था जिनमें से ज़्यादातर की बालकनियाँ लकड़ी की बनी हुई थीं। लेकिन एक चीज़ की वजहसे यह आसानी से पहचानी जा सकती थीं। जिस बिल्डिंग में मुसलमान रहते थे। उनकी बालकनियाँ लकड़ी की बनी हुई थीं। लेकिन एक चीज़ की वजह से यह आसानी से पहचानी जा सकती थीं। जिस बिल्डिंग में मुसलमान रहते थे, उनकी बालकनियों पर कमीज़ें और शलवारें लटक रही होतीं और जिनमें हिन्दू रहते उनमें ऊपर से नीचे तक धोतियाँ और साड़ियाँ लटक रही होतीं। मगर फ़ख़रू मियाँ न शायद इतनी महीन बातों पर सोचते थे और न इस वक़्त उनके जिहन में ऐसा कुछ था कि वह कैसी आबादी से आ रहे हैं और किस आबादी में जा रहे हैं। उन्हें तो सिर्फ़ यह याद था कि वह एक धोखा या उससे कुछ कम उठाकर अपने बाल-बच्चों के बीच जा रहे हैं जिन को रोटी-कपड़े देना उनके ज़िम्मे हैं। वह इसी उधेड़-बुन में थे कि एक रिक्शा तेज़ी से उनके पास से गुज़रने लगा। रिक्शे का ज़ंग खाया मडगार्ड उनके कुरते में फँस गया। वह कुछ दूर खिंचते गये फिर झटके से दूर जा गिरे। कुर्ता भी फटा और चोट भी लगी। बस गुस्सा उनके सिर पर चढ़ गया। वह उठे और दौड़ते हुए रिक्शे वाले को मारना शुरू कर दिया। रिक्शा वाला कमज़ोर था। भागने लगा। भागता हुआ वह मन्दिर के चबूतरे तक पहुँच गया। फ़ख़रू मियाँ को अपने गुस्से के सामने कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। उन्होंने चबूतरे पर चढ़कर मारना शुरू कर दिया। रिक्शा वाला चिल्लाया— ''हाय राम मार डाला, बचाओ।'' यह एक बेबस आदमी की आवाज़ थी जो आसपास खड़े लोगों के लिये ललकार बन गयी। एक आदमी ने उनका हाथ पकड़ लिया ''ऐ मौलवी। ज़्यादा गरमी चढ़ गयी है क्या। ग़रीब को मारे जा रहा है।'' कोई और वक़्त होता तो इस तरह 'ऐ मौलवी' कहे जाने को वह और तरह लेते जिसके पीछे से एक अँधेरा इतिहास बोल रहा था। कोई वक्त होता वह उस रिक्शेवाले को इस तरह न मारते क्योंकि यह कोई इतना बड़ा जुर्म नहीं था। इन गंजान आबादियों में इस तरह के छोटे-मोटे झगड़े रोज़ ही होते हैं। दाढ़ी-टोपी वाले की जगह कोई और रिक्शे वाले को पीट रहा होता तो बाक़ी लोग एक न समझ में आने वाली दिलचस्पी के साथ यह सब देखते। वह मन्दिर का दरवाज़ा न होता, कोई और जगह होती तो शायद वह रिक्शेवाले जिसका नाम 'राजू', 'रघु, भोला या ऐसा ही कुछ होगा, हाय राम बचाओ कहकर न चिल्लाता। मगर वह अजीब वक़्त था, वह केकड़े की पीठ थी जिसके अन्दर से कटीले पाँव निकलकर हर तरफ़ फैल गये थे। तो बस ऐसे ही एक समय में एक दाढ़ी-टोपीवाला मन्दिर के दरवाज़े पर एक हिन्दु रिक्शेवाले को पीटता हुआ पाया गया जिसपर आस-पास के कुछ हिन्दूओं को गुस्सा आ गया। दो-एक ने तो बीच-बचाव की कोशिश की लेकिन कइयों ने फ़ख़रू मियाँ को मारना शुरू कर दिया। सामूहिक गौरव, सामूहिक ज़िद और सामूहिक गुस्सा बड़े ख़तरनाक होते हैं। हालाँकि वे चन्द ही हाथ-पाँव थे लेकिन फ़ख़रू मियाँ के लिए इस वक़्त करोड़ों ज़ालिम हाथ-पाँव बन गये थे। वह चन्द आँखें थीं लेकिन फ़ख़रू मियाँ को लिये क़हर बरसाती नफ़रत भरी करोड़ों आँखें थीं। और जब वह खूनम-खून हो रहे थे उन्होंने अपने बेहद कमजोर हाथ-पाँव चलाने शुरू किये और उन्हें लगा कि उनके हाथों-पैरों में करोड़ों हाथ-पाँव लग गये हैं और सब एक दूसरे में गुत्थम-गुत्था हो गये हैं। असल में, फ़ख़रू मियाँ को कुछ हिन्दुओं के हाथों मन्दिर की दीवार के पास पिटता देखकर कुछ मुसलमान भी दौड़े। फिर यह हुआ कि सही-ग़लत का फैसला बाद में होगा, जो भाई को मारे उसकी जान ले लो... थोड़ी ही देर में जबकि फ़ख़रू मियाँ अपना होश खो रहे थे, यह ख़बर उन मुहल्लों तक पहुँची जिनमें से एक में उनका घर था। जिसमें उनके दो जवान बेटे थे और बहुत सारे रिश्तेदार थे और उनके दोस्त थे— ''मारो सालों को, जीना दूभर कर दिया है'' कोई जुनूनी आवाज़ में चीख़ा और फिर जिसके हाथ में जो आया वही लेकर चौंक सीता-राम की तरफ़ दौड़ पड़ा। इसी बीच यह ख़बर दूसरी तरफ़ भी पहुँच गयी थी। वहाँ भी बहुत से लोग थे। वहाँ भी एक जुनूनी आवाज़ चीख़ बनकर फैल गयी।

जिस वक़्त पुराने शहर में दँगा भड़क रहा था, सरकारी दफ़्तरों में बाबुओं के घर वापस होने का समय हो रहा था। सिर्फ़ कुछ अधिकारी और थोड़ा-सा मातेहत अमला ऐसा होता है जो ऑफिस में पूरे समय तक मौजूद रहता है। यह गृह मंत्रालय के अधीन एक आफिस है जिसकी राहदारी में एक सजे हुए कमरे में डिप्टी डायरेक्टर एस.एस.शर्मा इस वक्त बैठे एक फाईल को देख रहे थे। यह बड़ी अहम फाईल थी जिसपर उन्हें फैसला लेना था। यह सुहैल अब्बास नाम के एक नौजवान क्लर्क की फाईल थी जिसपर सरकारी मशीनरी के नाजायज़ इस्तेमाल का इल्ज़ाम था। दरसअल वह थातो क्लर्क और कोई कम्पटीशन के द्वारा नहीं, कम्पमेनसेंटरी ग्राउंड पर नौकरी से लगा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसका बाप अब्बास अली इसी ऑफिस में ए-ओ था। कोई दो-साल पहले वह नौकरी की अवधि में ही मर गया था। उस वक़्त सुहैल गल्फ़ में कम्प्यूटर ऑपरेटर की नौकरी कर रहा था जहाँ आधुनिक कम्प्यूटरों से काम लिया जाता है। लड़का चालू-पुर्जा था। जल्दी ही कम्प्यूटरों की बहुत सारी प्रोग्रामिंग और ऑपरेशन जान गया। वहाँ उसको हर तरह की सहूलियत थी। पैसे भी और तरक़्क़ी करने के अवसर भी। उसे बाप की जगह क्लर्क की नौकरी लेने की कोई ज़रूरत नहीं थी। लेकिन वह अब्बास परिवार की इकलौती सन्तान था। और उसकी माँ नहीं चाहती थी कि अब उसका बेटा उससे दूर रहे। मजबूरी में सुहैल ने नौकरी ज्वाइन कर ली। उन दिनों सरकारी दफ़्तरों में कम्प्यूटर लगाये जाने लगे थे। लेकिन ज़्यादातर सरकारी बाबुओं में इन कम्प्यूटरों को समझने की क्षमता थी न शौक़। सुहैल की लॉटरी खुल गयी। उसे ऊँघती हुई फाईलें निपटाने की बजाये कम्प्यूटर ऑपरेटर बना दिया गया। हालाँकि इससे उसके वेतन या ग्रेड में कोई बढौतरी नहीं हुई लेकिन उसे कम-से-कम यह सन्तोष था कि वह कम्प्यूटर सेक्शन में हैं। उसका काम था गोपनीय और अन्दरूनी सुरक्षा से सम्बद्ध कार्यालयों को मंत्रालय की तरफ़ से जवाब और सूचनाएँ भेजना। माना जाता है कि वह यह काम पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कर रहा था। एक बार कुछ ख़ास प्रकार के सॉफ्ट-वेयर की ख़रीदारी के लिये उसे दफ़्तर की तरफ़ से बंगलौर भेजा गया। इसी बीच डायरेक्टर को एक खुफ़िया हाथ से कुछ दस्तावेज़ मिले जिससे पता चलता था कि वह ई-मेल द्वारा कुछ निजी क़िस्म के कारोबारी पत्राचार भी कर रहा है, जिसका ऑफिस के मामूलों से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसलिए उसको मैमों दिया गया और मामले की जाँच के लिये दो सदस्यों वाली एक कमिटी बनायी गयी। हालाँकि शर्मा जी चाहते थे कि यह मामला दब-दबा जाए और वह सुहैल को डाँट-फटकार कर किसी और सेक्शन में डाल दे। शर्मा जी, इस यक़ीन के बावजूद, कि उसने सरकारी सुविधा का ग़लत इस्तेमाल किया है, उसके खिलाफ़ किसी तरह की कड़ी कार्रवाई नहीं चाहते थे, क्योंकि वह जानते थे कि उनके पूरे दफ़्तर में उसके जितना कम्प्यूटर का माहिर कोई नहीं। फिर यह कि वह अपना काम भी पूरी होशियारी से करता था। लेकिन बात ऊपर तक पहुँच गयी थी इसलिये जाँच कमिटी बनानी पड़ी।... और इस वक़्त वह उसी कमिटीकी रिपोर्ट पढ़ रहे थे जिसको ग़ौर से पढ़ने के बाद भी मिस्टर शर्मा को यह नहीं समझ में आ रहा था कि वह उसको बरी करें कि क्या... क्योंकि सुहैल ने जो जवाब रिकार्ड करवाया था वह पहली बात तो यह कि इतना टेक्नीकल था कि उसके सच-झूठ का अन्दाज़ा कोई कम्प्यूटर का माहिर ही लगा सकता है। फिर दूसरा तर्क उसने ये दिया था कि ये दस्तावेज़ उसकी ग़ैर-मौजूदगी में किसी ने साज़िश करते हुए ख़ुद ही बनाकर निकाल लिये हैं। समझ में आ जाने वाली इस बात से वह लगभग मुतमईन थे और उसको बरी करने के लिए ग्राउंड बनाने के बारे में सोच रहे थे कि फ़ोन की घंटी बजी... उनका एक सम्बन्धी पुराने शहर में रहता था जहाँ इस वक़्त दंगा हो रहा था, बल्कि फैल रहा था। उसे किसी काम से इस वक़्त शर्मा से मिलने आना था। लेकिन यहाँ दंगे भड़क उठे हैं। उसने शर्मा जी को बताया कि यहाँ कुछ लोगों ने एक मन्दिर पर भी हमला करने की कोशिश की। इधर-उधर से ख़बरें मिल रही थीं कि कई लोगों को छुरा मार दिया गया है। गोलियाँ चलने की भी आवाज़े आ रही हैं। अपनी बिल्डिंग की छत से दूर कहीं उन्हें एक मकान सा कुछ जलता हुआ भी दिखायी दिया है। उधर से आने वाली आवाज़ में भय और घबराहट भी थी और एक तरह की नफ़रत भी। शर्मा जी इस ख़बर से झुँझला गये। उन्होंनें गुरू गोलवालकर और हेडगेवार के वह लेख पढ़े थे जिनमें मुसलमानों के बारे में ऐसी बातें लिखी हुई थीं जिनपर यक़ीन करने के बाद भी हिन्दू के दिल में मुसलमानों के प्रति रंजिश का पैदा हो जाना स्वाभाविक था। यह किताबें उन्होंने नौउमरी में पढ़ी थीं और इससे काफ़ी प्रभावित हुए थे। फ़साद की ख़बर सुनकर उनका दिमाग़ तेज़ी से एक तरफ़ चलने लगा, हालाँकि वह इस तरह सोचना नहीं चाह रहे थे। क्योंकि संयोग से गोलवालकर और हेडगेवार जैसे चिन्तकों कि बातों पर यकीन रखने के बावजूद अब तक जितने मुसलमान उनके सम्पर्क में आये थे उनमें से कोई भी वैसा बुरा नहीं निकला। कई तो उनकी नज़र में हीरा थे। जैसे कि ख़ुद सुहैल अब्बास। लेकिन इस वक़्त नफ़रत की एक लहर उनकी रीढ़ से उठकर दिमाग़ पर धुँध की तरह छा गयी और वह उसी तरह सोचने लगे जिस तरह नफ़रत की लहर चाहती थी। इसी बीच उन्होंने सुहैल अब्बास की फाइल दोबारा पढ़नी शुरू की, अब वह फाइल पर कंसंट्रेट नहीं कर पा रहे थे क्योंकि उनके ज़िहन में पाँच-सात सौ वर्षों का इतिहास अपने पन्ने फड़फड़ा रहा था और मोहम्मद ग़ौरी से लेकर औरंगज़ेब तक आक्रमणकारी और ज़ालिम शासक नंगी तलवारें उठाये उनके ज़िहन में ख़ून के छींटे उड़ा रहे थे। इसी तरह फाईल पढ़ते हुए जबकि उनका ज़िहन एक तरह के गुबार से भरा था, उन्हें लगा कि सुहैल अब्बास के विरुद्ध केस बनता है। वह इधर-उधर से फाईल पढ़ रहे थे और रीढ़ से लहर लगातार उठ रही थी और वह तेज़ी से इस नतीजे की तरफ़ बढ़ रहे थे कि सुहैल के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त सुबूत हैं। चुनांचि अपनी समझ से पूरी तरह ग़ौर करने के बाद वह जिस नतीजे पर पहुँचे उसके मुताबिक उन्हें फाइनल कमेंट यही लिखना था कि चूँकि सुहैल अब्बास ने सरकारी मशीनरी का ग़लत इस्तेमाल किया है और जाँच कमिटी की रिपोर्ट से वह साबित है इसलिए उसे नौकरी से बरख़ास्त किया जाये। वह गुरुवार था, अगले दिन गुड फ्राइडे की छुट्टी थी और उसके बाद शनिवार और रविवार की छुट्टी। तीन दिन तक वह किसी डाइलेमा में नहीं रहना चाहते थे, इसलिये उन्होंने उसी वक़्त अपने पी.ए. को बुलवाया और सुहैल अब्बास का सस्पेंशन आर्डर टाईप करवा दिया।

इस सारे काम में उन्हें काफी देर हो गयी लेकिन उन्हें इस बात का संतोष था कि केस का निपटारा कर दिया है हालाँकि इस वक़्त उनको पसीना बहुत आ रहा था और उनका माथा भी गरम हो रहा था। तब तक उनकी चार्टर्ड बस निकल चुकी थी। अब साधारण बस में धक्के खाते हुए घर जाना पड़ेगा— उन्होंने सोचा। शर्माजी एक सरकारी कॉलोनी में रहते थे जहाँ उन्हें तीन बेडरूम वाला मकान मिला हुआ था। लेकिन यह जगह दफ़्तर से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज़रा दूर थी। शर्माजी के पास अपनी गाड़ी नहीं थी जबकि उनके साथ के ज़्यादातर अफ़सरों के पास कारें थीं। लेकिन वह ईमानदार अफ़सर थे। कभी रिश्वत नहीं ली। कोई कमीशन नहीं खाया। वह आगरे के पंडित थे। जाग़ीरदार घराने से थे। ज़मीनदारी छिन जाने के बाद वह ख़ुशहाली नहीं रह गयी थी। लेकिन वह रख-रखाव और अदब-आदाब उनमें बाक़ी था। कभी उनके और ज़मींदार सैयद अली के घराने में बड़ा रब्त-ज़ब्त था। लेकिन वह मुहम्मद अली जिन्नाह के आन्दोलन की भेंट चढ़ गया। देश जब आज़ाद हुआ शर्मा होश सम्भाल चुके थे। उसके बाद कच्ची उम्र में जो कुछ उन्होंने देखा और पढ़ा और समझा उसमें सैयद अली के ख़ानदान की कोई जगह नहीं थी। इसी बीच ज़मीदारी छिन गयी। पुश्तों से शिक्षा-दीक्षा का रिवाज़ था। वह काम आया। चाकरी के नाम पर कुछ उलझे भी। बाप-दादाओं ने कभी नौकरी नहीं की थी। लेकिन उन्होंने की। और अब वह इस बात से काफ़ी संतुष्ट थे कि वह एक ऐसे सरकारी पद पर बैठे हैं जहाँ उनके पास बहुत सा पावर है। उससे भी ज़्यादा उन्हें इस बात का इत्मीनान था कि एक ऐसे समाज में जहाँ हर तरफ़ रिश्वत और बे-ईमानी का ज़ोर है वह अपनी ईमानदारी पर क़ायम थे। इस ईमानदारी की वज़ह से उनके पास कार नहीं है। हाँ! एक बुलेट मोटर साइकिल है। लेकिन वह अब बहुत पुरानी हों चुकी। परेशान करती है। इसलिए इधर कुछ दिनों में उन्होंने बस से दफ़्तर आना-जाना शुरू कर दिया है। सोचते हैं कुछ पैसे जमा हो जाये तो पुरानी मोटर साईकिल बेच कर नयी ले लें। कार का ख़्याल शायद उन्हें कभी नहीं आया।

वह अभी बाहर निकल रहे थे कि कार का हॉर्न बिल्कुल उनके पास आकर बजा। उन्होंने पलट कर देखा। कुरैशी साहब! एक्ज़ेक्टिव इंजीनियर। इसी ऑफ़िस में सिविल कंसट्रक्शन विंग के इनचार्ज थे। उम्र में उनसे छोटे लेकिन उनके बराबर पद के अधिकारी। वह उसी कालोनी में रहते थे जहाँ शर्माजी थे। कार का शीशा खुला, "आइये शर्माजी। घर ही तो चलना है।" शर्माजी कुरैशी को पसन्द नहीं करते थे क्योंकि वह बड़ा घूसखोर था। कुरैशी मुज़फ़्फ़र नगर के किसी गाँव के एक ग़रीब घोसी का बेटा था जिसने डिप्लोमा करके सरकार में दे दिलाकर नौकरी हासिल कर ली थी। उसके बाद जगह-जगह तिगड़म भिड़ाकर प्रोमोशन पाता चला गया। यह सब अपनी जगह। सबसे बुरी बात यह थी कि वह आदमी था बड़ा उथला। पैसा खाने वाला, पैसा बनाने वाला और पैसे की ही बात करने वाला। और इस वक़्त तो उससे घृणा करने की एक और वजह भी थी शर्मा जी के पास। कुरैशी ने ख़ुद ही कार का दरवाज़ा भी खोल दिया। शर्मा जी भारी मन से बैठ गये। मगर चुप। वह राजनीति और समाज के बारे में बातें करना पसन्द करते हैं। लेकिन साथ बैठे हुए इस आदमी से आज ऐसे किसी विषय पर बात करना कुछ ठीक नहीं होगा— उन्होंने सोचा। कुरैशी ने आदत के मुताबिक दफ़्तर के एक ऐसे मामले की बात छेड़ दी जिसका सम्बन्ध घुस से भी था। तो क्या? इसे कुछ नहीं मालूम। हालाँकि उसके पास मोबाइल फ़ोन भी था। वह बोलता रहा और शर्मा जी कुछ और सोचते रहे।

साढ़े आठ बजे के राष्ट्रीय समाचार में बताया गया कि फ़साद पूरे-पुराने शहर में फैल गया था। कई लोग मारे गये। एक धार्मिक स्थल को भी नुकसान पहुँचा। उसके बाद हर तरफ़ क़र्फ़्यू लगा दिया गया है। जिस सम्बन्धी ने उन्हें दंगे की सूचना दी थी उससे अब सम्पर्क नहीं हो सकता था क्योंकि फ़साद-ज़दा एलाकों की टेलीफोन लाईनें काट दी गयी थीं।

उस रात शर्माजी बहुत बेचैन रहे। हालाँकि उनकी कॉलोनी पुराने शहर से पन्द्रह किलोमीटर दूर थी जहाँ तक दंगे का धुँआ भी पहीं पहुँच सकता अगर अख़बार और टी.वी. न हों। उस रात उनके सपने में उन किताबों के पन्ने फड़फड़ा रहे थे जो उन्होंने नाउम्मीदी में पढ़ी थी। उनके सपने में तरह-तरह से वह देश आ रहा था जहाँ सोने की चिड़ियाँ रहती थीं। उस देश का नक्शा जो उन्होंने किस्सों, कथाओं और मिथकों को जोड़-जोड़े ख़ुद रचा था। फिर उनके नक़्शे पर एक अँधेरा छा जाना जिसपर मोहम्मद बिन क़ासिम, बाबर और औरगंजेब जैसे नामों के भूत दनदनाते फिरते और वह चौंक कर उठ पड़ते।

उनके यहाँ दो अख़बार आते थे। राजनैतिक ख़बरों के लिये वह अंग्रेजी के अख़बार पढ़ते और सामाजिक एवं धार्मिक ख़बरों के लिए हिन्दी के। मगर आम तौर पर ऐसे अख़बारों और पत्रिकाओं को वह बस उलट-पुलट कर ही देखते थे। उस सुबह उन्होंने पहले हिन्दी अख़बार खोला— "तीन हिन्दू युवाओं की हत्या, मंदिर में आग लगा दी गयी और पुलिस मुँह देखती रही। मौलवी ने मंदिर में घुसकर एक भगत को पीटा। दंगा भड़काने वाले कर्फ़्यू के बाद भी नारा-तकबीर लगाते फिरे।"

रात की बद-ख़्वाबी के बाद सुबह ऐसी भड़काने वाली सुर्ख़ियों ने जलती पर तेल का काम किया। कल शाम से वह जिस गुस्से को सोचने से अपने आपको रोक रहे थे वह इस तरह चल पड़ा जैसे गन्दा नाला दरिया में गिरता है।

उन्होंने उसी वक़्त अख़बार को एक पत्र लिखा— 'मुसलमान दंगा शुरू करते हैं' के शीर्षक से। उन्होंने लिखा : "इस दंगे ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि अब तक जितने दंगे हुए हैं वह मुसलमानों ने शुरू किये हैं। यह उन जालिम राजाओं के उत्तराधिकारी हैं जो हिन्दुओं के ख़ून के प्यासे थे। उन्होंने इस देश के दो टुकड़े कराये। पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं और सिक्खों का नरसिंहार किया। इस देश के नेताओं और धार्मिक एवं सामाजिक चिन्तकों को इस विषय पर ग़ौर करना चाहिए कि मुसलमानों के इस आक्रमक तेवर से कैसे निपटा जाये। चिन्ता का विषय यह है कि पुलिस और प्रशासन भी हिन्दुओं को कटते-मरते और मंदिरों को जलते हुए देखकर चुप्पी साध लेते हैं। अब समय आ गया है कि हिन्दू समाज इस विषय पर गम्भीरता से सोचे कि उसे अपने ही देश में चैन और आत्म-सम्मान के साथ जीने के लिए क्या कोई कड़ा रुख़ नहीं अपनाना चाहिए।"

चूँकि वह सरकारी कर्मचारी थे इसलिए इस तरह की चिट्ठी अपने नाम से नहीं लिख सकते थे। नीचे उन्होंने एक फर्ज़ी नाम श्यामा प्रसाद मुखर्जी लिखा। फिर उन्हें ख़्याल आया कि श्यामा प्रसाद मुखर्जी उनके आदर्श ही सही लेकिन इस नाम से पत्र छपेगा तो पाठकों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय ज्ञानपीठ की नयी पुस्तकें

सेवानगर कहाँ है (कहानी) : ज्ञानप्रकाश विवेक

पृष्ठ 140, मूल्य 100 रु.

ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानियों में अपने समय की तहरीर ही नहीं, सामाजिक हस्तक्षेपों की आवाजें भी शामिल हैं। कहानियों में बदलते जीवन मूल्यों की बेचैन कैफ़ियत... सम्बन्धों के द्वन्द्व से पैदा हुई व्याकुलता तथा स्मृति की थरथराती छायाएँ हैं। नये समाज में जो असुरक्षा का भाव तथा अकेलापन, चहलकदमी करते चले आये हैं, उनकी अन्तर्ध्वनियाँ भी इन कहानियों में निरन्तर सुनाई देती हैं।

ऋतुराज (उपन्यास) : निर्मल कुमार

पृष्ठ 528, मूल्य 395 रु.

निर्मल कुमार की जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के जीवन और दर्शन पर केन्द्रित बृहत् औपन्यासिक कृति। प्रशस्त जीवन के मूल्य और लक्ष्य दोनों की मार्मिक अनुभूति करा देने वाला है इसका कथातत्त्व। 'ऋतुराज' यानि जीवन-संघर्षों और यातनाओं के बीच मनुष्य के अन्तस् में पल रहे विश्वास, सत्य, सौन्दर्य और प्रेम की अटूट गाथा। एक असाधारण रचना।

अनहद (विश्लेषण) : कैलाश वाजपेयी

पृष्ठ 224, मूल्य 175 रु.

कैलाश वाजपेयी ने रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त समाजशास्त्र, राजनीति, दर्शन, प्रमात्ता भौतिकी, जैव विज्ञान एवं गहन पारिस्थितिकी आदि का कैसा और कितना प्रच्छन्न प्रभाव हम सबकी जिन्दगी को किस ओर ले जा रहा है, इन प्रश्नों से उलझते हुए 'अनहद' में वैदिक युग से लेकर अब तक की अनेक स्थापनाओं और उनसे उद्भूत प्रपत्तियों को अपनी समझ के सहारे प्रस्तुत किया है।

हरा-भरा अकाल (उपन्यास) : केशुभाई देसाई

पृष्ठ : 224, मूल्य : 170 रु.

मानवीय संवेदना के बेजोड़ शिल्पी गुजराती कथाकार केशुभाई देसाई की एक अद्भुत संरचना है यह उपन्यास— 'हरा भरा अकाल'। इसमें एड्स जैसी विभीषिका के परिप्रेक्ष्य में मानव-मन की गुत्थियों का मार्मिक विश्लेषण एवं प्रेम तत्त्व की प्रबल शक्ति का कलात्मक चित्रण है। कथानायक एस.पी. आशुतोष यादव की डायरी के रूप में प्रस्तुत इस उपन्यास के हर पन्ने पर उसका पात्र अपने 'स्व' को टटोलता नजर आएगा। वह स्वयं अपना एनेलिसिस करता है, जहाँ दम्भ या बनावट की कुछ भी गुंजाइश नहीं रहती।

अकाल सन्ध्या (उपन्यास) : रामधारी सिंह दिवाकर

पृष्ठ : 290, मूल्य : 225 रु.

ग्रामीण जीवन के कुशल कथा-शिल्पी रामधारी सिंह दिवाकर का यह उपन्यास 'अकाल सन्ध्या' बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रहे गाँवों का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। ध्वस्त होती सामन्ती ग्रामीण व्यवस्था के बरअक्स जो नयी समाज-व्यवस्था उभर रही है, उसके शुभ-अशुभ पक्षों को कथाकार ने पूरी तन्मयता से उकेरा है। स्थापित मान-मूल्य टूट रहे हैं, लेकिन इनकी जगह जो नयी समाज व्यवस्था सामने आ रही है उसमें सामाजिक मूल्यों की वापसी के चिन्ताजनक संकेत परेशान करने वाले हैं।

आदमी के अरण्य में (कविता) : अमृता भारती

पृष्ठ : 204, मूल्य : 175 रु.

हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका एवं कवयित्री अमृता भारती का ज्ञानपीठ से प्रकाशित नवीनतम काव्य-संग्रह है। अमृता जी स्वयं लिखती हैं, 'कविता जो सुख थी, किताबें जो मित्र थीं, लोग जो बन्धु भी थे और शत्रु भी — सब जैसे परदे की तरह गिर गये हैं। मैं अपनी कविताओं में एक ऐसे अरण्य का अनुभव करती हूँ, जहाँ पहले कोई नहीं आया। आदमी का अरण्य मानो मेरा अपना ही अरण्य है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शक होगा। अतः उसे काटकर लिखा : श्यामा प्रसाद। नीचे ऐसा ही एक फ़र्ज़ी पता लिखा।

उस सुबह अख़बार 'सदा-ए-मिल्लत' की सुर्ख़ी थी : भागलपुर, मेरठ, मुरादाबाद के बाद मुसलमानों का एक और क़त्ले-आम शुरू : मस्जिद के मीनार पर बम फेंका गया। पुलिस की गोली से कल्माए-हक़ पढ़ते हुएसात जवान शहीद। मुसलमानों पर दारोगीर का सिलसिला शुरू। पुलिस के जवानों ने घरों में घुसकर मुसलमान औरतों की आबरू-रेज़ी की।

वह शुक्रवार था। कर्फ़्यू के बावजूद कुछ लोग माइक लेकर गलियों में ऐलान करते फिरे कि मुसलमान जुमा की नमाज़ जमात के साथ अदा करें। प्रशासन को मजबूर करें कि वह जुमा के समय कर्फ़्यू उठाये। यह ख़बर इधर और उधर दोनों तरफ़ आग की तरह फैली। एक तरफ़ वह थे जो जुमा की नमाज़ पढ़ने के लिए सिर कटाने को तैयार थे, दूसरी तरफ़ वह लोग थे जो इस अवसर पर उनके सिर काटने की तैयारी कर रहे थे। पुलिस चौकस थी, प्रशासन सख़्त। जमात की इजाज़त नहीं दी गयी। कर्फ़्यू के बावजूद दिन ढलते ही फिर दंगे शुरू हो गये। अगली सुबह 'सदा-ए-मिल्लत' की सुर्ख़ी थी— दारुलहरब में मुसलमान अपने दीनी फ़रीज़े से महरूम— पुलिस और इन्तज़ामिया का फिरक़ापरस्ताना फैसला, मुसलमानों को नमाज़े-जुमा की इजाज़त नहीं दी गयी। देश भर के मुस्लिम रहनुमाओं ने इस बात पर इन्तज़ामिया की मज़म्मत की और मुल्कगीर पैमाने पर एहतिजाजी मुज़ाहिरों को धमकी दी।

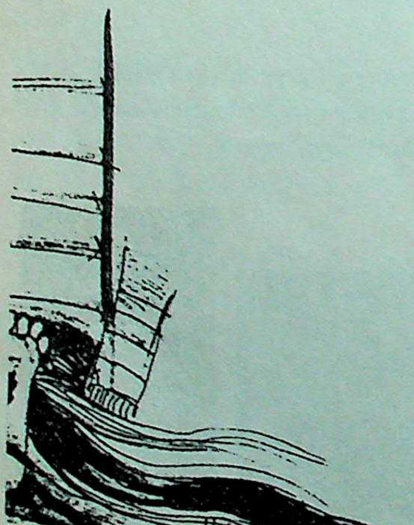

हिन्दी अख़बार ने सुर्ख़ी लगायी : दंगों में चार और हिन्दू युवाओं को हत्या, कर्फ़्यू का उल्लंघन करके मुसलमानों ने पढ़ी जुमा की नमाज़ मुसलमान गुंडे बम और पिस्तौल लेकर आज़ादी से घूम रहे हैं, प्रशासन लाचार और निकम्मा।

इन ख़बरों ने शर्मा जी को एक बार फिर पत्र लिखने पर उकसाया। आज वह कल से ज्यादा तेवर में थे, मुसलमानों-भारत छोड़ो।

''मुसलमानों को चाहिये कि इस देश के शान्ति-प्रिय और अहिंसावादी हिन्दुओं का जीना दूभर करने के बजाय वह इस देश से निकल जायें। सन सैंतालिस में वह एक देश ले चुके अब उन्हें इस देश में रहने और यहाँ अशान्ति फैलाने, दंगे भड़काने और व्यवस्था का मुँह चिढ़ाकर अपनी ज़िद पूरी करने का क्या अधिकार है। मैं समझता हूँ कि आज सारा हिंन्दू समाज उन संगठनों के साथ है जिन्होंने दो-टूक यह कह दिया है कि मुसलमानों को इसे देश में रहना है तो 'वन्देमातरम्' कहना होगा। या तो वे हिन्दू बनकर रहें या भारत छोड़कर अपने प्रिय देश पाकिस्तान चले जाये। आवश्यकता इस बात की है कि सारा हिन्दू समाज ऐसे संगठनों और पार्टियों को अपना पूरा सहयोग दे ताकि मुसलमानों को इस देश से बाहर निकाल कर इस धरती पर गंगा जल का छिड़काव करके इसे फिर से पवित्र किया जा सके—निर्मल पाण्डे।''

उधर पुराने शहर में दिनभर की शान्ति के बाद शाम ढले ही फ़साद शुरू हो जाता। कर्फ़्यू भी जारी रहा और दंगे भी। हिन्दी समाचार पत्र में किसी श्याम प्रसाद, किसी निर्मल पाण्डे, किसी रामनाथ चतुर्वेदी, दीबन्धु राठौर किसी फ़ला किसी ढिमका की ऐसी ही ज़हरीली चिट्ठियाँ छपती रहीं। सदाए-मिल्लत अपनी ख़ून-आलूद सुर्खियों की वजह से धड़ा-धड़ बिकने लगा। कौम के शुभचिंतकों ने पार्लिमेंट का घेराव करने का प्रोग्राम बनाना शुरू किया। संयुक्त राष्ट्र में बात उठाने की धमकी दी। अरब देशों से अपील की गयी कि वे भारती सरकार पर दबाव डाले कि मुसलमानों का कत्लेआम बन्द किया जाये। लेथू पर निकलने वाले एक पेपर में, जो ढाई-तीन सौ छपता था और केवल डी.ए.वी.पी के विज्ञापन लेने के लिए निकलता था किसी 'ख़ादिमे-मिल्लत' का पत्र छपा कि यह वक़्त है कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान पर हमला करे। तमाम कलमा-गो अपने दोनों भाइयों का साथ देंगे और हिन्दुस्तान पर कश्मीर से कन्याकुमारी तक पाकिस्तान का पर्चम बुलन्द होता हुआ नज़र आएगा, इनशाअल्ला।

इस सारे अर्से में फ़ख़रू नटराज अस्पताल में ज़िन्दगी और मौत की जंग लड़ते रहे। पाँचवें दिन उन्हें इतना होश आ गया था कि वह समझ सकें कि वह कहाँ है और यहाँ क्यों हैं। और उन्हें हल्का-सा एहसास इस बात का था कि उनके कुछ ग़लती हुई थी। क्या और कैसे, यह अभी कुछ साफ़ याद नहीं आ रहा था।

कई दिन से सुहैल अब्बास सस्पेन्शन आर्डर लेकर परेशान फिर रहा था। उसे नौकरी की परवा नहीं थी। अब उसके सामने आत्म-सम्मान का सवाल था। वह दोषी ठहरा कर धितकार दिये जाने के ग़ुस्से से पागल हो रहा था, पिछले दो दिन से वह निरन्तर शर्मा जी से मिलने की कोशिश कर रहा था, वह उनसे केवल यह पूछना चाहता था कि उसकी सलाहियत और मेहनत का क्या उसे यही फल मिलना था, नौकरी की कोई बात नहीं। अभी अदालत के दरवाज़े खुले हैं और सुहैल को यक़ीन था कि वह वहाँ से जीतकर आयेगा। लेकिन शर्मा जी ने अपनी पी.ए. को बिल्कुल मना कर रखा था। वह नहीं चाहते थे कि सुहैल अब्बास उनके सामने आए और वह अपने निर्णय पर दुबारा ग़ौर करने के लिए किसी भी तरह के डायलेमा में पड़ें। पिछले कई दिनों से उनके भेजे हुए पत्र फ़र्ज़ी नामों से छप रहे थे। आज का पत्र था— मुसलमान ग़द्दार हैं।

हफ़्ते भर बाद फ़ख़रू मियाँ को अच्छी तरह होश आ गया। ख़ैर से उन्हें सारी बातें याद थीं। इस बीच जो कुछ हुआ उसके बारे में भी उन्हें मालूम हो गया और उन्हें अपने किये पर पछतावा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होने लगा। उनका ख़्याल था कि अगर वह उसे रिक्शे वाले को इस तरह न मारते तो बात न बढ़ती कोई दंगा नहीं होता। लेकिन उन्होंने एक बेबसी के साथ सोचा, उनका भी क्या कमरा। मैंने तो जो कुछ किया उस बेईमान लाले के कारण...।

फ़साद का जोर कम पड़ने लगा। आख़िर कोई कब तक लड़े और क्या ख़ाकर लड़े! जब लोग अनाज पानी को तरसने लगे तो फिर इन ख़बरों पर कोई कितना ध्यान दे कि इधर वाले कितने मारे गये और उधर वाले कितने। फिर बच्चों की पढ़ाई ख़राब हो रही है। किसी को अपने बाप को आँख के ऑपरेशन के लिए अस्पताल ले जाना है, किसी की ज़चगी के दिन पूरे हो रहे हैं। किसी को बेटी का रिश्ता तय करने जाना है, किसी लड़की को अपने पड़ोस के लड़के से टेलीफोन पर बात करनी है। यहाँ सैकड़ों काम पड़े हैं भई!

दफ़्तर खुल जाने के बाद शर्मा जी की व्यवस्थाएँ बढ़ गयीं। वह कुछ भी सोचा करें। उनकी ज़िम्मेदारियाँ बड़ी हैं। उन्हें ढेरों फाइलें निपटानी होती हैं, इसलिये अब चिट्ठियाँ लिखने का जोश कम पड़ गया। फिर कुछ ही दिनों बाद अहमदाबाद से उनके बेटे का फोन आया जो वहाँ के मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट में एमबीए कर रहा था। उसने बताया कि अगले महीने फाइनल सेमिस्टर की फीस भरनी है। फीस भरने की फ़िक्र में लग गये। कुछ पैसे जो उन्होंने मोटर साइकिल के लिये रखे हैं वे काम आ जायेंगे। बाकी के बारे में सोचते हुए वह रोज़ अख़बार खोलना भूल जाते।

लेकिन और लोग जो अख़बार पढ़ रहे थे। कॉलोनी में भी और बाहर— शहर में, गाँव में कस्बों में, छोटे-छोटे मुहल्लों में नाई की दुकानों पर, चायखानों में। ख़ासकर वे युवक जिन्हें न अभी बेटे की फीस भरने थी, न मोतियाबीन का ऑपरेशन करवाने की फिक्र, वे ऐसी ख़बरों और मुसलमानों भारत छोड़ो, और भारत में रहना है तो वन्देमातरम कहना होगा और हिन्दुस्तान हिन्दू का है जैसे पत्र जोश और उत्तेजना के साथ पढ़ रहे थे।

शर्माजी बेटे की फीस की चिन्ता में ऐसे लगे कि वह इस बात से करीब करीब बेख़बर ही रहे कि कॉलोनी में कैसी उमस फैली हुई है और उनकी नज़र से दूर अनगिनत बस्तियों और आबादियों में कैसी गरम हवा चल रही है। वह अपनी परेशानी में परेशान थे। ज़िन्दगी कितनी मुश्किल हो गयी है सच! उनके पुरखों ने ऐसी परेशानियाँ नहीं देखी होंगी। उन्होंने थोड़ी बेबसी से सोचा। अभी कुछ महीनों पहले एक और परेशानी ने उनकी नींद उड़ा रखी थी। एक ऐसी परेशानी जिसका ओर-छोर कुछ दिखाई नहीं देता था, बस सुनाई देता था। जैसे छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में देर तक बिन-बियाही रह जाने वाली लड़कियों पर प्रेत आने लगते हैं और वे झूम-झूमकर अपने आशिक़ होने का ऐलान करते हैं और कभी लड़की को अपने साथ अपनी आसेबी दुनिया में उठा ले जाने की धमकी देते हैं, ऐसे ही उनकी बेटी निशा के लिये, चौड़े कांधों और गोरी हथेलियों वाली निशा के लिए, ब्लैंक कॉल आने लगे थे। अब तक ज़िन्दगी मज़े से कट रही थी। बेटा एमबीए कर रहा था, बेटी कॉलेज जा रही थी, दफ़्तर में उनके कमरे में ए.सी. लग गया था और उनके पास राजनीति और समाज पर बात करने के लिए समय था। कि अनायास निशा के लिये ऐसे फ़ोन आने लगे जिसमें कभी उससे प्यार जताया जाता और कभी उठा ले जाने की धमकी। चार दिन में निशा पीली पड़ गयी। इस शहरी प्रेत की झाड़ कौन ओझा करे! पुराने संस्कारों में पले शर्मा जी नये शहर की इस अनदेखी मुसीबत से बहुत घबरा गये और इतने तनाव में रहने लगे कि कभी टेलीफोन कटवा देने की बात सोचते, कभी कॉलोनी छोड़ देने की और कभी-कभी तो शहर ही छोड़ देने की। हर आते-जाते को शक़ की निगाह से देखते। कोई उनसे बात करता तो वह बात सुनने की बजाये आवाज़ पहचानने की कोशिश करते कि कहीं यह वही तो नहीं...! मगर ख़ैर से यह बला भी टल गयी। उनके ख़्याल में पुलिस वालों ने तो कुछ ख़ास मदद नहीं की मतलब यह कि किसी को संदिग्ध मानकर उसकी धुनाई नहीं की। लेकिन उनके कहने पर टेलीफोन एक्सचेंज वालों ने उनके कॉलमॉनिटर करने शुरू कर दिये। उसके बाद जैसा कि होता है, बेनामी कॉल आने बन्द हो गये। अब शर्मा जी ने कुछ इत्मीनान की साँस ली। मगर चोर पकड़ा नहीं गया था इसलिए धड़का अभी ख़त्म नहीं हुआ था। अब बेटे की फीस की चिन्ता आ गयी। बीवी ने उसमें एक और चिन्ता जोड़ दी। उसका कहना था कि अब निशा के हाथ पीले करने की सोचना चाहिए।

ज़िन्दगी में उनके लिये कठिनाइयाँ थीं तो ईश्वर की कृपा से कुछ आसानियाँ भी। मसलन यही कि गये गुज़रे फिर भी गाँव में कोई चालीस बिघा खेत थे जो उन्होंने अपने बड़े बहनोई की देख-रेख में छोड़ रखा था। नियम से तो उन्हें बटाई का ग़ल्ला काफी मिलना चाहिये था लेकिन जीजा जी हर साल कोई न कोई बहाना बनाकर उन्हें उनकी जरूरत भर के चावल दाल देकर टरका देते थे। शर्मा जी नेसोचा इन खेतों का क्या भरोसा। क्या पता कब किसी की किसी को क्या, ख़ुद जीजा जी की नियत ख़राब हो जाये और वह खेत हड़प कर लें। जब उन्होंने अपने सगे भाई की ज़मीनें हड़प कर लीं तो शर्मा जी तो ख़ैर साले हैं, छोटे हैं और शहर में रहते हैं।...तो उन्होंने सोचा आधे खेत बेच दिये जाये। काफ़ी पैसे आ जायेंगे। विकास की फीस भी, निशा की शादी का ख़र्च भी और यक़ीनन नयी मोटर-साइकिल भी। हाँ, यह बिल्कुल ठीक उपाय है।

चुनाँचे शर्मा परिवार ने आगरा जाने की तैयारियाँ शुरू कीं, शर्मा जी ने ऑफिस से दो सप्ताह की छुट्टी ली। श्रीमति शर्मा और निशा ने सगे सम्बन्धियों के लिये छोटे-मोटे तोहफ़े ख़रीदे और उनकी पैंकिंग की। लेकिन उनके रवाना होने से पहले ख़बर आ गयी— आगरा में दंगे भड़क उठने की।

शर्मा जी ने बड़ी झुँझलाहट और परेशानी के साथ 'राष्ट्रीय समाचार' में दंगे की ख़बर सुनी। लेकिन इस ख़बर से फ़साद का कारण उन्हें फ़ौरी तौर पर नहीं मालूम हो सका।

133/21, जाक़िर नगर, ओखला
नयी दिल्ली-110035
फोन: 9810329688

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैक्समूलर धर्म प्रचारक नहीं थे

ललितमोहन बहुगुणा

''प्रोफेसर मैक्समूलर द्वारा दी गयी 'गिफर्ड' व्याख्यानमाला, ईश्वरीय सन्देश, ईसा मसीह तथा ईसाइयत के विरुद्ध धर्मयुद्ध से कम नहीं थी। जिन लोगों ने ईसाई विश्वविद्यालय में, जिसे ईसाईयत की रक्षा के लिए स्थापित किया गया था, ईसा विरोधी मत को प्रचारित करने की अनुमति दी, उनका अपराध भयानक है। यह आश्चर्य की बात है कि एक ईसाई विश्वविद्यालय में, जनता ने इस प्रकार के धर्मद्रोह को सहा है।'' (मैक्समूलर : स्कॉलर एक्स्ट्राआर्डिनरी, ओरिएण्ट पेपर बैक, 1976, पृष्ठ : 362)

प्रो. मैक्समूलर ने ग्लास्गो विश्वविद्यालय में 1888, 1890, 1891 और 1892 में आरोह क्रम में धर्म के ऊपर व्याख्यान दिये जिसमें उन्होंने धर्म के विकास के चार चरण बताये हैं। वे हैं, प्राकृतिक धर्म, भौतिक धर्म, नृतात्विक धर्म और थियोसॉफिकल या मनोवैज्ञानिक धर्म। उपरोक्त टीका सेंट ऐंड्र्यूज रोमन कैथोलिक चर्च के मॉनसिग्नोर ने की है। इस भाषणमाला की जनता में विशेष तीव्र प्रतिक्रिया नहीं हुई, लेकिन जब ये भाषण पुस्तक रूप में प्रकाशित होकर आये, तो एक समीक्षक ने टिप्पणी की— विद्वान प्रोफेसर को सभी धर्मों में कुछ अच्छाइयाँ नज़र आईं, सिवाय ईसाई धर्म के।

पाठक इन अंशों को पढ़कर स्वयं अनुमान लगा सकते हैं, कि क्या मैक्समूलर सचमुच भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के पक्षधर थे?

मुझे ये अंश उद्धृत करने की आवश्यकता इसलिए हुई कि नया ज्ञानोदय में कुछ लेखक और पाठक, अकारण भारत के हितैषी, स्वर्गीय मैक्समूलर पर ईसाई धर्म प्रचार का अभियोग लगा रहे हैं, और उनमें गोरी मानसिकता के अभिलक्षण देख रहे हैं।

जनवरी 07 के नया ज्ञानोदय में 'वेदांतियों का वेदांती : मैक्समूलर' (प्रभात रंजन) शीर्षक वाला लेख, ज्ञान कम और भय अधिक फैलाता है। लेखक ने ग्लैडस्टोन के पत्र के उत्तर में मैक्समूलर के ईसा के दो हजार वर्ष पूर्व के लोगों को ईसा के दो हजार वर्ष बाद के लोगों से मिलाने के सन्दर्भ को, ठीक से नहीं समझा है। मैक्समूलर आर्यजाति के सिद्धान्त की बात पुरातत्त्व या नृविज्ञान के अनुसंधान के आधार पर उपजी धारणा से नहीं, बल्कि भाषा शास्त्र के आधार पर भारोपीय परिवार की भाषाओं में पाई जाने वाली समानता के आधार पर योरोप को भारत से मिलाने की बात कर रहे थे। यह विचारधारा केवल मैक्समूलर की नहीं थी बल्कि 19वीं सदी के यूरोप के सभी संस्कृतविद मानते थे कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, प्राचीन जर्मन अवेस्ता एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और इनका व्याकरण बहुत मिलता जुलता है।

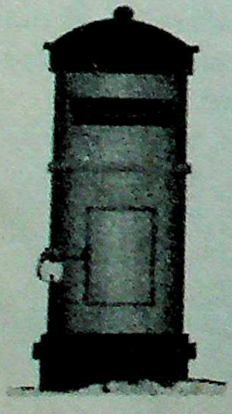

दूसरी भाँति जो इस लेख से पैदा होती है कि मानो मैक्समूलर लाइपज़िग विश्वविद्यालय से शिक्षा पूरी करके सीधे नौकरी की तलाश में इंग्लैड चले गये और जहाँ चार शिलिंग प्रति पृष्ठ की दर से ऋग्वेद के अनुवाद का काम शुरू कर दिया। कैलाश वाजपेयी के पत्र से भी यही ध्वनि निकलती है।

दरअसल मैक्समूलर का बचपन कठिन संघर्ष में बीता। उनकी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा देसाऊ में हुई। उसके बाद वे लाइपज़िग चले गये जहाँ अपने परिवार के एक मित्र प्रोफेसर कारुस के घर पर रहकर उन्होंने पाँच वर्ष तक स्कूली शिक्षा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरी की। फिर ढाई वर्ष में विश्वविद्यालय से डॉक्टर की डिग्री ली। विश्वविद्यालय की पढ़ाई के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिली थी। 6 महीने उन्होंने पं. विष्णु शर्मा रचित हितोपदेश का जर्मन भाषा में अनुवाद किया, अपने पिता की कविताओं का संपादन किया तथा उसमें अपनी कुछ कविताएँ भी जोड़ीं और उन्हें प्रकाशित किया।

लाइपज़िग में उनका क्लासिकल भाषाओं के प्रति रुझान हो गया था और उन्होंने संस्कृत के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के अध्ययन का मन बना लिया था और वहाँ से पढ़ाई समाप्त करने के बाद वे बर्लिन जाकर फ्रैंज बॉप भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण के रचयिता तथा दार्शनिक शेलिंग के सम्पर्क में आये। बर्लिन में उनके पास कोई छात्रवृत्ति नहीं थी। साढ़े सात पौण्ड की जमा पूँजी लेकर वे यहाँ आये थे। स्वाध्याय से उन्होंने भारतीय भाषाएँ— बंगला, हिन्दुस्तानी, तमिल सीखीं और संस्कृत में विशेषता को अपना क्षेत्र चुना।

उन्हें आद्योपान्त सामान्य लोग सिरफिरा समझते रहे, जो ऐसे धर्म के बारे में अपना समय और श्रम नष्ट कर रहा है, जिसकी कोई उपयोगिता नहीं। लेकिन उनका संकल्प देखिये— ''मैं संस्कृत नहीं छोड़ सकता हालाँकि उससे किसी लाभ की संभावना नहीं है।'' यह बात उन्होंने अपनी माँ की चचेरी बहन एमली से कही थी। एमली का विवाह ड्यूक के भाई के साथ हुआ था। उनकी कोई संतान नहीं थी। वे मैक्समूलर को गोद लेना चाहते थे और उसे कूटनीतिक (डिप्लोमेटिक) सेवा में लेना चाहते थे, जिससे उसका भविष्य सुरक्षित हो जाता। मैक्समूलर ने नम्रतापूर्वक अपनी चचेरी मौसी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

लंदन में आरम्भ में क्या परेशानियाँ हुईं इनकी लम्बी कहानी है। लेकिन वहाँ आकर प्रूशिया के मिनिस्टर बुनसेन की सहायता से मैक्समूलर ने ऋग्वेद के प्रकाशन की योजना बनायी, जिसे अन्तत: ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स की सहमति से प्रकाशित करने की व्यवस्था हो गयी। सो मैक्समूलर लंदन नौकरी की तलाश में नहीं, बल्कि पाण्डुलिपियों के सन्दर्भ खोजने गये थे। तब उनकी आयु 24 वर्ष की थी। बिना किसी आर्थिक साधन के जीविका के लिए उन्हें कुछ काम चाहिए था और ईस्ट इंडिया कंपनी ने उन्हें वेद की प्रतिलिपि के लिए चार शिलिंग प्रति पृष्ठ दिया, जो उनके लिए दुहरा लाभ हुआ। यह उनका प्रिय विषय था और इसके लिए उन्हें अच्छा पैसा मिल रहा था। मिनिस्टर बर्नाफ ने उन्हें पहले अपने बच्चों के ट्यूटर के रूप में काफी मोटे वेतन पर रखना चाहा था, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। सो उनका संघर्ष पैसे के लिए नहीं था। कैंब्रिज में भारत की सिविल सेवा के लिए आने वाले अंग्रेज प्रशिक्षार्थियों को सम्बोधित उनके प्रसिद्ध भाषण का यह अंश क्या प्रमाणित करता है? कि वे मिशनरियों की सहायता कर रहे थे?

''अगर कोई मुझसे पूछे कि सारी पृथ्वी में ऐसा कौन-सा देश है, जिसे प्रकृति ने सर्वाधिक संपत्ति, सुन्दरता और शक्ति प्रदान की है, जहाँ मानव-मस्तिष्क संपूर्ण रूप से विकसित हुआ है, तो मैं भारत की ओर इंगित करूँगा।''

उन्होंने यह भाषण उन अंग्रेज युवकों को दिया था, जिन्हें उनकी सरकार लिखित दिशानिर्देश देकर भेजती थी, जिनका पहला बिन्दु होता था कि हिन्दुस्तानी लोग झूठे होते हैं। ऐसे परिवेश में मैक्समूलर भारत के कट्टर विरोधी जॉन स्टुअर्ट मिल, लार्ड मैकॉले, अमरीका के संस्कृतज्ञ ह्विटनी से लड़ते रहे। ऐसे अकारण हितैषी, विद्वान के बारे हिन्दी के लोगों का यह दुराग्रह वास्तव में कष्ट देता है।

मैक्समूलर की भारत यात्रा

मुनव्वर हुसैन, गोरखपुर

'नया ज्ञानोदय' के जनवरी 07 अंक में 'उनका भारत' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रभात रंजन का लेख— 'वेदान्तियों के वेदान्ती : मैक्समूलर' पढ़ा। लेखक का यह कथन सही नहीं है कि मैक्समूलर ने कभी भारत की यात्रा नहीं की थी। मैक्समूलर ने न केवल भारत की यात्रा की थी अपितु वेदों को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय भी मैक्समूलर को ही जाता है। लिखित रूप में प्रकाश में आने से पूर्व यह ग्रंथ वेदपाठी ब्राह्मणों को कठंस्थ था, जो पीढ़ी दर पीढ़ी कंठस्थ होता चला आ रहा था। वह धर्मग्रंथ जो संसार से छिपाकर रखा गया, उसके सम्बन्ध में पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य ने सामवेद भाष्य की भूमिका में लिखा है— ''आधुनिक युग में वेदों का सर्वप्रथम अन्वेषण करने वाले मैक्समूलर साहब को बीस वर्षों तक अथक परिश्रम तथा अपार धनराशि व्यय करने पर भी केवल सायणाचार्य का भाष्य ही सर्वांगपूर्ण स्थिति में प्राप्त हो सका था। उसी के आधार पर उन्होंने सैकड़ों भारतीय पण्डितों की सहायता से लुप्तप्राय: वेदों को संसार के सम्मुख मुद्रित ग्रन्थों के रूप में प्रकट किया था।''

नयी कहानी

नया ज्ञानोदय का अंक मिला। अंक बहुत अच्छे निकल रहे हैं। नया ज्ञानोदय के लिए कहानी तैयार कर रहा हूँ।

—मार्कण्डेय, इलाहाबाद

कृष्णबलदेव वैद का फोकस

'नया ज्ञानोदय' का दिसम्बर 06 का अंक एक ही बार में शुरू से आखिर तक देख गया। प्रकाशक हूँ इसलिए सबसे पहले मुझे पत्रिका का मुद्रण, उसकी साज-सज्जा और कलापक्ष ने प्रभावित किया। पाठ्य-सामग्री उच्च-स्तर की है और उसमें आपकी मौलिक सम्पादकीय दृष्टि भी झलकती है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य देशी-विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठ सामग्री भी पाठकों के लिए विशेष आकर्षण है। इस अंक में अपने कृष्णबलदेव वैद पर फोकस किया है। अशोक वाजपेयी का लेख उपयुक्त और सार्थक है, साथ ही वैद जी की अपनी लम्बी कहानी भी। प्रत्येक अंक में एक विशिष्ट लेखक पर इस तरह सामग्री दें तो यह पत्रिका की विशेषता भी होगा और उपलब्धि भी। पत्रिका का नया रंग-रूप तो है ही, सम्पादकीय तेवर भी नया है।

—विश्वनाथ, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

चंदन पाण्डेय बाजी मार गये

आपके संपादन में निकला 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका के भविष्य को लेकर आश्वस्त करता है। सामग्री के चयन में परिपक्वता है। साहित्यिक पत्रकारिता के साथ साहित्य में वही भेद है जो समीक्षा और आलोचना में है। मैनेजर पाण्डेय का दाराशिकोह को लेकर लेख खोजपरक तो है ही, आज के साम्प्रदायिकता से प्रदूषित माहौल में प्रासंगिक भी। अशोक वाजपेयी और उदय प्रकाश का संवाद ताजगी भरा महत्त्वपूर्ण है। यह स्तम्भ जारी रहना चाहिए। अमरकान्त के अवदान को रेखांकित कर आपने सही काम किया है। काश आपने अमरकांत के फोटो को कवर पर भी स्थान दिया होता। पत्रिका में कविता को भी पर्याप्त स्पेस देना आपका सही निर्णय है। कवियों का चुनाव भी सही है। चंदन पाण्डेय की कहानी अन्यों से बाजी मार ले गयी। यह अतिमार्मिक और संवेदनात्मक है। पार्टीशन के ज़ख़्म और दर्द को गहराई से छूती है।

—हृदयेश, शाहजहाँपुर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसने कहा था

ज्ञानोदय काफी समकालीन, पठनीय और प्रासंगिक बन गया है। पिछले अंक में डॉ. रविभूषण की उसने कहा था की व्याख्या बहुत अच्छी थी। बचाने के रूपक की उनकी स्थापना ने उस कहानी पर नये सिरे से सोचने को प्रेरित किया।

—मंगलेश डबराल, दिल्ली

नये शब्द की सार्थकता

'नया ज्ञानोदय' बहुत निखरे हुए रूप में हमारे सामने है। इसके 'नया' शब्द को अपने सार्थक किया है। पाठकीय कृतज्ञता के साथ शुभकामनाएँ भी स्वीकारिये।

—ज्ञानेन्द्रपति, वाराणसी

मील का पत्थर

'नया ज्ञानोदय' का अंक मिला। आपके सम्पादन का पहला अंक पहले से आपके दिल्ली आने की सूचना न होने पर भी बता देता कि जनाब दिल्ली आ गए हैं। बहुत कम समय में भी आपके होने की पूरी छाप अंक पर है। 'मील का पत्थर' स्तम्भ बहुत अच्छा है।

—मधुरेश, बरेली

नयी संवेदना नयी बहस

नवम्बर अंक 'नया ज्ञानोदय' का मिला। पूरा अंक पढ़कर खुशी हुई। एक नयी संवेदना, नयी बहस का केन्द्र बना दिया है तुमने 'नया ज्ञानोदय' को। अमरकान्त की 'काँटा' कहानी अपनी सरलता में मानव स्वभाव को खोलती है। विजयमोहन से यह स्तम्भ जरूर लिखवाते रहना।

—विष्णुचन्द्र शर्मा, दिल्ली

सही बदलाव

'नया ज्ञानोदय' का बदलाव सही अर्थों में बधाई योग्य है। इस दृष्टिकोण के सभी कायल हैं।

मधुकर सिंह, बिहार

असुविधाजनक आकार

मैं 1950 से 'नया ज्ञानोदय' का नियमित पाठक रहा हूँ। सम्पादक तब भी बदलते थे। नीतियाँ बदलती थीं। रुचियाँ बदली नज़र आती थीं। 'ज्ञानोदय' का प्रकाशन बन्द हुआ तो उसे अपने नाम से भी वंचित होना पड़ा। ज्ञानपीठ ने इसका पुनःप्रकाशन शुरू कराया तो श्रोत्रिय जी ने 'नया ज्ञानोदय' का भौतिक स्वरूप वही रखा जो आदि से चला आया था। यानी 'नया ज्ञानोदय' को अलमारी में सजा दो तो उसके मोड़ पर 'नया ज्ञानोदय' अंक दूर ही से अंकित दिखे। प्रारम्भ से आज तक लगभग सभी अंक मेरे पास सुरक्षित रखे हैं। बक्षी जी ने माहवार विशेषांक 1966 में निकाला (2 महीने नवम्बर और दिसम्बर) तो मोड़ को आयत की छोटी भुजा पर ले लिया। उन दो अंकों के छोड़कर सारे अंक एक क्रम से रखने में सहूलियत थी। अब यह जो आपने अन्य पत्रिकाओं की तरह बच्चों की अभ्यास पुस्तिका का स्वरूप दे दिया है 'नया ज्ञानोदय' को, वह असुविधाजनक है।

—शत्रुघ्नलाल, बहराइच

बदला हुआ कलेवर

आपके आने से 'नया ज्ञानोदय' का रूप और अन्तर्वस्तु बदलनी थी... विचार नये आयाम और सार्थकता... बदला हुआ कलेवर रोचक है। निश्चय ही बहुत कुछ होगा और 'नया ज्ञानोदय' नवीन चर्चाओं के केन्द्र में होगी।

—तरुण भटनागर, गुना

नया अंक

वागर्थ से आप 'नया ज्ञानोदय' में कब आ गये यह पता ही नहीं चला। अब आपके कुशल संपादन में 'नया ज्ञानोदय' का अंक देखा। बहुत अच्छा निकला है, बधाई स्वीकार करें।

—कँवल भारती, रामपुर

दुआओं भरा प्रोत्साहन

'नया ज्ञानोदय' का नवम्बर अंक देख लिया है। लगा कि इस अंक से ही यह पत्रिका प्रबुद्ध और बारीक एहसासों के आग्रही पाठकों के लिये एक जरूरी पत्रिका हो गयी है। आकार-प्रकार, रंग-ढंग और चयन-परिकल्पना सभी पर आपकी छाप है। ज्यादा ध्यान आकर्षित करने वाली उपलब्धि यह है कि इसमें देदीप्यमान नक्षत्रों की कुछ अच्छी कविताएँ पढ़ने को मिली हैं। मेरी तरफ से दुआओं से भरा प्रोत्साहन स्वीकारें।

—राकेश वत्स, अंबाला

नयी ऊँचाइयाँ

'वागर्थ' की तरह ही आपने लेखकों की नयी पीढ़ी को सामने लाने का जो कार्य किया वह अनुकरणीय है। आपके नेतृत्व में 'नया ज्ञानोदय' नयी ऊँचाइयाँ छुएगा।

—कुन्दनसिंह परिहार, जबलपुर

प्राण प्रतिष्ठा

आपके संपादन में 'नया ज्ञानोदय' का दूसरा अंक आ गया है लेकिन मैं आपको पत्र नहीं लिख पाया। 'नया ज्ञानोदय' को आपने नया रूप देकर पत्रिका में जान डाल दी है। सामग्री भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। नवम्बर अंक में परमश्रद्धेय अमरकान्त जी पर सामग्री है। अन्य रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। दिसम्बर अंक भी उसी तरह आकर्षक और बढ़िया सामग्री से भरपूर है। इस अंक में वैद जी पर सामग्री मील का पत्थर है।

—एस.आर.हरनोट, शिमला

कहानी का खलिहान

सबसे पहले आकर्षित किया— श्री गणेश करनेवाले शिलालेख ने। शहीदे आजम भगत सिंह की लेखनी से काकोरी के शहीदों का संक्षिप्त परिचय धरोहर है। भारत भारती स्तम्भ एक जरूरी स्तम्भ है। उसमें अमृता प्रीतम की 'शाह की रखैल' ने फिर से मन को मथा। बाँधा।

कन्हैयालाल नन्दन जी भी तो विस्मृत करने लायक नहीं हैं। आगे के संस्मरण का इन्तज़ार रहेगा। 'मील का पत्थर' कई कोंपलों को बढ़ने की दिशा देगा। प्रौढ़ वृक्षों के संघर्ष से भी रू-ब-रू कराएगा, ऐसा लग रहा है। कृष्णबलदेव वैद जी साहित्यिक राजनीति से दूर रहकर लेखनरत रहे, यह मुझ जैसों के लिए सच में प्रेरणास्पद है। रविभूषण जी का गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' का विश्लेषण सटीक है। कहानियाँ अच्छी रहीं। पुराने एवं नये अन्नों के मिश्रण से सजी कहानी का खलिहान सुखद आश्चर्य दे गया।

—अनिता रश्मि, राँची

कविता की मंगलेशीय शैली

फरवरी अंक में ज्ञानेन्द्रपति की कविताएँ छापी हैं। कविताएँ अच्छी हैं। दूसरी कविता तो ऐसा लगता है जैसे ग़ज़ल के मिसरे हों। वो अपनी तरह के संश्लिष्ट कवि हैं। कविताओं में दृढ़ता है। वे कई तहों में हैं। धीरे-धीरे खुलती हैं। लेकिन मंगलेश डबराल की कविताओं ने मुझे बहुत ज़्यादा प्रभावित किया। कई बार रचना (कविता) इतनी मुकम्मल और इतनी अधिक अतरंग हो जाती है कि उस पर कुछ भी लिखना खुद को कमज़र्फ़ करने जैसा होता है। इस हंगामाखेज़ माहौल में जहाँ ताक़तवर लोग काबिज़ हो रहे हों और एक कवि बड़ी शिद्दत के साथ कह रहा हो, ताक़त की दुनिया में जाकर मैं क्या करूँगा!

मंगलेश जिस फ़ार्म या शिल्प में कविताएँ रचते हैं, वो मंगलेशीय-शिल्प हो जाता है। हम इन कविताओं के पास जितने करीब जाते हैं, कविताएँ उतनी शिद्दत के साथ हमारे दिल में बस जाती हैं।

स्वदेश दीपक का खो जाना किसी संवेदना के गुम हो जाने जैसा है। ज्ञान चतुर्वेदी ने उन्हें बड़ी आत्मीयता से याद किया। दीपक की सोचता हूँ तो हूक-सी उठती है। ऐसी जटिल दुनिया में किसी लेखक का खो जाना थरथराहट पैदा करता है।

—ज्ञानप्रकाश विवेक, हरियाणा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज़माना बड़े शौक से सुन रहा था हमीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते

❑ मधुकर सिंह ने अपने संस्मरण में बेटी रचना के विवाह में सम्मिलित न हो पाने और उसके लिए कमलेश्वर जी द्वारा खेद व्यक्त करने सम्बन्धी पत्र का जिक्र किया है। कमलेश्वर ऐसी बातों का बहुत ध्यान रखते थे। मेरी बेटी सीमा के विवाह के निमंत्रण के उत्तर में दिनांक 12-1-93 का लिखा उनका आशीर्वाद देता पत्र आया था, जो उन्हें विवाह के दस दिन बाद मिला था।

बीच में मधुकर सिंह के कमलेश्वर जी से मतभेद हो गये थे। बुद्धिजीवियों के बीच मतभेद होना स्वाभाविक है। उस समय जब मधुकर जी इंदौर आये थे तो कथाकार प्रभुनाथ सिंह आज़मी के साथ मेरे निवास पर भी आए थे। आज़मी के अति आग्रह पर उन्होंने मेरे निवास से ही कमलेश्वरजी से दूरभाष पर चर्चा की थी। परिणाम-स्वरूप बादल छँटने लगे थे।

कमलेश्वरजी चार बार इंदौर आये थे। एक बार तो हमने हमारे एक मित्र की अधूरी किताब का लोकार्पण उनसे करवा लिया था उन्हें सबकुछ बताकर। संभवतः इस या अन्य किसी अवसर पर हमने उन दो नवयुवकों को ढूँढकर कमलेश्वर से सार्वजनिक रूप से माफी मँगवायी थी, जिन्होंने कमलेश्वरजी के विचारों के विरोध में अपशब्द भरे गन्दे पत्र लिखे थे। कमलेश्वरजी की उदारता ही थी कि उन्होंने उन्हें सहर्ष क्षमा कर दिया था।

जब कमलेश्वरजी फिल्म-लेखन में व्यस्त थे, तब उस शाम मैंने देखा था कि जे.पी.रोड स्थित फ्लैटनं.28 में वरिष्ठ फ़िल्म-निर्माता ख़ुद सावनकुमार कहानी डिस्कस करने के लिए आये हुए थे। कमलेश्वरजी की ऐसी साख थी कि खुद निर्माता चलकर उनके पास आते थे। सलीम-जावेद के बाद फ़िल्म-जगत में लेखक की साख बढ़ाने में कमलेश्वरजी की अहम भूमिका रही है।

गत 26 जनवरी को कमलेश्वरजी का निधन हुआ। 'नया ज्ञानोदय' ताजे अंक में उनकी जीवितावस्था में ही उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर महत्त्वपूर्ण सामग्री संयोजित कर उनके प्रति जो आदर-भाव प्रकट किया गया, कमलेश्वरजी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का शायद इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता था!

—सूर्यकान्त नागर, इंदौर

❑ आज अपनी पुरानी फ़ाइलों को टटोला, तो उनमें कमलेश्वर जी के दो हस्त-लिखित पत्र मिले। मुझसे किसी पत्रिका-संपादक ने कुछ लेखकों से यह चर्चा करने के लिए कहा था कि लेखक यदि जीवित है तो उसकी रचनावली छापने का क्या औचित्य है। खेद है कि वे प्रश्न अब मेरे पास नहीं हैं। कमलेश्वर जी ने इस बारे में 25.4.01 के अपने पत्र में जो उत्तर दिये थे, उन्हें यहाँ दे रहा हूँ। शायद आप इनका उपयोग 'नया ज्ञानोदय' में करना चाहें।

पहले सवाल का जवाब : लेखक यदि जीवित है, तो हमेशा उसकी रचनावली का संकलन-संपादन उसकी राय से ही होता है। तो इसे वह स्वयं ही कर देता है, तो यह अनुचित स्थिति नहीं है। एक तरीका यह भी सही। यदि कोई अन्य योग्य व्यक्ति संकलन-संपादन करता, तो इसकी गरिमा और बढ़ जाती।

दूसरे सवाल का जवाब : रचनावली में अधिकांश सभी कुछ शामिल रहता है। खाँसी और उबासी तक। इनका निर्मम संकलन-संपादन होना चाहिए। पर ऐसे विद्वान हैं कहाँ जो ऐसा कर सकें। आजकल तो पत्नियाँ और लेखक की संतति ही यह दुर्लभ दायित्व उठा रही हैं, जो कहीं-कहीं ज़रूरत से ज़्यादा मोहग्रस्त हैं।

तीसरे सवाल का जवाब : मेरी दृष्टि में ऐसा कोई अन्य लेखक नहीं है, जिसने ऐसा किया हो।

चौथे सवाल का जवाब : जाल समेटने वाली बात ठीक है, पर अधिकांशतः सारी रचनाओं के संकलन के बावजूद कुछ न कुछ छूट ही जाता है। अगले संस्करणों में संवर्द्धन होता रह सकता है।

पाँचवें सवाल का जवाब : जैसे महेश दर्पण ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की एक कहानी ढूँढ निकाली है, इस संशय के बावजूद कि वह द्विवेदी जी की ही है या अन्य किन्हीं महावीर प्रसाद जी की। फिर भी, यह खोज महत्त्वपूर्ण है।

छठे सवाल का जवाब : हिन्दी लेखकों का जीवन बहुत अव्यस्थित रहता ही है। ऐसे में रचनावली को लेकर ऐसी खामियाँ क्षम्य मानी जाएँगी।

—द्रोणवीर कोहली, गुड़गाँव

❑ रविवार की सुबह थी, वसन्त की हवाओं में बदलाव की गंध और ताजगी थी। लेकिन अग्रज कमलेश्वर जी के निधन की खबर ने उस गंध में वसन्त को ख़ामोशी दे दी थी। कमलेश्वर जी इस ख़ामोशी में फैलते गये। साहित्य में उनका अवदान समीक्षक, इतिहासकार करेंगे। लेकिन आम पाठकों में से लेखक बनाने के ऐतिहासिक रास्ते के निर्माण के वे अग्रणी साहित्यकार और सम्पादक थे। स्थापित साहित्य के रूढ़ मुहावरों को उन्होंने तोड़ा था। यह तोड़ विध्वंस नहीं, सृजन थी। साहित्य और लेखन के सामंती दबदबे को खत्म करने में वे सविनय अवज्ञा आंदोलन के नेता की तरह सिद्ध हुए थे। पाठक का छोटे-से-छोटा पत्र भी उनकी पत्रिका में स्थान पाता था। उसका महत्त्व उतना ही होता था जितना किसी कहानी का या लेख का

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता था। सारिका के सम्पादक होने के नाते सारिका को जिस तरह उन्होंने जवाबदार बनाया, वह एक बड़ी मिसाल है। उस दौर का यह वह मंच था जब देश के हर वर्ग, तबके, हर धारा, प्रतिधारा की अभिव्यक्ति पूर्ण रचनाशीलता के साथ समाज के सामने आयी थी। देश की जबान, देश का दिल, इस पूरे भारतीय, एशियाई, अफ्रीकी दुनिया का दिल सारिका में धड़कता महसूस किया जा सकता था। ऊँची दुनिया की चकाचौंध के बीच यूरोपीय अमेरिकन आम इंसान के दर्द को भी उनके साहित्यकार तथा सारिका ने महसूस कराया था। कमलेश्वर जी का लेखन, फिल्म वाला लेखन, उनके विचार, उपन्यास, कहानियाँ, समीक्षा के मानदंडों पर चाहे जैसे परखे जायें, लेकिन स्व. कमलेश्वर जी ने भाषा, साहित्य, संपादन, टीवी के माध्यम से जितना जनता को साहित्य से जोड़ा था वह श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

—जीवनसिंह ठाकुर, देवास

❑ अस्वस्थता के कारण 'नया ज्ञानोदय' के जनवरी-फरवरी अंक एक साथ पढ़े। अपने नये तेवरों के कारण वह सुदर्शनीय तो हुआ ही है साथ ही अपनी गम्भीर उपादेय रचनाओं के कारण आम प्रबुद्ध पाठकों का प्रिय भी हुआ है।

जनवरी के संपादकीय में आपने जिस लोमहर्षक घटना— वरिष्ठ साहित्यकार श्री स्वदेश दीपक का लापता होने का जिक्र किया है, पढ़कर हृदय मर्माहत हो गया। वस्तुत: नया ज्ञानोदय इस घटना को नहीं छापता तो हिन्दी संसार इस संदर्भ में अँधेरे में ही रहता। आपका यह कहना बिलकुल सही है कि हिन्दी पट्टी की दूसरी बड़ी त्रासदी यह है कि उसका साहित्य संस्कृति और कला से नाता टूटता जा रहा है। सुबह का अखबार खोलिए— अधनंग मॉडल्स के चित्र, फ़िल्म, बलात्कार, अपहरण और डकैती के समाचार। राजनेताओं के उद्घाटन की खबरें... विज्ञापनों की भीड़। सब कुछ गलत। ऐसी स्थिति में साहित्य और साहित्यकार विलुप्त होता जा रहा है। एक बालक प्रिंस का गड्ढे में गिरने की खबर मीडिया पल पल देती रही और एक वरिष्ठ साहित्यकार स्वदेश दीपक के लापता होने के समाचार कहीं भी प्रसारित नहीं। ग्रेट-ट्रेजडी। मीडिया दर्शकों को एकदम मूर्ख समझते हैं। जब चाहे उन्हें उल्लू बना सकते हैं। तभी तो कई चैनल जो खबरें एक बार रस ले-लेकर प्रसारित करता है वह फिर गधे के सींग की माफिक गायब हो जाती है। जैसे गुजरात के साधुओं के कारण शक्ति कपूर और राखी सांवत की खबरें पता नहीं उनका अन्त क्या हुआ? फरवरी अंक में दुखद संयोग यह रहा की मील का पत्थर कमलेश्वर वाला अंक हमारे हाथों में पहुँचने के साथ कमलेश्वर अचानक महाप्रस्थान के पथ के यात्री बन गये। वे धुआँधार और धारदार लेखक थे। वाक्पटु भी थे। चार-पाँच साल पहले बीकानेर की बैठक में आए थे। दो दिनों के लिए। एक दिन मेरे घर वे और गायत्री भाभी रुके। मीठी-मीठी सर्दी थी। भोजन में बाजरी की रोटी, फोफलियों का साग और रबड़ी। हिन्दी कहानी से वे संतुष्ट थे। हर योग्य रचनाकार को वे प्रोत्साहित करते थे। वे अत्यन्त संवेदनशील और खुले दिल के इंसान थे। उनका हिन्दी संसार को बिना खबर दिये चले जाना अपूर्णीय क्षति है।

—यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', बीकानेर

❑ नयी कहानी का दूसरा बड़ा स्तम्भ अचानक मौन को प्राप्त हुआ। लेकिन न कोई गिला, न कोई शिकवा। मौत का कोई तर्क नहीं होता। वह बस हमें अपने प्रिय लोगों से महरूम कर देती है। राकेश के गये तीन दशक से ऊपर हो गये। लेकिन इधर अचानक यह क्या हो गया है कि हिन्दी साहित्य के सभी बड़े साहित्यकार एक-एक कर हमें अकेले छोड़ते जा रहे हैं। मानो कह रहे हों सँभालो अपनी साहित्यिक दुनिया को इसमें कुछ नये रंग भरो और नये इन्द्रधनुष को देखो।

अब न निर्मल वर्मा मिलेंगे न मनोहर श्याम जोशी और इसी कड़ी में अब कमलेश्वर भी। व्यक्ति के रहते कई इच्छाओं को पूरा होने की उम्मीद रहती है। उस व्यक्ति के मौन साधने से वे सारी उम्मीदें धरी की धरी रह जाती हैं। कमलेश्वर के न रहने से हम जैसे कई लोगों की बहुत सारी उम्मीदें एकाएक ठहर गयी हैं।

—मनोज मोहन, नयी दिल्ली

❑ वर्तमान संपादक के प्रथम अंक से लेकर अद्यतन (फरवरी 07) अंक तक पढ़ गया हूँ। पत्रिका को लोकप्रिय बनाने का आपका आधुनिक, नवीनतम प्रयास कामयाब होता नज़र आ रहा है। मुझ जैसे पूर्वाग्रही वृद्ध पाठकों को भी यह रास आने लगी है। सब स्तम्भ पाठकीय आकर्षण बढ़ाने वाले हैं। ख़ासकर मील का पत्थर, देशकाल, भारत-भारती, दृश्य-अदृश्य। अज्ञातवासी स्वदेश दीपक के समांतर मील के पत्थर में, इस बार (गत अंक में) कमलेश्वर को प्रकाशित करना कमाल की सूझ-समझ है। उनकी चिर-निद्रा के कुछ ही दिन में संस्कृति-अंजलि निवेदित करा दी गयी है।

—र. शौरिराजन, चेन्नई

भारतीय ज्ञानपीठ की नयी पुस्तकें

राजवधू (उपन्यास)
शुभांगी भडभडे

मराठी लेखिका शुभांगी भडभडे का चर्चित उपन्यास 'राजवधू' कृष्णभक्त मीरा के जीवन पर आधारित है। राजस्थान के इतिहास में मीरा का पितृकुल और श्वसुरकुल दोनों ही अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं, फिर भी मीरा के जीवन प्रसंग एकदम प्रामाणिक न होकर वहाँ की जनश्रुतियों एवं लोकगाथाओं पर आश्रित हैं। लेखिका ने राजस्थान का इतिहास, जनश्रुति और कुछेक आलेखों को साक्ष्य मानकर इस उपन्यास का तानाबाना बुना है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने मीरा को प्रसिद्ध राजवंश की एक राजकुमारी के रूप में, राजवधू के रूप में, श्रीकृष्ण की आराधिका और कवयित्री के रूप में चित्रित किया है। उपन्यास का कथानक इतना रोचक बन पड़ा है कि एक बार पढ़ना आरम्भ करने के बाद पाठक उसे बीच में छोड़ना नहीं चाहेगा।

पृष्ठ : 284, मूल्य : 225 रु.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कटघरे में भारत

❑ जान पड़ता है कि भारत भारद्वाज का कुछ भी लिखा तब तक अधूरा ही रह जाएगा जब तक कि उसमें किसी न किसी रूप में साधना अग्रवाल का जिक्र न आये। अन्यथा क्या कारण है कि उन्होंने साधना अग्रवाल की तथाकथित पुस्तक 'बेतरतीब तिथियों में कहीं मैं फिर मिलूँ' को चर्चित पुस्तक बतला दिया जबकि पिछले वर्ष या कभी भी इस पुस्तक की चर्चा को दूर, कहीं इसका नाम भी सुनने पढ़ने में नहीं आया। कृपया उनसे पूछिए कि इस पुस्तक की समीक्षाएँ कहाँ-कहाँ छपीं (या उन्होंने छपवाईं) और किसने लिखीं (या उन्होंने लिखवाई)? यह पुस्तक किस रूप में चर्चित रही? क्या इस पुस्तक को कोई पुरस्कार मिला (या उन्होंने दिलवाया)? इस पुस्तक के सम्बन्ध में उनके अतिरिक्त क्या किसी ने कहीं कुछ लिखा या इसी प्रकार की कोई और बात? यदि वे इन बातों का जवाब नहीं देते हैं तो कृपया नया ज्ञानोदय में उनका यह स्तम्भ छापना बन्द कर दें। उन्हें बतला दें कि यह स्तम्भ उनके मित्रा-परिचितों-चहेतों-चहेतियों के प्रचार का माध्यम नहीं है।

— रामप्रसाद जायसवाल, दिल्ली

❑ 'नया ज्ञानोदय' फरवरी अंक में आपके पुराने सर्वेयर श्री भारत भारद्वाज ने बाक़ायदा कुछ लेखकों को कोष्ठांकित करते हुए उनसे क्षमा याचना की है। लेखकों में उन्होंने कृपापूर्वक मुझे भी शामिल किया है। ज़ाहिर है कि जिस शैली में नॉन एकेडेमिक ढंग से गुटबंदी के तहत आज आलोचना लिखी जा रही है, उससे उन्हें कोई परेशानी नहीं है। जिससे उन्हें परेशानी है, उसे भी उन्हें क्षमा का पात्र मान लेने में कोई दिक्कत आड़े न आती यदि वह उनकी आलोचकीय न भी सही, मात्र सर्वेक्षक स्तर की भी न्यूनतम अर्हता को लेकर आश्वस्त हो सकता। किन्तु, देखने में आया कि उनके सर्वेक्षण में न केवल वर्ष 06 में प्रकाशित उसकी आलोचना पुस्तक 'समय संवादी' का जिक्र नदारद है, बल्कि इसी वर्ष प्रकाशित उसके उपन्यास 'सफेद परदे पर' तथा दो काव्यानुवाद पुस्तकें 'छंद और पक्षी' तथा 'दूर देखती आँखें' भी उनकी दृष्टि से बाक़ायदा ओझल हो गयी हैं। बेशक श्री भारद्वाज के लिए हमारी करतूतों की यह अनदेखी हैरानी की बात नहीं होगी, किन्तु हमारे जैसे उनके सर्वेक्षणों तक को पढ़े जाने और याद रखने वाले निरीह पाठकों के लिए यह हैरानी की बात अवश्य है, वितृष्णा जिसे वे कहते हैं उसकी बात हो न हो। आखिर, आप ही के द्वारा सम्पादित वागर्थ के किसी अंक में श्री भारद्वाज ने ऐसे ही किसी सर्वेक्षण के सिलसिले में इस किंचित असुविधाजनक तथ्य को भी बाक़ायदा दर्ज करने में कोई कोताही नहीं बरती थी कि फलाँ कालखंड में रमेशचन्द्र शाह का उपन्यास 'गोबर गणेश' और आलोचना पुस्तक 'छायावाद की प्रासंगिकता' दोनों खासी उल्लेखनीय मानी गयी थीं। तो, सचमुच हमारे लिए यह कदापि सुविधाजनक नहीं है कि हम उक्त स्खलन अथवा अनदेखी को तूल देते हुए इस खंभे या मेज की विश्वसनीयता पर संदेह करें। आत्मविश्वास निश्चय ही गुण है, किन्तु इस कोटि का अचूक आत्मविश्वास अत्यंत विरल और हम जैसों के लिए अलभ्य है। ऐसी अचूकता से भी कोई पाठक बिदक सकता है, इसकी कोई संभावना नहीं दिखाई देती। हैरानी की बात खुद हमारे लिए बस इतनी ही है कि हम नया ज्ञानोदय के डाकघर को यह चिट्ठी पढ़ाने को प्रेरित हुए।

— रमेशचन्द्र शाह, भोपाल

❑ 'भारत की मेज' की छाया कई बार पत्रिका की गरिमा को 'ग्रहण' लगाती रहती है। यूँ तो भारद्वाज जी की नियति हिन्दी साहित्य के एक सजग प्रहरी की होनी थी, किन्तु दुर्भाग्यवश वे बिहार-पुलिस की भूमिका में खड़े हो गये। वे अपना पुलिसिया डंडा हर जगह भाँजते फिरते हैं। सबका बौद्धिक कद नापने वाले भारद्वाज जी के स्वयं के लेखन में सर्जनात्मक ऊर्जा का सर्वथा अभाव है। मैं भारद्वाज जी को उस दाई की तरह देखता हूँ जो घूम-घूमकर दूसरों का बच्चा तो खूब पैदा कराती है, किन्तु उसका कोई बच्चा नहीं होता।

— अजित कुमार राय, कन्नौज

❑ नया ज्ञानोदय दिसम्बर 06 के अंक के पृष्ठ 112 से 115 तक प्रकाशित भारत भारद्वाज के स्तम्भ में रचनाकारों व रचनाओं के बारे में भारद्वाज जी ने जो लिखा वह साहित्य के शोध छात्र-छात्राओं के लिए एक अलौकिक वरदान जैसा है।

— पं. ओम प्रकाश शर्मा भारद्वाज, इन्दौर

❑ तो, अन्तत: खुलासा हो ही गया—'हंस' से भारत भारद्वाज की 'मेज़' के विस्थापन का। कँवल भारती ने नया ज्ञानोदय के फरवरी 07 अंक में खुलासा कर ही दिया कि मुश्किल से ही सही दलित विरोधी ब्राह्मण का पिंड हंस से 'छुड़ाया' गया था। साहित्य के धुरन्धरों की दलबदली की असली जानकारी हमारे जैसे 'सिर्फ पाठकों' तक ठीक से नहीं पहुँचती। अगर पहुँचती भी है तो प्रतीकों, संकेतों, फैंटेसियों और दरबारी मेल टाइप स्तम्भों में बुझौवल के रूप में। दरअसल साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में वैचारिक असहमतियों की जगह व्यक्तिगत टीका-टिप्पणियों की बढ़त ने पाठकों में भी अन्दर की बात जानने की चाह पैदा कर दी है।

— प्रमोद कुमार पांडेय, मेरठ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया तो आसमान साथ ले गया

भारत भारद्वाज

सचमुच अप्रत्याशित, आकस्मिक और अचानक हमारे बीच से चले गये कमलेश्वर। घर के रास्ते के अधबीच। घर पहुँचने के पहले। 'घर' नयी कहानी की त्रयी मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव का एक बड़ा सपना था। कहानी में घर बनाने की बात बाद की है। अपने लेखन में कमोबेश शोहरत तीनों को मिली। लेकिन 'घर' मिला सिर्फ़ कमलेश्वर को। मोहन राहेश आजीवन घर की तलाश करते चले गये और राजेन्द्र यादव घर से उखड़ गये।

27 जनवरी, 2007, (जोकहरा, आज़मगढ़)

हम पूर्वांचल सांस्कृतिक केन्द्र— श्री रामानन्द सरस्वती पुस्तकालय, जोकहरा (आज़मगढ़) में थे। अपराह्न में साहित्य अकादेमी के सौजन्य से महादेवी वर्मा जन्म शताब्दी समारोह का उद्घाटन सत्र हुआ था। कार्यक्रम सकुशल संपन्न हुआ। सत्र अवसान के बाद फिर हॉल में कमलेश्वर हमारी चर्चा के केन्द्र में थे। मेरे हाथ से 'नया ज्ञानोदय' का फरवरी अंक सबने बारी-बारी से देखा और 'मील का पत्थर' स्तम्भ की तारीफ़ की। कमलेश्वर के इण्टरव्यू पर ख़ासी चर्चा हुई। सोने के पूर्व माहौल कमलेश्वर मय था। लेकिन मुझे डर था कि अंक कोई मार न ले। अच्छी बात यह हुई कि सचमुच कोई अंक मार ले गया। हम सो गये।

28 जनवरी, 2007 (जोकहरा) : सुबह

औरों का मुझे पता नहीं। लेकिन देर रात सोने के बाद जब कुहासा घिरे गाँव में लोगों की आवाजाही से मेरी नींद खुली, मैं खुमारी में था। सामने विभूति जी थे। 'अरे, भारत जी, कमलेश्वर नहीं रहे।' उनका कहना मेरे लिए वज्रपात की तरह था। सच पूछिये, तो सबसे पहले मुझे गुस्सा आया रवीन्द्र कालिया पर। सरासर अन्याय। पता न उन्हें कैसे इलहाम हुआ कि कमलेश्वर पर 'नया ज्ञानोदय' का श्रद्धांजलि अंक पहले ही निकाल दिया। सहसा बच्चन की यह कविता पंक्ति कौंधी— 'अन्त का इतना था विश्वास, विदा का लिख डाला था गीत।' यह गीत रवीन्द्र कालिया ने अनजाने में लिख दिया था। उनको कभी-कभी पूर्वाभास होता है। हम जोकहरा जैसे सुदूर गाँव में ख़बरों की दुनिया से बेख़बर थे। ठीक से कुछ पता नहीं चल रहा था। भला हो, साधना अग्रवाल का कि उन्होंने फ़ोन पर कुछ अतिरिक्त जानकारियाँ दीं।

फिर भी हम बेचैन रहे। आज के दोनों सत्र बोझिल वातावरण में निपटे— कमलेश्वर की शोक सभा में श्रद्धांजलि देते। जब गोवा जेल का भूतपूर्व क़ैदी और साहित्य का सुधी पाठक और ख़ुद लेखक सुधीर शर्मा ने 'नया ज्ञानोदय' लौटाया तो मुझे पता चला रात भर वह पत्रिका पढ़ता रहा था।

30 जनवरी (दिल्ली)

दिल्ली पहुँचने के बाद तमाम समाचारपत्रों को उलटने-पलटने से कमलेश्वर के बारे में वांछित जानकारियाँ मिलीं। मुझे याद आया— कमलेश्वर से पहली बार मैं मुम्बई के जुहू स्थित उनके निवास जानकी कुटीर में 1978 में मिला था जब वे 'कथा यात्रा' निकाल रहे थे।

उनसे मेरी दूसरी अंतरंग मुलाक़ात राही मासूम रज़ा के आधा गाँव 'गंगौली' में उनकी स्मृति में संपन्न समारोह के दौरान हुई थी। एक रात हम अगल-बगल मऊ के अवध होटल में रुके थे। तभी उनकी 'कितने पाकिस्तान' पर मैंने उनका एक इण्टरव्यू लिया था (अब तक अप्रकाशित)। फिर दिल्ली में तो प्रायः मुलाक़ात होती ही रहती थी। सचमुच कमलेश्वर से मुझे रश्क़ था कि इस उम्र में भी यह आदमी कितना पढ़ता-लिखता है और नये से नये लेखक को तवज्जो देता है। वैसे कमलेश्वर से मेरा रिश्ता बहुत पुराना है। 'कहानी' के ज़माने से जब 'राजा निरबंसिया' पुरस्कृत हुई थी। या फिर 1966 में प्रकाशित और उनके द्वारा संपादित— 'नयी धारा' का समकालीन कहानी विशेषांक निकला था। अभी 'अकार' में मैंने पाकिस्तान के मशहूर शायर अहमद नदीम कासिमी के गुज़र जाने पर गुलज़ार की लिखी नज़्में पढ़ीं। कमलेश्वर की याद में उनकी नज़्म की कुछ पंक्तियाँ दुहराना चाहता हूँ—

बताएँ क्या, वो आफ़ताब था कोई
गया तो आसमान साथ ले गया।
मैं सज़्दे से उठा तो कोई भी न था
वो पाँव के निशान साथ ले गया।

मैं कहना चाहता हूँ कि कमलेश्वर ने इतना सार्थक लिखा है कि साहित्य के आँगन में न केवल उनके पाँव के निशान बचे हैं बल्कि 'राजा निरबंसिया' जैसी कालजयी कहानी भी। अभी 'आउटलुक' के नये अंक (12 फरवरी) में वैसे रवीन्द्र कालिया ने कमलेश्वर पर लिखे अपने संस्मरण में स्पष्ट कर दिया है कि यह महज़ इत्तेफाक़ था कि 'नया ज्ञानोदय' का फरवरी अंक उन पर केन्द्रित हो गया। एक और बात। जब तक मैं 'हंस' में लिखता रहा, मन-ही-मन कमलेश्वर मुझे राजेन्द्र यादव का आदमी समझते रहे। लेकिन उनका बड़प्पन था कि मिलने पर या कभी बातचीत में उसे प्रकट नहीं किया। वैसे 'अक्षर प्रकाशन' (प्रोपराइटर राजेन्द्र यादव) का लोगो कमलेश्वर का ही बनाया हुआ है। मेरी इच्छा होती है, कभी कमलेश्वर फिर कहीं मिलें और कहें— भारत, मुझे सिगरेट दो अब मैं अपने पास सिगरेट नहीं रखता। तो मैं उन्हें झटक दूँ। अपनी ज़िन्दगी में मैंने जिन दो लोगों को जाना है जो एक दिन में 60-70 सिगरेट पीते थे। उनमें एक कमलेश्वर थे और दूसरा मेरा वरिष्ठ अधिकारी। अब दोनों इस दुनिया में नहीं रहें। कमलेश्वर का जाना सचमुच जाने जैसा नहीं लगता।

11/ए-1, हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार-1, दिल्ली-91

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बस, ख़ुद के साथ

ज्ञान चतुर्वेदी

उनकी कार के काँच पर बहुत बड़े अक्षरों में 'एल' लिखा है।

वैसे वे बढ़िया कार चलाते हैं। सालों से चला रहे हैं। लाइसेंस वग़ैरह धरे हैं। वर्षों से। निष्णात ड्राइवर। परन्तु काँच पर लिखे की मानें, तो वे लर्निंग की स्टेज में हैं। सीख रहे हैं अभी। वे सालों से 'एल' लगाकर ही चला रहे हैं। जाननेवाले बताते हैं कि यूँ ही ऐहतियात के तौर पर 'एल' लिख रखा है। इससे फ़ायदे हैं। सामने वाले सँभालकर निकलते हैं, पैदल यात्री फुटपाथ के भी किनारे की तरफ़ चलने लगते हैं और कुछ तो घबराकर सड़क ही छोड़ देते हैं कि इस गाड़ी का भरोसा नहीं। भयवश कोई ओवरटेक नहीं करता। डरते हैं कि यह भिड़ा-भिड़ू-न डाले। औरों का जो हो, पर इनकी यात्रा निरापद हो जाती है। और इनको बस अपने से मतलब। वैसे ये सारी बातें भी स्वयं उन्होंने नहीं बतायी। वे बताते नहीं। स्वयं तो वे बोलते ही नहीं। बोलो तो स्टेण्ड लेना पड़ता है। बोलो तो आपका पक्ष तय हो जाता है। सो क्यों बोलो? बोलने में कुछ उलटा-सीधा ही मुँह से निकल गया, तब? सो चुप रहते हैं। हमने पूछा कि गाड़ी में 'एल' लगाकर क्यों घूमते हैं, तो मुस्का के रह गये। उनकी मुस्कान के सौ अर्थ। आप पर है। निकालते रहें। मोनालिसा वाली रहस्यमयी मुस्कान। कहीं मोनालिसा भी 'एल' लगाकर तो नहीं घूमा करती थी? कहना कठिन। दरअसल, वे जीवन में सदैव ही सुरक्षित चलने के हामी हैं।

जहाँ भी खतरे की संभावना हो, वे सँभलकर चलते हैं। रिस्क नहीं लेते। वे खड़े नहीं होते क्योंकि आदमी खड़ा हो तो गिरने का डर। तो बैठते होंगे? बैठते नहीं कि लुढ़कने का ख़तरा। तो? तो वे रेंगते रहते हैं। हर मुद्दे पर रेंगते मिलेंगे। रेंगते हुए ही वे हर बहस से बाहर निकल आते हैं। भिड़ते नहीं। किसी का विरोध नहीं करते। 'सूर्य पूर्व से निकलता है' पर उनकी यही बात कि हम कह नहीं सकते क्योंकि हमारे तो 'एल' का ठप्पा। जीवन में हर यात्रा 'एल' लगाकर। ऐसी यात्राएँ बाधाहीन। किसी के विरोधी नहीं। ना काहू से बैर। या तो हर बात में 'हाँ जी' कहा, या चुप लगा गये। सबको भ्रम कि यह हमारे साथ है। न भी साथ हो, पर कम-से-कम विरोध में तो नहीं।

वे चलते हैं, तो साथ में हाथ नहीं हिलाते। हाथों को बगल में सीधे लटकाकर चलते हैं। जब मात्र टाँगे चलाने से ही चलना हो जाता है, तो हाथ हिलाने की फिजूलखर्ची क्यों करना? वे उतना ही काम करते हैं कि जितने में नौकरी चलती रहे। वे उतना ही जीते हैं, जितने में मरने से बचे रहें। इससे ज़्यादा जीना मूर्खता। पूरा जीते नहीं। कम जीने में भी यदि जीना चलता रहे, तो और ज़्यादा क्या जीना? वे जीवन को भरपूर जीते ही नहीं। बिताया सारा जीवन इस जुगत में कि कहीं मर न जाएँ। जीवन में रस ही नहीं। उन्हें गीत गुनगुनाते कभी किसी ने नहीं देखा या सुना। वे साहित्य, फ़िल्म, नाटक, प्यार, रोमांस, वफ़ा, दोस्ती, पिकनिक, सामाजिक कार्य आदि को बेमतलब की हरकतें माना करते हैं। क्या करना यार। कहाँ जाना यार। मौसम तो देखो। ठंड है। जुखाम का डर। गर्मी कितनी। लू-लपट वाले कित्ते लोग अस्पताल में भर्ती हो रहे हैं, यह पता भी नहीं है कि ऐसेई? और बरसात में? तब तो घर से निकलना भी ख़तरनाक। सड़क पे कहीं गाड़ी-वाड़ी फँस-फँसा जाए साहब, तो मरणं। सो अपुन तो वाइफ से फ़ोन करा देते हैं दफ़्तर कि एक सौ पाँच डिग्री बुखार में पड़े हैं। बस्स। आप जानो, आपका काम जाने। हाँ भाई, कौन तो रिस्क ले साहब।

जीवन के हर मुद्दे पर उनका यही कहना कि यार, अपुन को इस पचड़े से क्या? हम न तो इस टंटे में, न उसमें। हम किसी के झगड़े में नहीं। हम किसी विवाद में नहीं। हम किसी बहस में नहीं... वे किसी के विरोध में नहीं। वे किसी के साथ नहीं। वे यहाँ नहीं। वे वहाँ नहीं। हैं भी, तो नहीं जैसे। खड़े भी हैं, तो कोने में। चुप हैं। बोलते भी हैं तो चुप जैसा ही। हँसते भी हैं, तो चेहरा रोता-सा रहता है— ताकि कोई यह न कह ले कि हँस रहे थे। पलटने को हमेशा ही तत्पर। मुकरने को सदैव तैयार। कभी भी कह दें कि हमने ऐसा तो कभी कहा ही नहीं था। या कि हमारी बात का ग़लत मतलब निकाल लिया गया। उनके मतलब कभी भी बदल जाएँ। उनके मतलब प्रायः बेमतलब। वे सबकी 'हाँ' में। वे सबकी 'ना' में। उनकी हाँ भी अपनी नहीं, ना ही ना अपनी।

परन्तु उस दिन वे बहस करते, मुट्ठियाँ भींचकर बात करते, ज़ोर-ज़ोर से अपनी बात रखते मिले। हम आश्चर्यचकित। यह हुआ क्या इनको?

पता चला कि श्रीमान का प्रमोशन नहीं हुआ। वे कभी बॉस से भिड़े नहीं। सदा 'यस सर' कहा। प्रशासन ने दूसरों पर अत्याचार किये, तो इनसे यही कहा कि देखभाल कर चलना चाहिए। बॉस ने दूसरों के साथ नाइंसाफी की, तो वे चुप लगा गये। दफ़्तर में हुए हर अन्याय पर आँखें मींच लीं। दूसरों ने संघर्ष किया, तो ये चुपचाप निकल लिये। पास में आग लगी, तो ये दूसरी तरफ़ मुँह करके खड़े हो गये क्योंकि आग ने इनको तो छुआ ही नहीं था और दूसरा जले, तो इनको जलन नहीं होती। तब आग से जूझने का कोई कारण नहीं बनता न। आज आग ने ख़ुद को छुआ है, तो हल्ला कर रहे हैं। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि लर्निंग का 'एल' चलाकर चल रही गाड़ी भी कभी उलट सकती है।

ए-40, अलकापुरी, भोपाल-462024

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी में संस्मरण लेखन

विजयमोहन सिंह

इधर कुछ वर्षों से हिन्दी में संस्मरण लेखन की बाढ़-सी आ गयी है। अनेक साठोत्तरी लेखक (साठ वर्ष से अधिक उम्र वाले) थोक भाव से संस्मरण लिख रहे हैं। क्या यह सहज संयोग है या इसके कुछ मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक कारण हैं?

वैसे तो पूरी दुनिया में बहुत पहले से हर भाषा में संस्मरण लिखे जाते रहे हैं और यह एक पृथक् लेखन विधा से रूप में हमेशा से प्रतिष्ठित रहा है— मैक्सिम गोर्की के संस्मरण तो विश्वविख्यात रहे ही हैं— ख़ासतौर पर उनके टॉलस्टॉय सम्बन्धी संस्मरण। हिन्दी में जैनेन्द्र कुमार ने कुछ बहुत अच्छे संस्मरण लिखे थे जो उनकी पुस्तक 'ये और वे' में संकलित हैं। नयी कहानी के कथाकारों में निर्मल वर्मा ने देश और विदेश के लेखकों से सम्बन्धित कुछ अद्भुत संस्मरण लिखे हैं। पर संस्मरण लिखना एक विशेष प्रकार की दक्षता की माँग करता है और अगर वह वैसा हुआ तो उसे पढ़ने का भी अपना सुख है।

पर इधर हिन्दी में तो यह हाल हो गया है कि अचानक लेखक— ख़ासतौर पर कथाकार न जाने क्यों पीछे 'मुड़ मुड़कर देखने' लगे हैं। यह मुड़-मुड़कर देखना क्यों और क्या है? सामान्यत: संस्मरण हम उन लोगों और उन दिनों के बारे में लिखते हैं जिनसे हम प्रभावित और अभिभूत रहे हैं या जिनकी सघन आत्मीयता हमारे स्मृति पटल पर इस क़दर हावी हो जाती है कि हम उनके बारे में सोचने और लिखने से अपने को रोक नहीं पाते।

लेकिन हिन्दी में तो इधर उलटी गंगा बहती दिखाई दे रही है। ज़्यादातर संस्मरण उन लोगों के बारे में लिखे जा रहे हैं, जो अकसर दोस्त या हमसफ़र रहे हैं और जिनके क़द को आप कुछ विशेष कारणों से बड़ा या छोटा कर देना चाहते हैं। यही नहीं अकसर यह करके लोग अपनी छवि मि. क्लीन के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। कभी मंटो ने कहा था कि मरने के बाद क्या संस्मरणों में हम सम्बन्धित व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व को लांड्री में भेज देते हैं और वहाँ से लाकर उसे साफ़ सुथरा और बुर्राक रूप में प्रस्तुत करते हैं। पर हिन्दी में उलटा ही हो रहा है। हम मरने के बाद ही नहीं, जीते जी भी उसे कीचड़ से लिथड़ा कर पेश कर रहे हैं और अपनी छवि को लांड्री से लाकर, कलफ़ लगाकर पेश कर रहे हैं।

संस्मरण लिखना प्रकारांतर से आत्मकथा लिखना हो गया है। मेरा मानना है कि ज़्यादातर मीडियॉकर लेखक ही आत्मकथा लेखन पर जल्दी ही उतर आते हैं। संस्मरण लिखने का एक कारण शायद यह भी है कि लोग अपना 'हिसाब-किताब बराबर' कर लेना चाहते हैं। इसे क्या कहेंगे? यह कि संस्मरण लेखन के नाम पर हिन्दी में ओछी मनोवृत्तियों का बोल बाला है? जीवन और साहित्य के न जाने कितने विराट, अभेद्य, आसन्न प्रश्नों तथा समस्याओं को छोड़कर हम क्यों इन्हीं ओछे मुद्दों और बहसों पर अपना वक़्त जाया कर रहे है?

कभी-कभी संस्मरण वे लेखक लिखते हैं जो कभी विधिवत लेखक बने ही नहीं या जिनके मन में यह कुण्ठा घर कर गयी होती है कि अब वे लिख नहीं सकते और वे चुके हुए लोग हैं। यानी अधिक संस्मरण लिखना लेखन के स्तर पर एक तरह के बाँकपन का द्योतक भी है।

संस्मरण वे लोग भी लिख रहे हैं जिन्हें लगता है कि हमें साहित्य में वह जगह नहीं मिल सकी जिसके वे हक़दार थे। लेकिन सवाल उठता है कि यह आत्ममुग्धता या मूढ़ता हिन्दी में बढ़ क्यों रही है? शायद इसलिए भी कि जैसा किसी ने कहा है कि हिन्दी लेखक के 'अन्त:करण का आयतन' क्रमश: सीमित होते जा रहे हैं। वह अपने 'मृतिका वृत्त' के बाहर बहुत कम देख पा रहा है।

कुछ लोग इसका एक कारण यह भी मानते हैं कि हिन्दी का लेखक बहुत कम पढ़ता है, वह बहुपठित नहीं है। कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो अपने बहुपठित होने का ढिढोरा ठाँव-कुठाँव पीटते रहते हैं और अपने जाने पढ़े तथा देखे हुए को 'ईश्वर की आँख से' देखा हुआ मानते हैं। बहुत से संस्मरण इस रूप में भी लिखे जा रहे हैं। अपने संस्मरणों की मार्फ़त वे अक्सर अपनी धाक जमाने की कोशिश करते हैं।

अपने पढ़े हुए को ही नहीं, अपने देखे हुए को भी आत्मश्लाघा का रूप देने वाले ऐसे कई यात्रा संस्मरण भी हिन्दी में इधर पर्याप्त मात्रा में लिखे जा रहे हैं जिनका मकसद 'तिब्बत में सात वर्ष' या 'विश्व देश की यात्रा' के बारे में बताना न होकर हर जगह अपने होने को ही बताना होता है।

हिन्दी का यह लेखन या ऐसा लेखन मनोवैज्ञानिक स्तर पर वही हीनता की ग्रन्थि से भी पीड़ित है : विश्व के कई कमतर प्रतिभा के कथाकार न जाने कितने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानों से विभूषित हो रहे हैं और उनके सामने 'अर्थ का अम्बार' लगा हुआ है तो ऐसे में लिखने का क्या अर्थ रह गया है। (वे शायद ऐसा भी सोचने लगे हैं।)

देखने की ज़रूरत है कि संस्मरण लेखन की यह बाढ़ लेखन के 'मरण' का संकेत तो नहीं है।

77, अनुपम अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली-96

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

12

★ आदिवासी और अनु. जाति बहुल क्षेत्रों के विकास हेतु तीन विकास प्राधिकरण- 125 करोड़ रु. के विकास कार्य.

★ तेन्दूपत्ता संग्राहकों को 12 लाख जोड़ी चरण पादुकाएं.

★ तेन्दूपत्ता, सालबीज संग्राहकों को करोड़ों का पारिश्रमिक, लाभांश.

★ 2.20 लाख अनु. जाति, जनजाति व गरीब परिवारों के वन अपराधों की वापसी.

★ वन ग्रामों के विकास की पहल से तीन वर्षों में हर ग्राम में 15-15 लाख के विकास कार्य सुनिश्चित.

★ अनु. जनजाति और जाति की बालिकाओं को सायकलें, 46 हजार लाभान्वित.

★ विशेष प्रशिक्षण, छात्रवृत्तियां, आश्रम शाला, छात्रावासों में बढ़ोतरी.

★ 10-12 वीं की 1.20 लाख बालिकाओं को निःशुल्क कम्प्यूटर शिक्षा.

★ आदिवासी अंचलों में स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाएं, 64 चलित अस्पताल संचालित, नए कॉलेज इन्हीं अंचलों में.

★ हजारों बुनकरों के कर्ज माफ.

★ ग्रामीण शिशु मृत्यु दर 95 प्रति हजार से घटकर 61.

★ सभी 23 लाख गरीब परिवारों को 25 पैसे प्रति किलो की दर से 'छत्तीसगढ़ अमृत नमक'.

★ अजा.जजा. बालक-बालिकाओं को पायलट-एयर होस्टेज प्रशिक्षण.

★ जगदलपुर में नया मेडिकल कॉलेज प्रारंभ.

★ ग्राम सुराज अभियान से सरकारी योजनाओं में प्रशासनिक चुस्ती.

★ 36 मीट्रिक टन धान खरीदने का कीर्तिमान और इस वर्ष 40 लाख मीट्रिक टन धान खरीदने का लक्ष्य.

★ एक लाख सिंचाई पम्प देने की योजना, 40 हजार से अधिक कनेक्शन प्रदत्त.

★ गांवों में निरंतर बिजली के लिए 'अटल ज्योति योजना' पर कार्य शुरू.

★ गांवों में सड़कें, पुल-पुलिया और अन्य विकास कार्य.

★ बीस सूत्रीय कार्यक्रम क्रियान्वयन में अव्वल।

★ बायोडीजल उत्पादन की पहल में अव्वल.

★ न्यूनतम 7% ब्याज दर पर किसानों को ऋण.

★ 6.35 लाख किसानों के अल्पकालीन ऋण माफ.

★ महिला समूहों को 6.5% ब्याज पर ऋण.

★ बस्तर, दंतेवाड़ा, सरगुजा में के वृहत उद्योग.

★ सरपंचों को सिम्प्यूटर वितरण.

★ 'पुरा' के अमल में अग्रणी.

★ सलवा जुडूम के भागीदारों का संरक्षण और पुनर्वास.

★ सुदूर क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा कोष का गठन.

तीन सालों में हमने अनु. जाति, अनु. जनजाति सहित गांवों, गरीबों और किसानों की बेहतरी के लिए अनेक नई योजनाएं लागू की। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, बिजली, पानी, सड़क जैसी तमाम बुनियादी सुविधाएं जुटाने के लिए इतने काम किए, जितने पिछले तीन से लेकर पचास वर्षों तक भी नहीं हुए थे। इतना ही नहीं, शहरों, पर्यटन केन्द्रों और उद्योगों के विकास का कीर्तिमान भी इस दौरान बना। आज गांव-गांव में छत्तीसगढ़वासियों के चेहरों की मुस्कान और चमक देखकर हमें संतोष मिलता है और यह प्रेरणा भी, कि आगे ज्यादा लगन, ज्यादा मेहनत, ज्यादा समर्पण से काम करना है।

डॉ. रमन सिंह
मुख्यमंत्री छत्तीसगढ़

★ 10 हजार मेगावाट के बिजलीघरों का निर्माण प्रगति पर.

★ 50 हजार करोड़ रु. के पूंजी निवेश के एम.ओ.यू.

★ राजकोषीय प्रबंधन में देश का सर्वश्रेष्ठ राज्य.

★ करों की न्यूनतम दर तथा सर्वाधिक राजस्व अर्जन.

★ आवास क्रांति का आगाज, गरीबों को प्राथमिकता.

★ सामाजिक क्षेत्र में सर्वाधिक व्यय.

★ शैक्षणिक अधोसंरचना का तेज विकास.

★ नगरीय-ग्रामीण विकास की बेमिसाल योजनाएं.

★ चमचमाती सड़कों के लिए ऐतिहासिक बजट.

तीन सालों में विकास की आभा से दमका पल-पल

विकास मूलमंत्र | आधार लोकतंत्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Regd. No. RNI : DEL-Hin / 2003 / 9468
Postal Regd. No. DL (S) 17-3089 / 2006 - 07 - 2008
Pre-paid Lincence No. U [SE]-63/2006-08

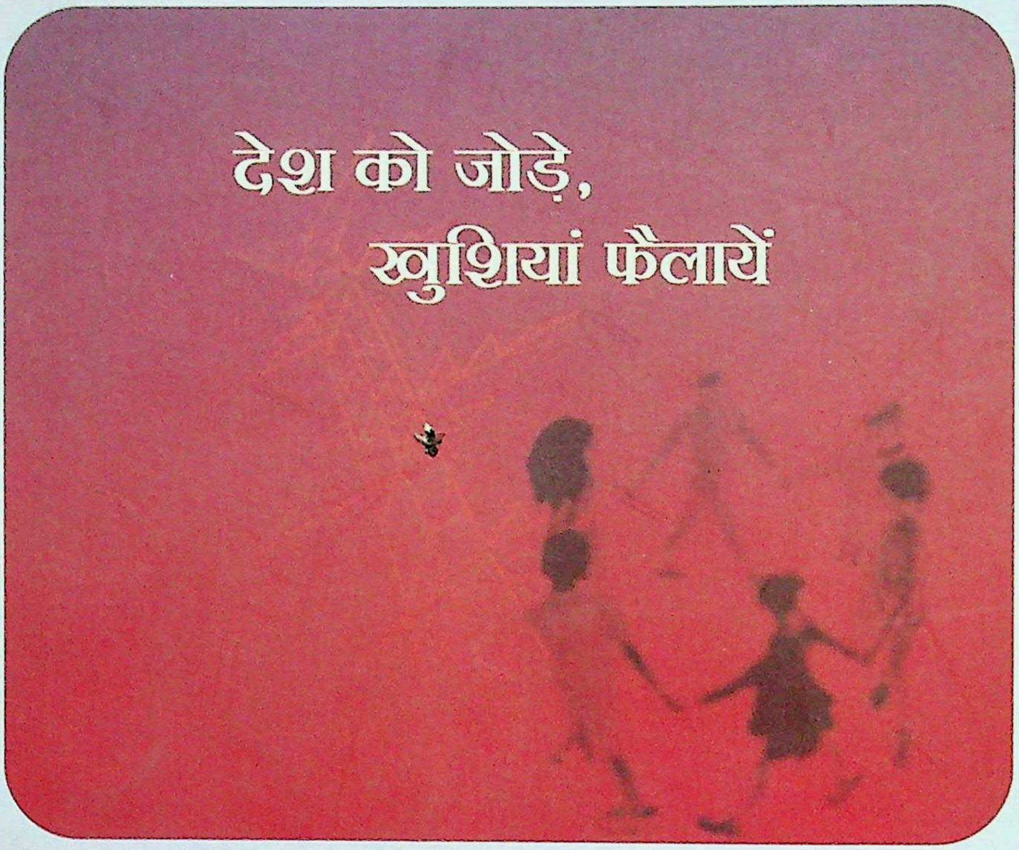

विश्व की सबसे बड़ी और बेहतर नियंत्रित पारेषण उपयोगिताओं में से एक, पावरग्रिड कुशल एवं प्रभावी राष्ट्रीय ग्रिड को स्थापित करके देश को एक सूत्र में बांध रहा है। देश के प्रत्येक छोर और किनारों में फैली इसकी पारेषण लाइनें, भारत को एक धागे में पिरो रही हैं। इस प्रकार यह लोगों के जीवन को ऊर्जायित करते हुए प्रकाशमान भारत के सपने को साकार कर रहा है।

पावरग्रिड

पावर ग्रिड कारपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम)

कारपोरेट ऑफिस : 'सौदामिनी', प्लॉट नं. 2, सैक्टर 29, गुड़गांव-122001 (हरियाणा)

हमारी वेबसाइट : www.powergridindia.com देखें

एक राष्ट्र एक ग्रिड

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

... मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : ... प्रिंटर्स 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110 032
संपादक : रवीन्द्र कालिया